अथ

माघमास माहात्म्य भाषाटीका

प्रकाशक–बाबू ठाकुरप्रसाद गुप्त बुकसेलर,
राजादरवाजा, ब्रान्च–कचौड़ीगली, बनारस सिटी।

मूल्य ४)

॥ अथ ॥

माघमासमाहात्म्यम्

भाषाटीकासहितम्

प्रकाशक–बाबू ठाकुर प्रसाद गुप्त, बुक्सेलर,
राजादरवाजा, ब्राञ्च–कचौड़ीगली, बनारस सिटी।

॥ श्रीगणेशाय नमः ॥

अथ माघमासमाहात्म्यम् ।

नारायण, नर, नरोत्तम, देवी सरस्वती और व्यासजी महाराजको नमस्कार करके, जय शब्दका उच्चारण करै, अथवा जयका पठन करै ॥ १ ॥ ऋषि बोले—हे सूतजी महाराज! आप लोकोंके हितकर्ता हैं; अतएव आपने

श्रीगणेशाय नमः ॥ नारायणंनमस्कृत्यनरंचैवनरोत्तमम् । देवींसरस्वतींव्यासंततोजयमुदीरयेत् ॥१॥ ऋषयऊचुः ॥ सूतसूतमहाबाहोत्वयालोकहितैषिणा ॥ कथितंकार्तिकाख्यानंभुक्तिमुक्तिप्रदायकम् ॥२॥ अधुनामाघमाहात्म्यंवदनोलोमहर्षण ॥ श्रुतेनयेनलोकानांसंशयः चीयतेमहान् ॥३॥ पुराकेनमहाभागलोकेऽस्मिन्संप्रकाशितम् । माघस्नानस्यमाहा-

कार्तिक मासका आख्यान, जो आख्यान भोग और मोक्षका देनेवाला है; हमारे प्रति वर्णन किया ॥ २ ॥ हे लोमहर्षण! अब "माघमाहात्म्य" हमारे प्रति वर्णन करिये; जिसका श्रवण करनेसे लोकोंके उत्कट सन्देहकाभी विनाश होजाता है ॥ ३ ॥ हे महाभाग! सबसे प्रथम इस लोकमें माघमाहात्म्यको किसने प्रकाशित किया था, यह सब इतिहासपूर्वक वर्णन करिये ॥ ४ ॥ सूतजी बोले—धन्य! मुनीश्वरो!! धन्य!!! आपलोग श्रीकृष्ण भगवान्‌की

भक्तिमें तत्पर हैं, इसी हेतु आनन्दपूर्वक भक्तिभावसे बारंबार श्रीकृष्णजीकी कथा पूछते हैं ॥ ५ ॥ अब हम पुण्यों-की वृद्धि करनेवाले माघमाहात्म्यका कीर्तन करते हैं; यह माहात्म्य अरुणोदयके समय स्नान करनेवाले व्यक्तियों के पापोंका नाशक है ॥ ६ ॥ हे ब्राह्मणो ! किसी समय संसारका मंगल करनेवाले महादेवजीके कमल जैसे चरणोंका

त्स्यंसेतिहासंतदादिश ॥४॥ सूतउवाच ॥ साधुसाधुमुनिश्रेष्ठायूयंकृष्णपरायणाः ॥ यत्पृच्छ-थमुदायुक्ताभक्त्याकृष्णकथांमुहुः ॥ ५ ॥ कथयिष्यामिमाघस्यमाहात्म्यंपुण्यवर्धनम् ॥ पापघ्नंभृ-गवतांपुंसांस्नातानांचारुणोदये ॥ ६ ॥ एकदापार्वतीविप्राः शंकरंलोकशंकरम् ॥ पप्रच्छविनयो-पेतास्पृष्ट्वातच्चरणाम्बुजम् ॥७॥ पार्वत्युवाच ॥ देवदेवमहादेवभक्तानामभयप्रद ॥ प्रसीदनाथ विश्वेशयत्पृच्छे तद्वदाधुना ॥८॥ श्रुतानानाविधाधर्म्मास्त्वत्तः पूर्वंमयाविभो ॥ अधुनाश्रोतु मिच्छामिमाहात्म्यंमाघजंवद ॥ ९ ॥ तत्तु केनपुराचीर्णं कोविधिः काचदेवता ॥ तत्सर्व-

स्पर्शकर पार्वतीजी नम्रतापूर्वक पूछने लगीं ॥ ७ ॥ पार्वतीजी बोलीं—हे देवाधिदेव महादेव ! आप अपने भक्तोंको अभयप्रदान करते हैं, अतः हे प्राणनाथ विश्वेश्वर ! प्रसन्न होइये; और मैं जो कुछ प्रश्न करती हूँ, सो कहिये ॥ ८ ॥ हे सर्वव्यापक ! प्रथम मैं आपसे अनेक प्रकारके धर्म सुन चुकी हूँ, परन्तु अब माघस्नानका माहात्म्य सुननेकी मेरी इच्छा है, सो आप वर्णन करिये ॥ ९ ॥ प्रथम इसका किसने आचरण किया, इसकी विधि क्या है ? और इसका

देवता कौन है ? यह सब विस्तार पूर्वक वर्णन करिये, क्योंकि–आप भक्तों के ऊपर अनुकंपा करनेवाले हैं ॥ १० ॥ महेश्वर बोले–अवभृथ (यज्ञान्त) स्नान करनेके अनन्तर ऋषियोंके द्वारा मंगलाभिषेक करने पर, नगरनिवासियों से पूजित हो, नगरसे बाहर निकलकर ॥ ११ ॥ समस्त राजाओं में श्रेष्ठ, आखेटका प्रेमी राजा दिलीप कौतूहलको प्राप्त

विस्तराद्ब्रूहियतस्त्वंभक्तवत्सलः॥१०॥महादेवउवाच॥अध्वरेऽवभृथस्नातऋषिभिःकृतमंगलः पूजितोनागरैः सर्वैःस्वपुरान्निर्गतोबहिः ॥११॥ दिलीपोभूभुजांश्रेष्ठोमृगयारसिको भृशम् ॥ कौतूहलसमाविष्टआखेटव्यूहसंवृतः ॥१२॥ उपानद्गूढपादस्तुनीलोष्णीषउरश्छदी ॥ बद्धगोधांगुलित्राणोधनुष्पाणिःसरीसृपः ॥१३॥ बद्धतूणासिधानुष्कैःतथाभूतैश्चपत्तिभिः ॥ कांतारेषुसुरम्येषुवनेषुविपुलेषुच॥१४॥उल्लंघितमहास्रोतायुवापंचास्यविक्रमः॥मुदाक्रीडतितैःसार्धंकुंजेषुमृगयन्मृगान् ॥ १५ ॥ हन्यतांहन्यतामेषमृगोवैसपलायते ॥ इतिजल्पन्स्वभृत्येषुस्वय

हो, मृगयाकी सेना आदि (समस्त सामग्री) को साथ ले ॥ १२ ॥ चरणों में पादत्राण (जूते) धारण कर, नीली पगड़ी बाँध, बख्तर पहिर, गोधाचर्मके दस्ताने पहिरकरके धनुषबाण ले चले ॥ १३ ॥ जिनकी कटिमें तरकश कस रहा है, जिन्होंने खड्ग और धनुषबाण धारण कर रक्खा है ऐसे दचर योधाओंके साथ मनोहर वनों और सघन वनोंमें विचरने लगे ॥ १४ ॥ सिंहके समान पराक्रमी युवा राजा बड़े २ स्रोतोंका उल्लंघन कर कुंजोंमें मृगोंका

अन्वेषण करके उनके साथ क्रीड़ा करते थे ॥ १५ ॥ यह देखो ! मृग भागा जारहा है, इसे मारो २, अपने भृत्यवर्गके यों कहनेपर स्वयं जाके उसे मारते थे ॥ १६ ॥ फिर इधर उधर जाके क्या देखा कि—उस बनस्थलीमें उद्भ्रान्त मयूर उड़ २ कर वृक्षोंके ऊपर बैठते हैं ॥ १७ ॥ कहीं हरिणियोंके समूह घबड़ाये फिरते हैं, कहीं हरिणोंके बच्चे चारों ओर

मुत्पत्यहन्ति च ॥ १६॥ इतस्ततःपुनर्यातिकचित्पश्यन्वनस्थलीम् विटपोड्डीनसंत्रस्तलीनके-किकुलाकुलाम् ॥ १७॥ हरिणीगणवित्रस्तांधावच्छ्वपददिङ्मुखाम् ॥ कचित्फेरवफेत्कारतारावविभीषणाम् ॥१८॥ खड्गयूथैःकचिल्लक्ष्मींदधानामिवदंतिनाम् ॥ कचित्कोटरसंलीनोलूकीनादविवादिनीम् ॥ १९ ॥ मृगारिपदमुद्राभिर्मुद्रितांचकचित्कचित् ॥ शार्दूलनखनिर्भिन्नरोहिद्रक्तारुणांकचित् ॥२०॥ पीवरस्तनभारार्तसुस्निग्धमहिषीगणैः ॥ अवरोधाजिरक्षोणींसूचयंतीमनःकचित् ॥२१॥ कचिद्वृक्षघनच्छन्नांवन्यपुष्पसुगंधिनीम् ॥ कचिल्लतागृहद्वारां-

भाग रहे हैं, और कहीं सियार अपने भीषण निनादसे बनको व्याप्त कर रहे हैं ॥ १८ ॥ कहीं खड्ग जातिके मृग हाथियोंकीसी शोभाको धारण कर रहे थे, और कहीं कोटरोंमें बैठे हुए उलूकगण अपना शब्द कर रहे थे ॥ १९ ॥ कहीं सिंहोंके चरणचिन्ह दृष्टिगत होते थे, और कहीं शार्दूलोंके नखसे विदीर्ण हुए मृगोंका रुधिर पड़ा था, और उससे भूमि लाल हो रही थी ॥ २० ॥ और कहीं दूधसे लबालब भरेहुए स्तन पुष्ट ऐनके भारसे व्याप्त हुई

[illegible] होता था ॥ २१ ॥ कहीं २ वृक्ष फल फूल लगरहे थे,
कहीं २ बनैले पुष्पोंकी सुगन्धि आ रही थी, और कहीं २ लतागृहोंके ऊपर भ्रमर गुञ्जार कर रहे थे जिससे वह स्थान और भी सुशोभित था ॥ २२ ॥ कहीं बिलोंमेंसे सर्पोंकी कैंचली आधी निकली पड़ी थी जिससे वे अतीव भयंकर हो रहे थे, अथच कहीं बिलोंमें अजगर बैठे थे, और कैंचली बाहर पड़ी थी ॥ २३ ॥ कहीं बनमें अग्नि

भृंगशब्दसुशोभनाम् ॥ २२ ॥ अर्धनिःसृतनिर्मोकनागभीमबृहद्बिलाम् ॥ बिलेषुलीना-
जगरैर्भीमांनिर्मोकसर्पिणीम् ॥ २३ ॥ क्वचिद्दावानलज्वालांशिलाज्योतिः सुशोभनाम् ॥
फूत्कारशब्दसंपूर्णांमृगव्याघ्रसमाकुलाम् ॥ २४ ॥ प्रविमुंचञ्छुनांयूथंशशकेषुचवाक्वचित् ॥
पल्वलेषुचविश्रम्यपुनर्यातिवनान्तरम् ॥ २५ ॥ एवंव्रजतिराजेन्द्रेव्याधवर्गेचवल्गति ॥ कुर्व-
न्कोलाहलंतत्र सारंगोनिर्गतोवनात् ॥२६॥ फालवेगक्रमाक्रांतदुर्गमार्गमहीतलः ॥ कदा-

लगरही है और पाषाण शिलाओंके ऊपर उसकी आभा पड़रही है और कहीं मृग तथा व्याघ्र फूत्कार शब्द कररहे हैं ॥ २४ ॥ कही खरगोसोंके ऊपर कुत्ते दौड़ रहे हैं और कहीं २ राजा अल्प सरोवरोंके ऊपर विश्राम करके फिर आगे को जाते थे । २५ ॥ जब राजा इसप्रकार यात्रा और व्याधा अपनी बक २ कर रहे थे, तभी एक मृग कोला-हल करता हुआ बनमेंसे निकला ॥ २६ ॥ वह मृग लम्बी २ चौकड़ी भरके भूमिके ऊपर कूद रहा था, अतएव वह

मा.मा

८

कभी भूमि और कभी आकाश में दीखता था ॥ २७ ॥ निदान यह मृग अत्यन्त गम्भीर और टेढ़े स्रोतों से व्याप्त एवं कटीले वृक्षोंसे आकीर्ण हुए वनमें प्रविष्ट होगया, तथा राजाभी उसके पीछे-पीछेही चलागया ॥ २८ ॥ एक स्थानसे दूसरे निर्जन स्थानमें दूर जाकर वह मृग अलक्षित हो गया, तब राजाका गला प्याससे सूखगया ॥ २९ ॥ अतएव उसका तालू लाल होगया, मुखपर पसीना आगया, साथी प्यादे सब थक गये, घोड़ोंकी गति रुकगई, विशेष क्या

चिद्गगनारूढःकदाचिद्भूमिगोचरः ॥ २७ ॥ वक्रस्रोतोऽतिगंभीरंकण्टकद्रुमसंकुलम् ॥
प्रविष्टोविषमारण्यंराजासोतत्पदानुगः ॥२८॥ दूराद्दूरतरंगत्वादेशाद्देशंचनिर्जनम् ॥ मृगा-
दर्शनसंरम्भसंशुष्कगलकंधरः ॥ २९ ॥ ताम्रतालुमुखःखिन्नः श्रांतपत्तिःस्खलद्ध्वनिः ॥
अतीत्यदीर्घमार्गान्सतृषार्तोमध्यगेरवौ ॥३०॥ ददर्शाग्रेतुकासारंस्पर्धयंतमपांपतिम् ॥ घन-
पादपतीरस्थंसुतीर्थंविमलंशुभम् ॥ ३१ ॥ विशालंविकचांभोजंमधुमत्तमधुव्रतम् ॥ पद्मिनी-

कहें विस्तृत मार्ग अतिक्रमण करनेके कारण मध्याह्नके समय वह राजा अतिशय तृषार्त (प्यासा हो गया) ॥ ३० ॥ इसी समय राजाने आगे एक सरोवर देखा, उसकी प्रभूत जलराशि देखनेसे जलनिधि सागरभी तुच्छ प्रतीत होता था, उसके तीरपर घने वृक्ष लग रहे थे, उसका घाट सुडौल और जल शुद्ध एवम् निर्मल था ॥ ३१ ॥ उस विस्तृत और पाखाश वन्नोंसे व्याप्त होनेके कारण मरकत [illegible] प्रतीत होता था ॥ ३२ ॥ उसमें

मा.टी

अ० १

८

और पालाश वृक्षोंसे व्याप्त होनेके कारण मरकतमणियोंसे व्याप्त हुए के सदृश प्रतीत होता था ॥ ३२ ॥ उसमें मछलियें स्वच्छन्दतासे कूद रहीं थीं, उसका जल साधुओंके मनके समान निर्मल था, चलायमान जलचर और जलकी लहरोंसे युक्त था ॥ ३३ ॥ भीतर क्रूर ग्रहोंसे आकीर्ण होनेसे दुष्टोंके मनकी तुल्य और शैवाल (सिवार) से व्याप्त

पत्रपालाशच्छन्नंमरकतैरिव ॥३२॥ स्वच्छंदमुच्छलन्मत्स्यंस्वच्छंसाधुमनोयथा ॥ चलज्जलचरैर्मिश्रंवीचिराजिविराजितम् ॥३३॥ अतर्ग्राहगणक्रूरं खलानामिवमानसम् ॥ क्वचिच्छैवालदुर्गम्यंकृपणस्यैवमंदिरम् ॥३४॥ नानाविहङ्गसर्वातिशमयंतंदिवानिशम् ॥ दातारमिवसर्वस्वैरापन्नार्तिप्रणाशकम्॥३५॥ तर्पयंतंनिजांभोभिः श्वापदान्स्वपितॄनिव ॥ हरंतंसर्वसंतापंहिमांशुरिवचाह्निकम्॥३६॥ तंदृष्ट्वाभूद्गतग्लानिश्चातकोजलदंयथा ॥ तत्रपीतजलोराजाकृतमाध्याह्निकक्रियः ॥ ३७ ॥ भुक्त्वाखेटकमांसानिसहायैःसहितोनृपः ॥ उवाससरसस्तीरेसुर-

होनेके कारण कृपण व्यक्तियोंके घरके समान वह दुर्गमभी हो रहा था ॥ ३४ ॥ ताप दूर करनेके कारण ऐसा प्रतीत होता था मानो शरणमें आये हुएको दाताओंके तुल्य सर्वस्व प्रदान करता हो ॥ ३५ ॥ अपने जलसे हिंसक जन्तुओंको इस प्रकार तृप्त करता था जैसे कोई पितरोंको तृप्त करता है और जैसे चन्द्रमा दिनके सब संतापोंको ऐसे वह भी सब सन्तापोंको दूर कर देता था ॥ ३६ ॥ उसको देखते ही राजाका श्रम इसप्रकार दूर हो गया जैसे

मेघको देख चातककी ग्लानि मिट जाती है, वहां जलपानकर राजाने संध्या आदि मध्याह्नकी सब क्रिया करी ॥३७॥ और अपने सहायकों सहित आखेटका मांस भोजन कर उस सरोवरहीके तटपर बैठके राजा चित्रविचित्र कथा कहने लगा ॥ ३८ ॥ धनुषपर बाण चढ़ाय रात्रिको तरुके नीचे स्थित होगये और व्याधा लोगोंने संधान कर दिशाओंका मार्ग रोक लिया ॥ ३९ ॥ जब वीर लोग इसप्रकार वनमें जाल विस्तारकर स्थित होगये तब अधरात्रिके समय शूकरों

र्म्यांकथयन्कथाः ॥ ३८ ॥ ततःशरासनेबाणंकृत्वारात्रौ स्थितस्तरौ ॥ व्याधाःसंधानमास्थायरुरुधुःककुभांपथः ॥ ३९ ॥ एवंस्थितेषुवीरेषुवनेविस्तार्यवागुराः ॥ निशार्धेनिर्गतंयूथंशूकराणांतटेतटे ॥४०॥ चरित्वासरसीकंदान्यपातव्याधसंकुले ॥ राज्ञाविद्धाश्चतेक्रोडाव्याधैश्चबहवोहताः ॥४१॥ क्षणेनैववराहास्ते विद्धाः पेतुर्महीतले ॥ तान्दृष्ट्वातुमुलंनादंव्याधाश्चक्रुःसुदर्पिताः ॥ ४२ ॥ धावंतः प्रमुदाहृष्टामिलितायत्र भूपतिः ॥ तानादाय भटैर्भूर्यौनिः

का यूथ तटतटसे निकला ॥ ४० ॥ तब शूकरोंका यूथ कमलकंदका भक्षण कर व्याधजालमें निपतित हो गया, उस समय बहुतोंको राजाने और बहुतोंको व्याधोंने मार डाला ॥ ४१ ॥ क्षणमात्रहीमें वे सब शूकर विद्ध हो पृथ्वीमें गिर पड़े, तब तो उनको देख दर्पित हो व्याधा बड़े शब्द करने लगे ॥ ४२ ॥ प्रमोदसे दौड़कर राजासे मिले, तब राजा उन योद्धाओंको लेकर सरोवरके ... अपने पुरको जानेकी इच्छा करी

राजा उन योद्धाओंको लेकर प्रयोनवके वनसे चल दिए ॥ ४३ ॥ प्रथम तभी राजाने अपने पुरको जानेकी इच्छा करी

तभी मार्गमें उन्हें एक तपस्वी दीखा, यह ब्राह्मण वृद्ध हारीत शंखचक्रसे समलंकृत थे ॥ ४४ ॥ दुष्कर और उग्र नियमोंका आचरण करनेसे उनका शरीर कृश होरहा था केवल अस्थिमात्रही शेष रह गई थी वे बड़े दान्त थे और

सृतःसरसीतटात् ॥४३॥ स्वपुरंगंतुकामोसौदृष्ट्वान्पथितापसम् ॥ ब्राह्मणंवृद्धहारीतंशंखचक्रसुशोभितम् ॥ ४४ ॥ नियमैर्दुष्करैरुग्रैः परिक्षीणकलेवरम् ॥ तपसाकृशदेहंतंविस्फुटत्कर्कशत्वचम् ॥४५॥ दधानंहारिणंचर्मवसानंमृदुवल्कलम् ॥ कुर्वाणंनैगमंजाप्यंनखलोमजटाधरम् ॥४६॥ तंवनाश्रमिणंदृष्ट्वामार्गंदत्वाससंभ्रमः ॥ प्रणम्यशिरसाराजाकृतपद्मांजलिः स्थितः ॥४७॥ अथराज्ञामलंकारैर्द्विजोनिश्चित्यभूमिपम् ॥ उवाचश्रेयसेहेतोः परोपकृतिवांछया ॥४८॥ किमर्थंगम्यतेराजन्कालेपुण्यतमेशुभे ॥ माघमासेविहायैवप्रातःस्नानंसरोवरे ॥४९॥ इति श्रीपद्मपुराणे माघमासमाहात्म्ये दिलीपमृगयागमोनाम प्रथमोऽध्यायः ॥१॥

उनकी त्वचा में झुर्रियें पड़ रही थीं ॥४५॥ मृगचर्म धारण किये मृदुवल्कलका वस्त्र पहने, एवं नख लोम और जटा धारे उक्त महर्षि निगम जप करते थे ॥ ४६ ॥ वनके उन आश्रमीको देखकर राजाने संभ्रमपूर्वक उनको मार्ग दिया और शिरसे प्रणाम कर हाथ जोड़ स्वयं सन्मुख होगया ॥ ४७ ॥ तब ब्राह्मणने इसको अलंकारोंसे राजा जानकर परो-

पकारकी वांच्छासे कल्याणके निमित्त कहा ॥ ४८ ॥ हे राजन् ! इस पुण्य पवित्रकालमें माघमहीनेमें प्रातःसमय सरोवरका स्नान छोड़कर तुम कहाँ जाते हो ? ॥४९॥ इति श्रीपद्मपुराणे माघमासमाहात्म्ये भाषाटीकायां प्रथमोऽध्यायः॥ १ ॥
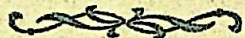
सूतजी बोले, तब राजाने कहा हे द्विजराज ! मैं माघस्नानके फलको नहीं जानता सो विस्तारपूर्वक मुझसे कहिये ॥ १ ॥ राजाके ऐसे वचन सुनकर वैखानस मुनि बोले कि अन्धकार विनाश करनेवाले सूर्यनारायण

सूतउवाच ॥ प्रत्युवाचततोराजानाहंजानेद्विजोत्तम ॥ माघस्नानफलंकीदृक्तन्मे-कथयविस्तरात् ॥१॥ इति भूपवचःश्रुत्वा प्राहवैखानसोमुनिः ॥ भगवान्द्युमणिःशीघ्रमभ्यु-देतितमोपहः ॥ २॥ स्नानकालोऽयमस्माकंनकथावसरोनृप ॥ स्नात्वागच्छवसिष्ठंतं पृच्छस्वस्व कुलप्रभुम् ॥ ३॥ इत्युक्त्वातापसोमौनीप्रातःस्नानायनिर्गतः ॥ प्रत्यावृत्यदिलीपोपितत्रस्नात्वा-तथाविधि ॥४॥ पुनः स्वनगरींवीरोगतोसौहर्षपूरितः ॥ अन्तःपुरेनिवेश्याथवानप्रस्थकथां-

अब शीघ्रही उदय होनेवाले हैं ॥ २ ॥ सो हे राजन् ! स्नानका समय है कथाका अवसर नहीं है सुतराम् तुम स्नान करके जाओ और अपने कुलगुरु वशिष्ठजीसे सब पूछ लेना ॥ ३ ॥ ऐसा कहकर वे तपस्वी मौन धारण करके स्नान करनेको चले गये और राजा दिलीप भी पीछेको लौटकर यथाविधि स्नान करके ॥ ४ ॥ फिर प्रसन्न हो अपनी नगरी

को चले गये; और उन वानप्रस्थ ऋषिकी कथा अन्तःपुर (रनवास) में वर्णन कर ॥ ५ ॥ श्वेत घोड़ोंके रथमें बैठ के श्वेतही छत्रसे शोभायमान हो चँवर अलंकार सुन्दर वस्त्र धारण किए मंत्रियोंसे संयुक्त ॥ ६ ॥ जय शब्दको सुनते ऋषिके वाक्य स्मरण करके वसिष्ठजीके आश्रममें आये, तब यात्राके समय मागध और बन्दीजन राजाकी स्तुति करने

पुनः ॥ ५ ॥ श्वेताश्वरथमारुह्यसुश्वेतच्छत्रचामरः ॥ सालंकारः सुवासाश्चसंवृत्तोमंत्रिभिःसह ॥६॥ जयशब्दान्पुनःशृण्वंस्तुतोमागधबंदिभिः ॥ वसिष्ठस्याश्रमंयातऋषिवाक्यमनुस्मरन् ॥७॥ तत्रैवनत्वाब्रह्मर्षिं विनयाचारपूर्वकम् ॥ दत्तासनोगृहीतार्घ्यआशीर्भिःसमलंकृतः ॥८॥ सानंदंमुनिनापृष्टःकुशलंभूपतिर्यदा ॥ ततोब्रवीद्वचोराजाहर्षयन्मुनिमानसम् ॥ ९ ॥ सोथ-वैखानसेनोक्तंपप्रच्छमधुराकृतिः ॥ दिलीपउवाच ॥ भगवंस्त्वत्प्रसादेनश्रुताविस्तरतोमया ॥१०॥ आचारोदंडनीतिश्चराजधर्माश्चयेपरे ॥ चतुर्णामपिवर्णानामाश्रमाणां च याःक्रियाः

लगे ॥ ७ ॥ विनय और शिष्टाचारपूर्वक ब्रह्मर्षिको प्रणामकर अर्घ्य तथा आशीर्वादको स्वीकार कर राजा आसनके ऊपर बैठ गये ॥ ८ ॥ तब मुनिने आनन्दपूर्वक राजासे कुशल पूछी, तब राजा बोले, और इनके वाक्य सुन मुनीश्वर का चित्त प्रसन्न होगया ॥ ९ ॥ तब मधुर मूर्तिवाले राजा वैखानस बचनको पूछने लगे, दिलीप बोले-हे भगवन् ! आपकी कृपासे मैंने विस्तार सहित ॥ १० ॥ आचार धर्मनीति और राजधर्म सुने, चारों वर्णोंके आचार तथा आश्रमों

की क्रिया ॥ ११ ॥ दान, उनके विधान और यज्ञ, आपके कथन किये व्रत, विष्णुभगवान् का आराधन भी मैंने सुना ॥ १२ ॥ अब वह सुनने की इच्छा है । जो फल माघस्नान करने से होता है, किस विधानसे करना चाहिए ? हे मुनिराज ! सो कथन कीजिये ॥ १३ ॥ वसिष्ठजी बोले—तुमने त्रिलोकीका कल्याण करनेवाला, अतएव सबका

॥११॥ दानानितद्विधानानियज्ञाश्चविविधस्तथा ॥ व्रतानितत्प्रतिष्ठाश्चविष्णोराराधनंतथा ॥१२॥ अधुनाश्रोतुमिच्छामिमाघस्नानेचयत्फलम् ॥ विधेयंयद्विधानेनतन्मेब्रह्मन्मुनेवद ॥१३॥ वसिष्ठउवाच ॥ सम्यगुक्तंपरंश्रेयोलोकत्रयहितावहम् ॥ निर्मलीकरणंलोकेमुनीनां-वनवासिनाम् ॥१४॥ गोभूमितिलवासांसिस्वर्णधान्यानिकानिच ॥ अदत्वेच्छंतियेनाकंते-माघेस्नान्तुसर्वदा ॥१५॥ त्रिरात्रैंदुव्रतैःकृच्छ्रैःपराकैश्चनिजांतनुम् । अशोष्येच्छंतियेस्वर्ग-

हितकारी एवं वनवासी ऋषिमुनियोंको भी निर्मल करनेवाला यह अच्छा प्रश्न किया ॥ १४ ॥ जो व्यक्ति गौ, भूमि, तिल, वस्त्र और सुवर्ण, धान्य, आदि वस्तुओंका दान बिना करेही स्वर्ग में जानेकी इच्छा करते हों उन्हें चाहिये कि वे माघमासमें अवश्य स्नान करें ॥ १५ ॥ जो मनुष्य यह चाहते हैं कि, तीन रात्रिपर्यंत कृच्छ्रचान्द्रायण और पराक व्रतसे हमें अपना देह तो शुष्क न करना पड़े किन्तु स्वर्गकी प्राप्ति हो जाय, तो उन्हें माघमें नित्य स्नान करना

अतः हम अपनी देह तो शुष्क न करना पड़े किन्तु स्वर्गकी प्राप्ति हो जाय, तो उन्हें माघमें नित्य स्नान करना

चाहिये ॥ १६ ॥ वैशाखमें होम और दान, कार्तिकमें तप और पूजा एवं माघमास में तप, होम और दान ये तीनों विशेष हैं ॥ १७ ॥ अग्निहोत्र और यज्ञ विना किये, बावली कूप बिना बनवाये जो सद्गतिकी इच्छा करते हैं उनको माघमें बाहर जलमें स्नान करना कर्तव्य है ॥ १८ ॥ भूमि, सुवर्ण और माणिक्य, धेनु आदि बिना दान किये

तपसिस्नांतुतेसदा ॥१६॥ होमोदानंचवैशाखेतपःपूजाचकार्तिके ॥ तपोहोमस्तथादानंत्रयं-माघेविशिष्यते ॥१७॥ विनावह्निंविनायज्ञमिष्टापूर्त्तंविनाप्रिये ॥ वाञ्छन्तिसद्गतिंस्नान्तु-प्रातर्माघेबहिर्जले ॥१८॥ गोभूहिरण्यमाणिक्यस्वर्णधेन्वादिकानिच ॥ अदत्वेछन्तियेनाकं-माघेस्नान्तुनराधिप॥१९॥ सानुबन्धोऽतिपर्य्याप्तोधराधीशोभवेद्ध्रुवम् ॥ कैवल्योत्पत्तिका-बुद्धिर्यंयावानभवेत्पुनः ॥२०॥ पद्ध्यावरिवस्यासा विहितादिव्यलोचनैः ॥ तदनन्ततपो-दानंमाघेमासिनृपोत्तम ॥ २१ ॥ सकामोवाप्रजायैवाहरयेतद्विनापिवा ॥ कायशुद्धिर्व्रती

जो इनका फल चाहते हैं हे राजन् ! उन्हें चाहिये कि माघस्नान करें ॥ १९ ॥ निरन्तर ऐसा करनेसे वह पुरुष भूमिपति होता है, वह मुक्तिको उत्पन्न करनेवाली बुद्धि प्रगट करता है और फिर जन्म नहीं होता ॥ २० ॥ दिव्य दृष्टि वाले महात्माओंने यह कहा है कि, माघमासमें तप या दान करनेसे अनन्त फल होता है ॥ २१ ॥ सकाम हो चाहे

प्रजाकी इच्छावाला हो ! नारायणके निमित्त व अन्यप्रकार काय शुद्धकर जो व्रती हो उसको चार प्रकारसे स्नानके फलकी प्राप्ति होती है ॥ २२ ॥ अदितिने अन्नपरित्यागपूर्वक बारह वर्ष पर्यन्त माघस्नान किया उसके फलसे त्रिलोकी के दीपकस्वरूप द्वादश आदित्य बारह पुत्रोंकी प्राप्ति हुई ॥ २३ ॥ माघस्नानसेही सुभग तथा अरुन्धति दानशीला

भूत्वाचतुर्द्धास्नानजंफलम् ॥२२॥ निरन्नाचादितिः सस्नौमाघेद्वादशवत्सरे ॥ पुत्रांश्चद्वादशादित्याँल्लेभेत्रैलोक्यदीपकान् ॥ २३ ॥ सुभगारोहिणीमाघाद्दानशीलात्वरुन्धती । शचीचरूपसम्पन्नाप्रासादेसप्तभूमिके ॥२४॥ विमलीकृतशोभाढ्येनर्त्तकीललिताजिरे ॥ दीपवर्णसमुच्छिन्नेरूपवत्स्त्रीजनाकुले ॥ २५ ॥ गीतवादित्रनिर्घोषेमंगलाचारशोभिते ॥ वदध्वनिपवित्रैश्चविद्वद्भिर्भैरलंकृते ॥२६॥ सुरार्चनरतेरम्येसदातिथिनिषेविते ॥ मुदितास्तेवसन्तो-

हुई हैं और इसी स्नानसे इन्द्राणी रूपसंपन्न होकर सप्तमहले स्थानमें सुखसे निवास करती हैं ॥२४॥ जो शोभासे भरपूर निर्मल, जिसके आंगनमें नृत्य करनेवाली अप्सराओंसे शोभा होरही है, जहाँ अनेक दीपक जलरहे हैं और जो स्थान रूपवान स्त्रियोंसे संकुल है ॥ २५ ॥ गीतबाजोंके शब्दसे युक्त, मंगलाचारसे शोभित, वेदध्वनिमें तत्पर ब्राह्मणोंसे युक्त ॥ २६ ॥ देवार्चनमें तत्पर, मनोहर सदा अतिथियोंसे शोभितस्थानमें मकररविमें स्नान करनेवाले व्यक्ति प्रसन्न

हो निवास करते हैं ॥ २७ ॥ जिसने माघमासमें बहुत दान दिया, तथा

हो निवास करते हैं ॥ २७ ॥ जिसने माघमासमें बहुत दान दिया, तथा भगवान्‌की पूजा और स्तुति की है, इष्ट वस्तुका त्याग और व्रत नियमका पालन जिन्होंने किया है वे श्रेष्ठ हैं ॥ २८ ॥ माघमास सदा धर्मका प्रसव करनेवाला और पापका नाशक है. फल देनेसे काममूल और निष्काम होनेसे ज्ञान देनेवाला है ॥ २९ ॥ जो लोक ज्ञानी

हयैस्स्नातंमकरेरवौ ।२७। यैर्दत्तंबहुमाघेचमुरारिश्चार्चितःस्तुतः ॥ इष्टवस्तुपरित्यागान्नियमस्यतुपालनात् ॥२८॥ धर्मसूतिः सदामाघः पापमूलंनिकृन्तति ॥ काममूलःफलद्वारा निष्कामोज्ञानदः सदा ॥२९॥ येलोकाज्ञानशीलानांयेलोकाविपिनौकसाम् ॥ ये लोकाविष्णुभक्तानांतेमाघस्नायिनांसदा ।३०॥ देवलोकान्निवर्त्तन्तेपुण्यैरत्यैः परंतप ॥ कदाचिन्ननिवर्त्तन्तेमाघस्नानरतानराः ।३१॥ माघेस्नात्वातुयोधेनुंदद्यान्मर्त्यः पयस्विनीम् ॥ तस्यायावंतिरामाणिसर्वांगेचनृपोत्तम॥३२॥तावद्वर्षसहस्राणिस्वर्गलोकेमहीयते॥माघस्नानमकुर्वा

और वनमें रहकर तप करनेवालोंको प्राप्त होते हैं, और जो लोक विष्णुभक्तोंको मिलते हैं वेही लोक सदा माघस्नान करनेवालोंको मिलते हैं ॥ ३० ॥ हे परन्तप ! और पुण्योंके क्षीण हो जानेपर देवलोक से यहाँ लौट आना होता है, परन्तु माघस्नान करनेवाले व्यक्ति वैकुण्ठसे फिर नहीं आते ॥ ३१ ॥ माघस्नानकर जो मनुष्य दूध देती हुई गौका

दान करते हैं, हे राजन्! उस गौके शरीरमें जितने रोम हैं ॥ ३२ ॥ उतनेही सहस्र वर्षतक वह स्वर्गलोकमें ऐश्वर्यका उपभोग करता है, माघस्नान करके जो व्यक्ति गुड़ तथा तिलदान करता है ॥ ३३ ॥ उसके पाप दूर होजाते हैं, अतएव वह मनुष्य निर्मल होजाता है, सब दानोंमें तिल विशेषकर पापके नाश करनेवाले हैं ॥ ३४ ॥ इसकारण हे

णोयोदद्यात्सगुडांस्तिलान् ॥३३॥ पातकंतस्यप्रक्षाल्यनिर्मलोभातिवैनरः ॥ सर्वेषांधान्यरा-
शीनांतिलाःपापप्रणाशनाः॥३४॥ तस्मात्माघेप्रयत्नेनतिलादेयान्नृपोत्तम॥ माघस्नानंप्रकुर्वा
णोदद्यात्ब्राह्मणभोजनम् ॥३५॥ पितॄन्संतर्प्यशुद्धात्मायातिविष्णोःपरंपदम्॥ तस्मात्सर्वप्रय-
त्नेनमाघेदानेननीयते ॥३६॥ अदानंनक्षिपेन्माघंसर्वदानृपसत्तम ॥ वित्तानुसारंज्ञात्वावैमा-
घेदानंसदाददेत्॥३७॥माघस्नानंतुयःकुर्यादुपानहकमंडलून्॥ ददाति ब्राह्मणेभ्यश्चसस्वर्गेति-

राजन्! यत्नपूर्वक माघमासमें तिलदान करै, माघस्नान करके ब्राह्मणोंको भोजन करावे ॥ ३५ ॥ तो वह अपने पितरोंको तृप्त कर शुद्ध हो विष्णुलोकको जाता है, इसकारण सब प्रयत्नसे माघमासमें दान करे ॥ ३६॥ हे राजन्! किसी प्रकारभी दानके बिना माघस्नानको न जाने दे, वित्तके अनुसार जानकर सदाही माघमें दान करना कर्तव्य है ॥ ३७ ॥ जो माघस्नान करके उपानह और कमंडलु ब्राह्मणोंको देता है, उसकी अवश्य स्वर्गमें स्थिति होती है

॥ ३८ ॥ हे राजन् ! जो माघमासमें स्नानस्वरूप तप करते हैं और उक्त मासको दानके बिना नहीं बिताते उनको

इस दानके करनेसे स्वर्गकी प्राप्ति होती है ॥ ३९ ॥ दानसे स्वर्ग और दानसेही सुख प्राप्त होता है, दानसे पाप और

महापातक दूर होते हैं ॥ ४० ॥ बिना दानके तपकी शोभा नहीं होती, जैसे सूर्यके बिना आकाश अथवा जैसे

ष्ठतिध्रुवम् ॥३८॥ माघस्नानमयंराजन्कुर्वाणस्तपउत्तमम् ॥ दानंविनाक्षिपेन्नैवदानात्स्वर्गमवाप्यते ॥३९॥ दानेनप्राप्यतेस्वर्गोदानेनप्राप्यतेसुखम् ॥ दानेनहीयतेपापंमहापातकजंनृप ॥४०॥ अदानंनतपोभातिह्यसूर्यंगगनंयथा ॥ असंततिकुलंयद्वदाचारेणविनागृहम् ॥४१॥ नातःपरतरंकिंचित्पवित्रंपापनाशनम् ॥ विद्याधरायसंगीतंभृगुणामणिपर्वते ॥४२॥ इतिश्रीपद्मपुराणे माघमासमाहात्म्ये दिलीपवसिष्ठसंवादोनाम द्वितीयोऽध्यायः ॥ २ ॥

संतानके बिना कुल और आचारके बिना गृह शोभा नहीं पाता ॥ ४१ ॥ इससे अधिक कोई पवित्र और पापनाशक नहीं है, यह बात भृगुजीने मणिपर्वतके ऊपर विद्याधरोंसे कही है ॥ ४२ ॥ इति श्रीपद्म महापुराणे भाषाटीकायां माघमासमाहात्म्ये दिलीपवसिष्ठसंवादो नाम द्वितीयोऽध्यायः ॥ २ ॥

राजा बोले—हे ब्रह्मन् ! भृगुजीने पर्वतके ऊपर किससमय ज्ञानका उपदेश किया था सो आप कुतूहलपूर्वक मुझसे कहिये ॥ १ ॥ वसिष्ठजी बोले—हे राजन् ! बारह वर्षतक एक समय मेघ नहीं वर्षा, उससे उद्विग्न हो सब दशोदिशा क्षीण हो गईं ॥ २ ॥ हे राजन् ! मध्यदेश, हिमालय और विन्ध्याचलके खिन्न होनेमें तथा स्वाहा स्वधा

राजोवाच ॥ ब्रह्मन्कदाभृगुर्विप्रोनिजगादमहीधरे ॥ तस्मैधर्मोपदेशंचकथ्यतांमेकुतूहलात् ॥ १ ॥ वशिष्ठउवाच ॥ द्वादशाब्दंपुराराजन्नववर्षबलाहकः ॥ तेनोद्विग्नाःप्रजाःसर्वागताक्षीणादिशोदश ॥ २ ॥ खिलीभूतेतदामध्येहिमवद्विन्ध्ययोर्नृप ॥ स्वाहास्वधावषट्कारवेदाध्ययनवर्जिते ॥ ३ ॥ सोपप्लवेतथालोकेलुप्तधर्मेचनिष्प्रभे फलमूलान्नपानीयशून्येवैभूमिमंडले ॥ ४ ॥ विंध्यपादतरुच्छन्नरम्यरेवातटाश्रमात् ॥ सहशिष्यैश्चनिर्गत्यहिमाद्रिंसगतोभृगुः ॥ ५ ॥ तत्रतिष्ठतिकैलासगिरेःपश्चिमतोगिरिः ॥ मणिकूटइतिख्यातोहेमरत्नशिलोच्चयः ॥ ६ ॥ अधोधःस्फ-

वषट्कार और वेदाध्ययनसे वर्जित होनेसे ॥ लोकके उपद्रव ग्रस्त होनेपर तथा धर्मके लुप्त और प्रभाहीन हो जानेपर फल मूल पानीसे महिमण्डल शून्य होगया ॥ ३ ॥ ४ ॥ विन्ध्यपर्वत रेवाके तटके ऊपर होनेके कारण वृक्षोंसे आच्छादित था तब भृगुजी अपने शिष्योंसहित वहाँसे चलकर हिमालयको गये ॥ ५ ॥ कैलाशपर्वत पश्चिम और मणि कूटनाम एक सुवर्णका तथा रत्नी पर्वत है ॥ ६ ॥ नीचे नीचे श्वेत स्फटिक और मध्यमें नील शिलाओंसे युक्त

था, सुतराम् वह पर्वत विभूतिसे सब ओरसे शुक्ल नीलकंठके समान शोभित होता था ॥ ७ ॥ सब ओर नीलशीला-
वाला, कहीं कहीं सुवर्णकी रेखासे युक्त और कृष्ण मेघमंडलमें चमकती हुई बिजलीकी रेखा के सदृश शोभित हो
रहा था ॥ ८ ॥ शिखरपर नील शिलाका पर्वत नीचे सुवर्णकी मेखलावाला पीतवस्त्र पहरे नारायणके समान शोभित
होता था । मेखलाको त्यागकर नीलवर्ण मध्यभाग श्वेतपत्थरोंसे युक्त होनेके कारण तारोंसहित आकाशके समान

टिकश्वेतोमध्येनीलशिरोगिरिः ॥ भूतिभिःसर्वतः शुक्लोनीलकंठइवाबभौ ॥७॥ सर्वत्रासौनील
शिलोहेमरेखांतरांतरः ॥ स्फुरद्विद्युल्लतःकृष्णोजीमूतइवराजते ॥८॥ मूर्ध्निनीलशिलःशैल-
अधः कांचनमेखलः ॥ नारायणइवाभातिपरिवीतइवांबरः ॥९॥ सतारकमिवव्योमशुशुभेस-
महीधरः ॥ अमेखलासुनीलाभोमध्येमध्येसितोपलः ॥१०॥ लब्ध्वात्मनस्तनुंशुभ्रादीप्तदिव्यौ
षधीधरः ॥ बहुदीप्तिवृतोभातिद्वितीयइवचन्द्रमा ॥ ११ ॥ अधित्यकासुसंगीतैःकिन्नराणांस-
कीचकैः ॥ रंभापत्रपताकाभिःशोभतेससदाऽचलः ॥ १२ ॥ हरितोपलवैडूर्यपद्मरागशिला-

उस पहाड़की शोभा हो रही थी ॥ १० ॥ अपना श्वेत शरीर पाय दिव्य औषधियोंके प्रकाशसे वह ऐसा प्रदीप्त
होरहा था, जैसे चन्द्रमाकी दूसरी मूर्ति होती है ॥ ११ ॥ उक्त पर्वतकी अधित्यका अर्थात् तराईकी भूमिमें किन्नर
और कीचक गान करते रहते थे, एवम् कदलीदलकी शाखाओंसे वह पर्वत नित्यही सुशोभित रहता था ॥ १२ ॥

हरे पाषाण, वैदूर्य्य मणियें, पद्मराग, श्वेत (संगमरमर) पत्थर इन सबके मण्डलोंसे वह पर्वत इन्द्रधनुषके समान प्रतीत होता था ॥ १३ ॥ सम्पूर्ण धातुएँ, सुवर्ण, और अनेक प्रकारसे रत्न उक्त पर्वतको सुशोभित बनाए रखते थे, एवंच उक्त गिरिराज अग्निज्वालाओंके समान बड़े २ ऊँचे शिखरोंके द्वारा चारोंओरसे व्याप्त होरहा था ॥ १४ ॥

श्मभिः ॥ उद्रश्मिमंडलैःसोऽयइंद्रचापैरिवावृतः ॥१३॥ सर्वधातुमयैर्हैमैर्नानारत्नशोभितः ॥
सोऽग्निज्वालैरिवात्युच्चैःशृंगैः सर्वत्रवेष्टितः ॥१४॥ तस्यागत्यनितंबेषुसतृणासुशिलासुच ॥
विद्याधर्यःप्रसेवंतेस्वपतीन्कामविक्लवाः ॥१५॥ निरुद्धांतर्मरुन्मार्गाजितक्लेशाविरागिणः ॥
ध्यायंत्यहर्निशंब्रह्मरम्यसानुगुहासुच ॥ १६ ॥ साक्षसूत्रकराःसिद्धाअर्धोन्मीलितलोचनाः ॥
आराधयंतिभूतेशंसुंदरीषुदरीषुच ॥ १७ ॥ मंदारकुसुमामोदसुरभीकृतदिङ्मुखः ॥ एषनिर्झरि

उसके नीचौहे स्थानोंमें आय, जिनके ऊपर घास जमरही है ऐसी शिलाओंके ऊपर बैठके कामसे पीडित हुई विद्याधरियें अपने पतियोंके साथ रमण करती हैं ॥ १५ ॥ अन्तर्वायु अर्थात् श्वासका अवरोध करनेवाले और क्लेशोंका विजय कर वैराग्य धारण करनेवाले महात्मा लोग रमणीके आँगनवाली गुहाओंमें उपस्थित हो २ कर ब्रह्मका ध्यान करते हैं ॥ १६ ॥ जिनके नेत्र आधे २ मिच रहे हैं ऐसे सिद्धलोग हाथमें रुद्राक्षकी माला लिये सुन्दर २ कन्दराओंमें

बैठकर भूतनाथ महादेवजीकी आराधना करते हैं ॥ १७ ॥ उसके चारों ओर पारिजातके पुष्पोंकी सुगन्धि महक रही है, झरनोंसे जल गिरते रहनेके कारण वह स्थान सदैव शब्दसे पूर्ण रहता है ॥ १८ ॥ उपत्यकामें हाथी, उनके बच्चे, कस्तूरी मृग और झुंडकेझुंड चित्रमृग क्रीड़ा करते हैं ॥ १९ ॥ चँवरी गौ और विचित्र अन्य बहुतसे जंगली

णीझारिझंकारमुखरःसदा॥१८॥ उपत्यकासुखेलद्भिर्वनस्थैःकलभैर्गजैः ॥ कस्तूरीमृगयूथैश्च-
चारुचित्रमृगैस्तथा ॥१९॥ विलसच्चामरैश्चैवविचित्रैःश्वापदैस्तथा ॥ नदत्पारावतैश्चैवचको-
रैश्चापिकोकिलैः ॥२०॥ राजहंसैर्मयूरैश्चसदारम्यःसपर्वतः ॥ सेव्यमानःसदादेवैर्गुह्यकैरप्सरो-
गणैः ॥२१॥ राजोवाच॥ बह्वाश्चर्यमयःशैलःसर्वसिद्धसमाश्रयः॥ भगवन्किंयदुच्छ्रायःकिय-
दायामविस्तरः ॥२२॥ ऋषिरुवाच ॥ षट्त्रिंशद्योजनोच्छ्रायोमस्तकेदशयोजनः ॥ आयाम-

जीव वहाँ विचरते और विलास करते रहते हैं, पारावत (कबूतर अथवा पंडारवता) चकोर और कोकिल (कोयल) ये सब वहाँ शब्द करते रहते थे ॥ २० ॥ राजहंस और मयूरोंसे व्याप्त होनेके कारण वह पर्वत सदैवही रमणीक बना रहता था, सुतराम् देवता, गुह्यक और अप्सरागण उसकी सेवा करते थे ॥ २१ ॥ राजा बोला—हे भगवन् ! प्रभूत आश्चर्योंसे व्याप्त हुए इस पर्वतका सब सिद्ध आश्रयकरके निवास करते हैं, सो यह तो बताइये कि, यह

कितना ऊँचा है ? और लंबा चौड़ा कितना है ? ॥ २२ ॥ ऋषि बोले—यह पर्वत छत्तीस योजन ऊँचा, मस्तकमें दश योजन चौड़ा, और लंबाईके विस्तारसे मूलमें सोलह योजन है ॥ २३ ॥ हरिचन्दन, मन्दार, आम, देवदारु, सरल और अर्जुनके वृक्षोंसे वह पर्वत सुशोभित था ॥ २४ ॥ कालागुरु, लवंग, और निकुंजों एवं लतागृहोंसे वह गिरिराज

विस्तराभ्यांसमूलेषोडशयोजनः ॥२३॥ हरिचंदनमंदारचूतराजिविराजितः ॥ देवदारुद्रुमाकीर्णःसरलार्जुनशोभितः॥२४॥ कालागुरुलवंगैश्चनिकुंजैश्चलतागृहैः ॥ विराजतेगिरिश्रेष्ठः सदापुष्पफलप्रदः॥२५॥ तद्दृष्ट्वापर्वतंरम्यंतदादुर्भिक्षपीडितः ॥ भृगुश्चकारतत्रैववसतिंहृष्टमानसः॥२६॥ तस्मिन्मनोहरेशैलेकंदरेषुवनेषुच ॥ चिरकालं तपस्तेपेतपःसुनिरतोमुनिः॥२७॥

इति श्रीपद्मपुराणे माघमासमाहात्म्ये मणिशैलवर्णनोनाम तृतीयोऽध्यायः ॥ ३ ॥

निरन्तर विराजमान रहता था, अथच वहाँ सदाही फल और पुष्प प्राप्त होते थे । २५ ॥ उस सुन्दर पर्वतका अवलोकन कर दुर्भिक्षसे पीडित हुए भृगुजी महाराजने अपने मनमें प्रसन्न हो वहाँही निवास किया ॥ २६ ॥ तपश्चर्यामें निरत होकर भृगुजी महाराजने उक्त मनोहर शैलके ऊपर कन्दराओं और वनमें चिरकाल पर्यन्त तप किया ॥ २७ ॥

इति श्रीपद्मपुराणे माघमासमाहात्म्ये भाषाटीकायां पर्वत वर्णनो नाम तृतीयोऽध्यायः ॥ ३ ॥

ऋषि बोले—हे राजन्! जब आश्रमवासी ब्राह्मण इस प्रकार स्थित हो रहे थे, उसीसमय दो विद्याधर दम्पति (पतिपत्नी) पर्वतसे उतरकर आये ॥ १ ॥ वह दोनों अत्यन्तही दुःखित होरहे थे, सुलताम् आकर ऋषिको प्रणाम करके उपस्थित होगये, उन दोनोंकी ऐसी गति देख कोमलवाक्यसे ब्रह्मर्षि बोले ॥ २ ॥ हे विद्याधर! प्रीति

ऋषिरुवाच॥ एवंतिष्ठतिराजेन्द्रद्विजेस्वाश्रमवासिनि॥ अवतीर्यागतौशैलाद्द्वौविद्याधरदंपती॥१॥ समागम्यमुनिंनत्वा स्थितौतावतिदुःखितौ॥ तथाविधौचतौदृष्ट्वामंजुवाक्यंद्विजोब्रवीत्॥२॥ वदविद्याधरप्रीत्याशुवांकिमतिदुःखितौ॥ श्रुत्वातस्यमुनेर्वाक्यंप्राहविद्याधरोद्विजम्॥३॥ श्रूयतांतापसश्रेष्ठममदुःखस्यकारणम्॥ सुकृतस्यफलंप्राप्यप्राप्तोऽस्मित्रिदशालयम्॥४॥ लब्धोऽपिदेवतादेहंमुखंव्याघ्रस्यमेऽभवत्॥ नजानेकर्मणःकस्यविपाकोयमुपस्थितः॥५॥इतिसंस्मृत्यसंस्मृत्यनलेभेशर्ममे मनः॥ अन्यच्चश्रूयतांविप्रयेनमेह्याकुलंमनः।६।

पूर्वक बताओ! तुम दोनों अतिशय दुःखित क्यों रहे हो? उनके ऐसे वाक्य सुन वह विद्याधर द्विजराजसे कहने लगा ॥ ३ ॥ हे परमतपस्वी! हमारे दुःखका कारण सुनिये, पुण्यकर्मोंके करनेसे तो मुझे स्वर्गलोककी प्राप्ति हुई है ॥ ४ ॥ देवशरीर प्राप्त होनेपरभी मुझे व्याघ्रका मुख प्राप्त हुआ है, मैं नहीं जानता किस बुरे कर्म का यह बुरा फल उपलब्ध हुआ है ॥ ५ ॥ एक तो इसी बातका स्मरण करनेसे मेरे मनको विश्राम नहीं मिलता, तिसपरभी हमारे चित्त

के व्याकुल रहनेका दूसरा कारण सुनिए ॥ ६ ॥ कल्याणमूर्ति हमारी इस पत्नी, की वाणी मधुर और रूप सुन्दर है, यह समस्त सद्गुणशालिनी नृत्य और गानकी संपूर्ण कलाओंको जाननेवाली है ॥ ७ ॥ जब यह कुमारी थी उस समय इस निर्मलने मनोहर सातों स्वरोंका उत्थान करके वीणा बजाया ॥ ८ ॥ तब वीणा बजानेके रसको जाननेवाले देवर्षि

याइयंममकल्याणीमधुरवाणीसुरूपिणी ॥ नृत्यगीतकलाभिज्ञासर्वसद्गुणशालिनी ॥ ७ ॥
यस्मिन्कालेकुमारीयंतदाचाऽमलयानया ॥ विपंचींपरिवादिन्यातंत्रीभिःसप्तभिर्भृशम्॥ ८ ॥
वीणावादरसाभिज्ञस्तोषितोनारदोमुनिः ॥ मुग्धभावेपिगायंत्यात्वनयारक्तकंठया ॥ ९ ॥
विचित्रस्वरनादज्ञोदेवराजोपितोषितः ॥ अस्याःकौतुकभिन्नांग्यावादयंत्याविपंचिकाम्॥१०॥
नानावक्रगतिस्निग्धंश्रुत्वातंपंचमध्वनिम् ॥ तुतोषोद्भिन्नरोमांचोधुन्वन्मौलिंमहेश्वरः ॥११॥

नारदजी इससे सन्तुष्ट होगये। यद्यपि यह मुग्धभावपूर्वक मनोहर कंठ (स्वर) से गान कर रही थी ॥ ९ ॥ तथापि विचित्र स्वरनादके ज्ञाता देवराजको इसने मोहित कर लिया। जिस समय यह वीणा बजा रही थी, उस समय कौतुकवशात् इसके अंग थिरक रहे थे ॥ १० ॥ अनेक प्रकारकी वक्रगतिसे स्निग्ध हुई उसकी पंचमध्वनिको सुनकर सन्तुष्ट होजानेके कारण महादेवजीके रोम खड़े होगये, सुतराम् वे अपने सिरको हिलाने लगे ॥ ११ ॥ शीलस्वभाव,

मा.मा   मा.टी
२७   अ० ४

उदारता आदि गुण एवं रूप और यौवनकी सम्पत्तिसे युक्त इसकी समान अन्य कोई स्त्री स्वर्गमें भी नहीं है ॥ १२ ॥ कहाँ तो यह देवमुखी स्त्री और कहाँ (इसके लिए) व्याघ्रमुखवाला मैं पुरुष ? हे ब्रह्मन् ! इस चिन्तासेही मैं रात दिन अपने हृदयमें भस्म होता रहता हूँ ॥ १३ ॥ हे इक्ष्वाकुनन्दन ! विद्याधरके ऐसे वाक्य सुन दिव्यलोचन और

शीलौदार्यगुणग्रामरूपयौवनसंपदा ॥ नानयासदृशी नाके काचिदस्ति नितंबिनी ॥ १२ ॥
क्वेयं देवमुखी रामा क्वाहं व्याघ्रमुखः पुमान् ॥ इति ब्राह्मण संचिन्त्य दह्यामि हृदि सर्वदा ॥ १३ ॥
इति विद्याधरप्रोक्तं श्रुत्वा चैक्ष्वाकुनंदन ॥ त्रिकालज्ञो भृगुः प्राह प्रहसन्दिव्यलोचनः ॥ १४ ॥
शृणु विद्याधरश्रेष्ठ विचित्रं कर्मणां फलम् ॥ प्राप्य प्राज्ञा न मुह्यंति मुह्यंत्यज्ञानचेतसः ॥ १५ ॥
मक्षिकापदमात्रं तु यथा हि विषमं विषम् ॥ क्रिया त्वविहिताल्पापि विपाके दारुणा तथा ॥ १६ ॥

त्रिकालदर्शी भृगुजीमहाराज हँसकर बोले ॥ १४ ॥ सुनो श्रेष्ठ विद्याधर ! कर्मोंके विचित्र फलको पाकर ज्ञानी पुरुष तो मोह नहीं करते किन्तु अज्ञानियोंको मोहकी प्राप्ति होजाती है ॥ १५ ॥ जैसे मक्खीके चरणके बूंद सदृश भी विष विषही होता है, ऐसे ही अल्पविधिरहितभी क्रिया फल देनेमें बड़ी दारुण होती है ॥ १६ ॥ पहिले जन्ममें तुमने माघमासकी एकादशीके दिन व्रत धारण करके द्वादशीके दिन शरीरमें तेल लगा लिया था, इसीकारण तुम्हारा मुख

व्याघ्रका होगया है ॥ १७ ॥ पवित्र एकादशीके दिन उपवास धारण करके पुरूरवानेभी पहिले ऐसेही द्वादशीको तैल सेवन कर लिया था, इसीसे उसका भी देह कुरूप होगया था ॥ १८ ॥ जब पुरूरवाने अपने देहको ऐसा कुरूप देखा तब उसके चित्तको बड़ा खेद हुआ तब वह गिरिराजके निकट सरोवरके तटपर चला आया ॥ १९ ॥ परम प्रीति पूर्वक स्नान करके पवित्र होकर कुशासनके ऊपर बैठ गया, और समस्त इन्द्रियोंका विजय करके, नवीन नीले मेघके समान

उपोष्यैकादशींमाघेतैलाभ्यंगःकृतस्त्वया ॥ द्वादश्यांप्राग्भवेदेहेतेनव्याघ्रमुखोभवान् ॥ १७ ॥ उपोष्यैकादशींपुण्यांद्वादश्यांतैलसेवनात् ॥ कुरूपंप्राप्तवान्देहंपुराह्येवंपुरूरवा ॥ १८ ॥ दृष्ट्वा-त्मनः कुकायंसतेनदुःखेनदुःखितः ॥ गिरिराजंसमागम्यदेवतासरसस्तटे ॥ १९ ॥ स्थित्वा-च परमप्रीत्याशुचिःस्नातःकुशासने ॥ नवनीलघनश्यामंनलिनायतलोचनम् ॥ २० ॥ शंख-चक्रगदापद्मधरंपीताम्बरावृतम् ॥ कौस्तुभेनविराजंतंवनमालाधरंहरिम् ॥ २१ ॥ चिंतयन्हृदये-राजानिगृहीताखिलेन्द्रियः ॥ मासत्रयंनिराहारस्तपस्तेपेसुदारुणम् ॥ २२ ॥ अल्पेनतपसातुष्टः

श्याममूर्तिः कमलवत् विस्तृत नेत्रोंवाले शंख, चक्र, गदा, पद्मधारी, पीताम्बर ओढ़े, कौस्तुभमणि जिनकी शोभा बढ़ारही है, और जिन हरिने वनमाला धारण कर रक्खी है उनका अपने हृदयमें ध्यान करके राजा ने तीन मास पर्य्यन्त निराहार रहकर दारुण तप किया ॥ २० ॥ २१ ॥ २२ ॥ चूँकि पहिले पूर्व जन्ममेंभी राजाने पूजा करी थी, इस

हेतु भगवान् थोड़ेही समयमें अल्पतप करनेसेही प्रसन्न होगये; और राजाकी उक्त पूजाका स्मरण करके स्वयं प्रादुर्भूत
हुए ॥२३॥ मकरके सूर्यमें माघशुक्ल द्वादशी के दिन आनन्द पूर्वक उस चक्रवर्ती राजाका शंखोदक से अभिषेक करके
॥२४॥ वासुदेव भगवान् ने तैलाभ्यंग किया चेष्टाका स्मरण कराय अत्यन्त कमनीय, अतिशय सुन्दर और मनोहर रूप

सप्तजन्मकृतार्चनः । संस्मरंस्तस्यरूपंतत्सदेवेशस्तदास्वयम् ॥२३॥ माघस्यशुक्लपक्षेतुद्वाद-
श्यांमकरेरवौ ॥ शंखाद्भिरभिषिच्याशुमुदातंचक्रवर्तिनम् ॥२४॥ वासुदेवोददौतस्मैस्मारयं-
स्तैलचेष्टितम् ॥ अतीवसुंदरंरूपंकमनीयंमनोहरम् ॥ २५ ॥ येनतंचकमेदेवीउर्वशीदेवना-
यिका ॥ इत्थंलब्धवरोराजाकृतकृत्यः पुरंगतः॥२६ इतिकर्मगतिंज्ञात्वाकिंविद्याधरखिद्यसे॥
भवान्परिजिहीर्षुश्चेद्दानवस्यविरूपताम् ॥ २७ ॥ शीघ्रंमद्वचनादेवप्राचीनाघविनाशनम् ॥
माघमासेकुरुस्नानंमणिकूटनदीजले ॥२८॥ मुनिसिद्धसुरैर्जुष्टेकथयिष्यामितद्विधिम् ॥ तत्र

उसे दे दिया ॥२५॥ उसकी सुन्दरता के कारण उर्वशी नामक अप्सरा उसे चाहने लगी, राजा इसप्रकार वर पाय कृत-
कृत्य हो अपने नगरको चला गया ॥२६॥ हे विद्याधर ! इस प्रकार कर्मों की गतिको जानकर तुम क्यों खेद करते हो,
और यदि तुम इस दैत्यरूपका परित्याग करना चाहते हो तो ॥२७॥ तुम हमारे कहनेसे माघमास में मणिकूट नदीके
जलमें स्नान करो, तब तुम्हारे प्राचीन जन्मके पापोंका विनाश हो जायगा ॥ २८ ॥ उक्त नदीके ऊपर मुनीश्वर सिद्ध

पुरुष और देवता निवास करते हैं, स्नान की विधि भी मैं तुम्हारे प्रति वर्णन करूँगा, और तुम्हारे भाग्य से माघमास निकट ही अर्थात् आज से पांचवें दिन आनेवाला है ॥२६॥ पौषशुक्ल एकादशी से आरम्भ करके भूमिके ऊपर शयन और एक मासपर्य्यन्त निराहार रहकर तीनों काल में स्नान करना कर्त्तव्य है ॥ ३० ॥ हे उत्तम विद्याधर !

भाग्यवशान्माघोनिकटःपंचमेहनि ॥२६॥ पौषस्यैकादशीशुक्लामारभ्यस्थंडिलेशयः ॥ मासमेकंनिराहारस्त्रिकालंस्नानमाचरेत् ॥ ३०॥ त्रिकालमर्चयन्विष्णुंत्यक्तभोगोजितेन्द्रियः॥ माघस्यैकादशी शुक्लायावद्विद्याधरोत्तम ॥ ३१ ॥ ततोनिर्दग्धपापं त्वांद्वादश्यांपुण्यवत्सरे ॥ अभिषिच्येशिवैस्तोयैर्मंत्रपूतैरहंसुर ॥२२॥ कामवक्त्रोपमंवक्त्रंकरिष्यामितवानघ ॥ देवतावदनोभूत्वात्वंविद्याधरसत्तम ॥२३॥ अनयावरवर्णिन्यासार्धंक्रीडयथासुखम् ॥ ज्ञातमाघप्रभा-

इन्द्रिय निग्रह पूर्वक भोगोंका परित्याग करके माघशुक्ल एकादशी पर्य्यन्त तीनों समयमें श्रीविष्णु भगवान् का पूजन करै ॥३१॥ फिर जब तुम्हारे समस्त पाप दूर हो जायँगे तब द्वादशी के पवित्र दिन हे किन्नर ! मन्त्रों से पवित्र किये हुए कल्याणकारी जलों के द्वारा तुम्हारा अभिषेक करके ॥३२॥ हे अनघ ! तुम्हारे मुखको कामदेव के समान सुन्दर बना देंगे, हे विद्याधरों में श्रेष्ठ ! तब तुम देवमुखधारी होकर ॥ ३३ ॥ इस सुमुखी के साथ नित्य क्रीडा करोगे, चूँकि तुम्हें

माघमासका माहात्म्य विदित होगया है अतएव तुम माघस्नान नित्यही किया करो ॥३४॥ ऐसा करनेसे सदाही तुम्हारे मनोरथों की सिद्धि होती रहेगी, सर्वज्ञ महात्मा भृगुजी ने इस प्रकार उसके प्रति वर्णन किया ॥ ३५ ॥ हे राजेन्द्र! विद्याधर के प्रति फिर भी गाथा का वर्णन किया कि—माघस्नान करने से विपत्तिका नाश और पापोंका क्षय होता है ॥३६। माघ स्नान यज्ञों से अधिक फल प्रदान करता है, माघ स्नान करने से समस्त दानों का फल प्राप्त होता है,

वस्त्वंमाघस्नानंसदाकुरु ॥ ३४ ॥ यथामनोरथावाप्तिर्जायतेतवसर्वदा ॥ इत्युक्तंभृगुणातस्मैसर्वज्ञेनमहात्मना॥३५॥विद्याधरायराजेन्द्र पुनर्गाथाउदाहृता॥ माघस्नानैर्विपन्नाशोमाघस्नानैरघक्षयः ॥३६॥ सर्वयज्ञाधिकोमाघःसर्वदानफलप्रदः ॥ माघोगर्जतियज्ञेभ्योमाघोयोगाबगर्जति ॥ ३७ ॥ तीव्राचतपसोमाघोभोविद्याधरगर्जति ॥ पुष्करेचकुरुक्षेत्रेब्रह्मावर्तेपृथूदके ॥३८॥ अविमुक्तेप्रयागेचगंगासागरसंगमे ॥ यत्फलंदशभिर्वर्षैःप्राप्यतेनियमैर्नरैः॥ ३९ ॥

विशेष क्या कहैं, केवल एक माघ (स्नान) ही समस्त यज्ञों और योगोंसे अधिक गर्जना करता है ॥३७॥ हे विद्याधर उग्रतप की अपेक्षा भी माघ (स्नान) ही अधिक गर्जना करता है, पुष्कर, कुरुक्षेत्र, ब्रह्मावर्त्त, पृथूदक ॥ ३८ ॥ काशी, प्रयागराज और गंगासागर संगम, इन स्थानोंमें दश वर्ष पर्यन्त नियमों का पालन करने से जिस फलकी प्राप्ति मनुष्यों को होती ह । ३९॥ वह फल माघमासमें केवल तीनही दिन स्नान करने से मिलता है, जिनके चित्तमें चिरकाल पर्यन्त

स्वर्गलोक में निवास करने के अनुराग का उदय हो रहा हो ॥४०॥ उन्हें चाहिये कि जहाँ कहीं बन पड़े मकर के सूर्य (अर्थात्–माघमास) में स्नान करें, आयु, आरोग्यता, संम्पत्ति, रूप और सौभाग्यता आदि गुणों की प्राप्तिके निमित्त जिनकी कामना हो ॥ ४१ ॥ उन्हें माघस्नान कदापि न छोड़ना चाहिये, जो नरक से डरते हैं, जिन्हें संचित दरिद्रता का

तत्फलंप्राप्यतेमाघेत्र्यहस्नानान्नसंशयः ॥ स्वर्गलोकेचिरंरागोयेषांमनसिवर्तते ॥४०॥ यत्रका पिजलेतैस्तुस्नातव्यंमृगभास्करे ॥ आयुरारोग्यसंपत्तीरूपसुभगतागुणे ॥४१॥ येषांमनोरथ स्तैस्तुनत्याज्यंमाघसेवनम् ॥ येचबिभ्यंतिनरकाद्येदरिद्राच्चसंचितात् ॥ ४२ ॥ सर्वथातैः प्रयत्नेनमाघेकार्यंनिमज्जनम् ॥ दारिद्र्यपापदौर्भाग्यपंकप्रक्षालनायच ॥ ४३ ॥ माघस्नानान्न- चान्योस्तिउपायोराजसत्तम ॥ श्रद्धाहीनानिकर्माणितथात्यल्पफलानिवै ॥ ४४ ॥ फलंददा- तिसंपूर्णंमाघस्नानंयथातथा ॥ अकामोवासकामोवायत्रक्वापिबहिर्जले॥४५॥ इहामुत्रचदुः-

भय है ॥ ४२ ॥ उन्हें सर्वथा यत्न पूर्वक माघमास में स्नान करना कर्त्तव्य है, दरिद्रता पाप और मन्दभाग आदि पंक (कीचड़) के प्रक्षालन करने के लिए भी ॥४३॥ हे राजसत्तम ! माघस्नान से अधिक और कोई उपाय नहीं है जो कम श्रद्धा रहित होके किए जाते हैं वे अल्पफल प्रदान करते हैं किन्तु माघ स्नान चाहैं जैसे किया जाय तथापि वह संपूर्ण फल प्रदान करता है। निष्काम हो अथवा सकाम कहीं बाहर जल में ॥ ४५ ॥ माघ स्नान करनेवाला व्यक्ति क्या

इसलोक अथवा क्या परलोक कहीं भी दुःख नहीं भोगता, जैसे कृष्णपक्षमें चन्द्रमाका क्षय और शुक्लपक्षमें वृद्धि होती है ॥ ४६ ॥ इसीप्रकार माघस्नान करनेवालेके पापोंका क्षय और पुण्योंकी वृद्धि होती है, जैसे रत्नाकर (सागर) में भाँति २ के रत्न होते हैं, उसीप्रकार माघस्नान करनेसे मनुष्योंको विविधभाँतिके पुण्योंकी प्राप्ति होती है । आयु,

ख्वानिमाघस्नायीनविंदति ॥ पक्षद्वयेयथाचन्द्रोवर्द्धतेक्षीयतेतथा ॥४६॥ पातकंक्षीयतेमाघे-
पुण्यराशिश्चवर्द्धते ॥ यथाब्धौखलुरत्नानिजायंतेविविधानिच ॥४७॥ स्नानात्पुण्यानिजा-
यन्तेनराणांमाघतस्तथा ॥ आयुर्वित्तंकलत्रादिसंपदःप्रभवन्तिच ॥४८॥ कामधेनुर्यथाकामं
चिंतामणिस्तुचिंतितम् ॥ माघस्नानंददातीहतद्वत्सर्वान्मनोरथान् ॥ ४९॥ कृतेतपःपरंज्ञानं
त्रेतायांयजनंतथा ॥ द्वापरेतुकलौज्ञानंमाघःसर्वयुगेषुच ॥५०॥ सर्वेषामेववर्णानामाश्रमाणां-

धन और स्त्री आदि अनेक सम्पत्तियोंका भी लाभ होता है ॥४७॥४८॥ जैसे कामधेनु अपनी संपूर्ण कामनाको और चिन्तामणि समस्त चिन्ताओं (मनोरथों) को पूर्ण कर देती है, इसी प्रकार माघस्नान भी अखिल मनोभिलाषाओं को पूर्ण कर देता है ॥ ४९ ॥ सतयुगमें तप, त्रेतामें परमज्ञान, द्वापरमें यज्ञ और कलियुगमें केवल ज्ञान एवं माघस्नान सबही युगोंमें फलको देनेवाला है ॥ ५० ॥ हे राजन् ! चारो वर्ण और सब आश्रमोंके लिए माघस्नान धर्मकी धाराओं

से वर्षा करता है ॥ ५१ ॥ वसिष्ठजी बोले—भृगुजीके ऐसे वाक्य सुनकर उस विद्याधरने पत्नीसहित भृगुजीके साथ ही उसी आश्रममें पर्वतके झरनेमें यथोक्त विधिसे स्नान किया ॥ ५२ ॥ इसके अनन्तर जब उसे भृगुजीके अनुग्रहसे मनोरथ सिद्धिका लाभ होगया अर्थात् जब उसका मुख देवताओंके जैसा होगया तब वह उसी मणिपर्वतके ऊपर

चमूपते ॥ माघस्नानंतुधर्मस्यधाराभिरभिवर्षति ॥५१॥ वसिष्ठउवाच॥ इतिवाक्यंभृगोःश्रुत्वा-तस्मिन्नेवाश्रमेसुरः ॥ सहैवभृगुणामाघेगिरिनिर्झरिणीह्रदे ॥ यथोक्तविधिनास्नानमकरोद्भार्ययासह ॥ ५२ ॥ भृगोरनुग्रहात्सोथसंप्राप्यमनसेप्सितम् ॥ देवतावदनोभूत्वामुमुदेमणिपर्वते ॥ ५३ ॥ आजगामभृगुर्विंध्यंतमनुग्राह्यहर्षितः ॥ ५४ ॥ मणिमयगिरिराजेस्नानमात्रेण-माघेमदनवदनरूपस्तत्रविद्याधरोऽभूत् ॥क्षपितनियमदेहोविन्ध्यपादावतीर्णोभृगुरपिसहशिष्यै राजगामाथरेवाम् ॥५५॥अखिलभुवनसारंमाघमाहात्म्यमेतद्द्विजवरभृगुणोक्तंभूपविद्याधराय॥

आनन्द उपभोग करने लगा ॥ ५३ ॥ इधर भृगुजीमहाराज भी उसके ऊपर अनुग्रह करके अतिशय प्रसन्न हो विन्ध्या-चलके ऊपर चले गये ॥ ५४ ॥ मणिमय गिरिराजके ऊपर केवल माघमासमें स्नानमात्र करनेसे विद्याधरका मुख कामदेवके मुखके सदृश होगया, नियमोंका आचरण करनेसे जिनका शरीर कृश होगया है ऐसे भृगुजी भी विन्ध्या-चलसे उतरकर अपने शिष्योंसहित रेवानदीके तटपर आये ॥ ५५ ॥ हेराजन् ! संपूर्ण भुवनोंके साररूप इस माघ

माहात्म्यका द्विजराज भृगुजी ने विद्याधरके प्रति वर्णन किया, जो व्यक्ति नित्यही इसका श्रवण करते हैं उन्हें विविध प्रकारके विचित्र फल और मनोरथ देवताओंके समान प्राप्त होते हैं ॥ ५६ ॥ श्री माघमासमाहात्म्येभाषाटीकायां वसिष्ठ दिलीप संवादो नाम चतुर्थोऽध्यायः ॥ ४ ॥

विविधिफलविचित्रंयःशृणोतीहनित्यं रुचिरसकलकामान्देववत्प्राप्नुयात्सः ॥५६॥ इतिश्री-पद्मपुराणे उत्तरखण्डे माघमासमाहात्म्ये वसिष्ठदिलीपसंवादे चतुर्थोऽध्यायः ॥ ४ ॥

वसिष्ठजी बोले—जिसप्रकार एक समय कार्तवीर्यके प्रश्न करनेपर दत्तात्रेयजीने वर्णन किया था, हे नृपसत्तम ! अब हम उसी माघमाहात्म्य को तुम्हारे प्रति वर्णन करते हैं ॥ १ ॥ साक्षात् नारायणस्वरूप दत्तात्रेयजी महाराज जब

वसिष्ठउवाच । अधुनामाघमाहात्म्यंप्रवक्ष्यामि नृपोत्तम॥ पृच्छतेकार्तवीर्यायदत्तात्रेयो-दितंयथा ॥१॥ दत्तात्रेयंहरिंसाक्षाद्वसंतंसह्यपर्वते ॥ पप्रच्छतंद्विजंगत्वाराजामाहिष्मतीपतिः ॥२॥ सहस्रार्जुनउवाच ॥ भगवन्योगिनांश्रेष्ठसर्वेधर्माःश्रुतामया ॥ माघस्नानफलं ब्रूहिकृपया-

सह्य पर्वतके ऊपर निवास करते थे, तब माहिष्मती नगरीके राजाने उनसे जाकर यह प्रश्न किया ॥ २ ॥ सहस्रार्जुन बोला—हे भगवन् ! आप सब योगियोंमें श्रेष्ठ हैं, मैंने सम्पूर्ण धर्मों का श्रवण किया, अब हे सुव्रत ! माघस्नानके

फलका वर्णन करिये ॥ ३ ॥ दत्तात्रेयजी बोले—हे नृपशार्दूल ! इस प्रश्नका शुभ उत्तर श्रवण करो, प्रथम ब्रह्माजी ने महात्मा नारदजीके प्रति वर्णन किया था ॥ ४ ॥ माघस्नानका वही प्रभूत सब फल मैं वर्णन करता हूँ, यथादेश, यथातीर्थ यथाश्राद्ध और यथा क्रिया ॥ ५ ॥ जो मनुष्य इस भारतवर्ष और विशेषकर कर्मभूमिमें माघस्नान नहीं करते

ममसुव्रत॥ ३॥दत्तात्रेयउवाच ॥ श्रूयतांनृपशार्दूलएतत्प्रश्नोत्तरंशुभम्॥ ब्राह्मणोक्तं पुराह्येतन्नार-दायमहात्मने ॥४॥ तत्सर्वंकथयिष्यामिमाघस्नानफलंमहत् ॥ यथादेशंयथातीर्थं यथाश्राद्धं-यथाक्रियाम् ॥५॥ अस्मिन्वैभारतेवर्षेकर्मभूमौविशेषतः ॥ अमाघस्नायिनांनृणांनिष्फलंज न्मकीर्तितम् ॥६॥ असूर्यंगगनंयद्वद्चन्द्रमुडुमंडलम् ॥ तद्वन्नाभातिसत्कर्ममाघस्नानंविना नृप ॥७॥व्रतैर्दानैस्तपोभिश्चनतथाप्रीयतेहरिः ॥ माघमज्जनमात्रेणयथाप्रीणाति केशवः ॥८॥ नसमंविद्यतेकिंचित्तेजःसौरेणतेजसा ॥ तद्वत्स्नानेनमाघस्यनसमाःक्रतुजाःक्रियाः ॥ ९ ॥

उनका जन्म निष्फलही है ॥ ६ ॥ जैसे विना सूर्यके आकाश और विना चन्द्रमाके तारागणकी शोभा नहीं होती है उसीप्रकार हे राजन् ! माघस्नानके विना अन्य सत्कर्म सुशोभित नहीं होते ॥ ७ ॥ व्रत दान और तप करनेसे भी नारायण ऐसे प्रसन्न नहीं होते, जैसे माघमासमें केवल स्नानमात्रही करनेसे भगवान् प्रसन्न हो जाते हैं ॥ ८ ॥ जैसे-

सूर्यनारायणके तेजके समान अन्य कोई तेज नहीं है, इसी प्रकार माघस्नानके समान यज्ञानुष्ठानभी नहीं है ॥ ९ ॥ मनुष्य को चाहिये कि, वासुदेव भगवान्‌की प्रीति, सब पापोंका नाश, और स्वर्गलोककी प्राप्तिके लिये माघस्नान अवश्य करे ॥१०॥ अतिशय पुष्ट और बलवान् जो सदैव अपवित्र और नाशवान् है-यदि माघस्नान न किया तो ऐसे देहसे क्या लाभ है ॥११॥ ऐसे देहमें अस्थियोंके स्तम्भ, स्नायुओंके बन्धन, मांस और रक्तके लेप हैं, इसके ऊपर चर्म लिपट रहा है,

प्रीतयेवासुदेवस्य सर्वपापापनुत्तये ॥ माघस्नानं प्रकुर्वीतस्वर्गलोकायमानवः ॥ १० ॥
किंचलेनदेहेनसुपुष्टेनबलीयसा ॥ अध्रुवेणाप्यशुचिना माघस्नानंविनाभवेत् ॥ ११ ॥ अस्थि-
स्तंभंस्नायुबद्धंमांसक्षतजलेपनम् ॥ चर्मावनद्धंदुर्गंधंपात्रं मूत्रपुरीषयोः ॥ १२ ॥ जराशोकवि-
पद्व्याप्तंरोगमंदिरमातुरम् ॥ रजस्वलमनित्यंचसर्वदोषसमाश्रयम् ॥ १२ ॥ परोपतापितापार्तंपर-
द्रोहिपरंविषम् ॥ लोलुपंपिशुनंक्रूरंकृतघ्नं क्षणिकंतथा ॥ १४ दुष्पूरंदुर्धरंदुष्टंदोषत्रयसमन्वितम् ॥

यह शरीर मूत्र और पुरीष (विष्ठा) का पात्र और दुर्गन्धिसे पूर्ण है ॥ १२ ॥ जरा शोक और विपत्तिसे व्याप्त है, रोग और दुःखोंका मन्दिर है, अनेक दोष इसमें भरे रहते हैं, एवं यह काया अनित्य है ॥१३॥ दूसरों को सन्ताप देनेवाला स्वयंभी तापोंसे व्याप्त, दूसरोंसे द्रोह करनेवाला, परम विषरूप, लोभी, पिशुन, (निन्दक) क्रूर, (दुष्ट) और कृतघ्न अर्थात् दूसरोंके द्वारा किये हुए उपकारोंको न माननेवाला, और क्षणविध्वंसी है ॥ १४ ॥ इसकी पूर्ति बड़े दुःखोंसे

होती है, इसका पोषणभी बड़े २ क्लेशोंसे होता है, यह दुष्ट—सत्व, रज, तम, तीनों प्रकार के दोषोंसे लिप्त है. अशुद्ध है, स्राव करनेवाला, छिद्रोंसे व्याप्त और दैहिक दैविक भौतिक इन तीनों तापोंसे व्याप्त रहता है ॥ १५ ॥ इसकी स्वाभाविक ही अधर्म में प्रवृत्ति रहती है, सैकड़ों तृष्णाएँ इसमें भरी पड़ी हैं, नरकके द्वाररूप कामक्रोध और महालोभ इसमें उपस्थित हैं ॥ १६ ॥ अन्तमें इसमें कीड़े पड़ते या यह भस्म होता अथवा श्वानोंके खानेमें आता है;

अशुचिस्राविसच्छिद्रंतापत्रयविमोहितम् ॥ १५ ॥ निसर्गतोऽधर्मरतंतृष्णाशतसमाकुलम् ॥
कामक्रोधमहालोभनरकाद्वारसंस्थितम् ॥१६॥ क्रिमिविड्भस्मभवतिपरिणामेशुनांहविः ॥
इदृक्शरीरंव्यर्थंहिमाघस्नानविवर्जितम् ॥१७॥ बुद्बुदाइवतोयेषुपूतिकाइवजंतुषु ॥ जाय-
न्तेमरणायैवमाघस्नानविवर्जिताः ॥ १८ ॥ अवैष्णवोहतोविप्रोहतंश्राद्धमयोगिच ॥ अब्रह्म-
ण्यंहतंक्षेत्रमनाचारंहतंकुलम् ॥१९॥ सदंभश्चहतोधर्मःक्रोधेनैवहतंतपः ॥ अदृढंचहतंज्ञानं-

यदि माघस्नान न किया जाय तो यह ऐसा (निंद्य) शरीर निष्फल ही है ॥ १७ ॥ यदि मनुष्य माघस्नान न करैं, तो उनका जन्म जल के बुद्बुद अथवा दीमककी भाँति नष्ट हो जाने के लिये होता है ॥१८॥ ब्राह्मणमें यदि विष्णु-भगवान्की भक्ति न हो तो, उसे नष्ट जानना चाहिए, अयोगी श्राद्ध नष्ट होता है, जहाँ ब्राह्मणोंकी भक्ति न हो वह क्षेत्र नष्ट है, एवं आचाररहित कुलका विनाश हो जाता है ॥ १९ ॥ छलपूर्ण धर्म, क्रोधयुक्त तप, दृढ़ता रहित ज्ञान

और अभिमानसे शास्त्रोंका श्रवण करना ये सब नष्ट होते हैं ॥ २० ॥ जिसमें गुरुभक्ति न हो उस स्त्री और ब्रह्मचारी को नष्ट जानना चाहिये, जो अग्नि प्रदीप्त न हो उसमें किया हुआ होम नष्ट हो जाता और अकेले भोजन करना भी नष्ट होता है ॥ २१ ॥ उपजीविकाके निमित्त कन्या हत है, केवल अपनेही लिये जो भोजन बनाया जाता है वह हत

प्रमादेनहतंश्रुतम् ॥ २० ॥ गुर्वभक्ताहतानारीब्रह्मचारीतथाहतः ॥ अदीप्तेमौहतोहोमोहताभुक्तिरसाक्षिका ॥२१॥ उपजीव्याहताकन्यास्वार्थेंपाकक्रियाहता ॥ शूद्रभिक्षोहतोयागःकृपणस्यहतंधनम् ॥२२॥ अनभ्यासाहताविद्याहतोराजाविरोधकृत् ॥ जीवनार्थंहतंतीर्थंजीवनार्थंहतंव्रतम् ॥२३॥ असत्याचहतावाणीतथापैशुन्यवादिनी ॥ संदिग्धश्चहतोमंत्रोऽव्यग्रचित्तोहतोजपः ॥२४॥ हतम श्रोत्रियेदानंहतो लोकश्चनास्तिकः ॥ अश्रद्धयाहतंसर्वंकृतंयत्पारलौकिकम्

है, शूद्र भिक्षुकका यज्ञ नष्ट है इसी प्रकार कृपणका धन भी नष्ट है ॥ २२ ॥ अभ्यासरहित विद्या, विरोध करनेवाला राजा, प्राणनिर्वाहके लिए तीर्थसेवन, और जीवन ही के निमित्त व्रतका आचरण ये सब नष्ट हैं ॥ २३ ॥ असत्य तथा पैशुन्य (चुगली) से वाणी नष्ट हो जाती है, जिसमें सन्देह हो ऐसे मन्त्रका जप व्यर्थ है, एवं चित्त व्यग्र होनेसे जप भी हत अर्थात् व्यर्थ ही होता है ॥ २४ ॥ जो वेदपाठी नहीं है उसे दान देना व्यर्थ है, नास्तिक अर्थात् वेदनिन्दक

लोक हत है, और श्रद्धारहित होके परलोकके निमित्त जो कुछ कर्म किया जाय वह सब वृथा है ॥ २५ ॥ हे राजसत्तम ! इस लोकमें दरिद्रतासे मनुष्यों का सभी कुछ नष्ट है, जैसे उक्त सब नष्ट हैं, इसी प्रकार माघस्नान न करनेवाले मनुष्योंका जीवन भी नष्ट अर्थात् व्यर्थ है ॥ २६ ॥ जो व्यक्ति मकरके सूर्यमें सूर्योदय के प्रथम स्नान नहीं करते, उनके पाप कैसे छूटेंगे, और स्वर्गको कैसे जायंगे ॥ २७ ॥ ब्रह्मघाती, सुवर्णका चोर, मद्यपान कर्ता, गुरुपत्नीगामी,

॥२५॥ इहलोकेहतोनृपांदरिद्रेणनृपोत्तम ॥ मनुष्याणांतथाजन्ममाघस्नानंविनाहतम्॥२६॥ मकरस्थेरवौयोहिनस्नात्यनुदितेरवौ ॥ कथंपापैःप्रमुच्येतकथंसत्रिदिवंव्रजेत् ॥२७॥ ब्रह्महाहेमहारीचसुरापोगुरुतल्पगः ॥ माघस्नायीविशुद्धःस्यात्तत्संसर्गीचपंचमः ॥ २८ ॥ माघमासेरटंत्यापःकिंचिदभ्युदितेरवौ॥ब्रह्मघ्नंवासुरापंवाकंपतितंपुनीमहे।२९। उपपापानिसर्वाणिपातकानिमहान्त्यपि ॥ भस्मीभवंतिसर्वाणिमाघस्नायिनिमानवे ॥३०॥ कंपंतिसर्वणपापानि-

और इनका संसर्ग करनेवाला ये पाँचों ही महापातकी माघस्नान करनेसे बिलकुल शुद्ध हो जाते हैं ॥ २८ ॥ माघमासमें सूर्यके किंचिन्मात्र उदय होने पर जल यों कहते हैं--कि जलमें स्नान करनेवाला ब्रह्मघाती और मद्यपान कर्ता को हम पवित्र करेंगे ॥ २९ ॥ छोटे २ सब पातक और महा पाप ये सबही माघस्नान करनेवाले मनुष्यों के नष्ट हो जाते हैं ॥ ३० ॥ जब माघस्नान का आरम्भ होता है तब संपूर्ण पाप कंपायमान होने लगते हैं, क्योंकि वे जानते हैं

संप्रति स्नान करनेसे ये हमारे विनाशका समय है ॥ ३१ ॥ माघस्नान करने के लिये मनुष्य को उद्यत हुआ देख पाप इस प्रकार कोलाहल करने लगते हैं, सुतराम् माघस्नान में स्नान करनेसे मनुष्य अग्निके समान प्रदीप्त हो जाते हैं ॥ ३२ ॥ माघस्नान करनेसे मनुष्य पापोंसे मुक्त होके इस प्रकार शुद्ध हो जाता है जैसे मेघनिर्मुक्त चन्द्रमा निर्मल होता है, आर्द्र (गीला), शुष्क स्वल्प अथवा विशेष, मन वचन कर्म से किये हुए सब पापों को ॥ ३३ ॥ माघस्नान

माघस्नानसमागमे ॥ नाशकालोयमस्माकंयदिस्नास्यतिवारिणी ॥३१॥ एवंक्रोशंतिपापानिदृष्ट्वास्नानोद्यतंनरम्॥पावकाइवदीप्यंतेमाघस्नानैर्नरोत्तमाः॥३२॥विमुक्ताःसर्वपापेभ्योमेघेभ्यइवचंद्रमाः ॥ आर्द्रं शुष्कंलघुस्थूलंवाङ्मनःकर्मभिःकृतम् ॥३३॥ माघस्नानंदहेत्पापंपावकःसमिधोयथा ॥ प्रमादिकंचयत्पापंज्ञानाज्ञानकृतंचयत् ॥३४॥ स्नानमात्रेणतन्नश्येन्मकरस्थेदिवाकरे ॥ निष्पापास्त्रिदिवंयान्तिपापिष्ठायान्तिशुद्धताम् ॥३५॥ संदेहोनात्रकर्तव्यो-

इस प्रकार भस्म कर देता है, जैसे अग्नि समिधाओं को भस्म करती है जो पाप प्रमाद (असावधानी) से किये गये हैं अथवा ज्ञान वा अज्ञान से जो पाप किये गये हैं ॥ ३४ ॥ मकरके सूर्य्यमें केवल स्नानमात्र करनेही से उन सबका नाश हो जाता है, पापहीन व्यक्ति स्नान करनेसे स्वर्गको जाते हैं और पापी जन माघस्नान करैं तो शुद्ध हो जाते हैं ॥ ३५ ॥ हे राजन् ! यह जो माघस्नानका फल है इसमें किसी प्रकारका सन्देह करना कर्त्तव्य नहीं है, और जिस

प्रकार श्रीविष्णु भगवान्‌की भक्ति करनेमें सबही का अधिकार है, इसी प्रकार हे नरपाल ! माघस्नान करनेके लिये भी सभी अधिकारी हैं ॥ ३६ ॥ माघ सबही को स्वर्ग देता, सबहीके पापोंका नाश करता है और परम मन्त्ररूप है, और माघहीको परमतप भी समझना चाहिये ॥ ३७ ॥ एवं च माघस्नान ही सर्वोत्तम प्रायश्चित्त है, और पूर्वजन्ममें

माघस्नानेनराधिप ॥ सर्वेधिकारिणोह्यत्रविष्णुभक्तोयथानृप ॥३६॥ सर्वेषांस्वर्गदोमाघःसर्वे-
षांपापनाशनः॥एषएवपरोमंत्रोह्येतदेवपरंतपः॥३७॥ प्रायश्चित्तंपरंचैतन्माघस्नानमनुत्तमम् ॥
नृणांजन्मान्तराभ्यासान्माघस्नानेमतिर्भवेत् ॥३८॥ अध्यात्मज्ञानकौशल्यंजन्माभ्यासाद्यथा-
नृप ॥ संसारकर्दमालेपप्रक्षालनविशारदम् ॥ ३९ ॥ पावनंपावनानांचमाघस्नानंपरंनृप ॥
स्नांतिमाघेनयेराजन्सर्वकामफलप्रदे ॥ ४० ॥ कथंतेभुंजतेभोगांश्चंद्रसूर्यग्रहोपमान् ॥ शृणु-

(सुकृतका) अभ्यास करने ही से मनुष्योंकी माघस्नान करनेकी मति होती है ॥ ३८ ॥ हे नरपति ! जैसे पूर्वजन्म के अभ्यास ही से अध्यात्मज्ञान में निपुणताकी प्राप्ति होती है, और वह सांसारिक पंकका प्रक्षालन करती है ॥ ३९ ॥ इसी प्रकार हे नृप ! यह माघस्नान पवित्रोंको भी पवित्र करनेवाला है, हे राजन् ! सम्पूर्ण कामनाओं के फलप्रदान करनेवाले माघमासमें जो मनुष्य स्नान नहीं करते हैं ॥ ४० ॥ वे सूर्य्य चन्द्रमादि ग्रहोंके समान भोगोंका उपभोग

कैसे कर सकते हैं, हे राजन् ! माघस्नान के प्रभावसे उदय पर आश्चर्य जनक वृत्तान्त को सुनो ॥ ४१ ॥ भृगुजी के वंशमें उत्पन्न हुई कुब्जिका नामक एक परम कल्याणी ब्राह्मणी थी, उसने बालवैधव्य के दुःखसे क्लेशित हो दारुण तपश्चर्य्या की ॥ ४२ ॥ विन्ध्याचल के महाक्षेत्र में जहां रेवा कपिलाका संगम है, वहाँ ही उसने व्रत धारण कर

राजन्महाश्चर्यंमाघस्नानप्रभावजम्॥४१॥ कुब्जिकानामकल्याणीब्राह्मणीभृगुवंशजा ॥ बाल-वैधव्यदुःखार्तातपस्तेपेसुदुस्तरम् ॥४२॥ विन्ध्यपादेमहाक्षेत्रेरेवाकपिलसंगमे ॥ तत्रसाव्रती-नीभूत्वानारायणपरायणा ॥ ४३ ॥ सदाचारवतीनित्यानित्यंसंगविवर्जिता ॥ जितेन्द्रिया-जितक्रोधासत्यबाह्वल्पभाषिणी ॥४४॥ सुशीलादानशीलाचदेहशोषणशालिनी ॥ पितृदेव-द्विजेभ्यश्चदत्वाहुत्वातथाऽनले ॥४५॥ षष्ठेकालेचसाभुङ्क्तेह्युंछवृत्तिःसदानृप ॥ कृच्छ्राति-

नारायण के निमित्त अपने चित्त को लगाया ॥४३॥ वह सदा ही सदाचरणका पालन करती थी, उसने समस्त संगका परित्याग कर दिया वह इन्द्रियों और क्रोधका विजय करके स्वल्प और सत्य भाषण करती थी ॥ ४४ ॥ उसका स्वभाव सुशील और दान करने की प्रकृति थी, उसने तप करके अपने देहको शुष्क कर दिया था, वह देवता और ब्राह्मणोंको दान एवं अग्निमें हवन करके ॥ ४५ ॥ सदा शिला (उंछ) बीन के छठे काल में भोजन करती थी, हे

राजन् कृच्छ्र, अतिकृच्छ्र, तथा तप्तकृच्छ्र आदि व्रतों के द्वारा ॥ ४६ ॥ पुण्याचरणसे वह सदाचारिणी नर्मदाके तट पर मासोंको व्यतीत करती थी, इस प्रकार उस सुशील तपस्वनी ने वल्कलोंके वस्त्र धारण कर ॥ ४७ ॥ महासती गुणधैर्य और सन्तोष धारणपूर्वक रेवा कपिलके संगम में साठ माघोंमें स्नान किया ॥ ४८ ॥ सुतराम् हे नृप ! वह

कृच्छ्रपाराकतप्तकृच्छ्रादिभिर्व्रतैः ॥४६॥ पुण्यानयतिसामासान्नर्मदायाश्चरोधसि ॥ एवंतया-तपस्वीन्यावल्कलिन्यासुशीलया ॥४७॥ सुमहासत्वशालिन्याधृतिसंतोषयुक्तया ॥ षष्टिर्मा-घस्तयास्नातारेवाकपिलसंगमे ॥४८॥ ततःसातपसाक्षीणातस्मितीर्थेमृतानृप ॥ माघस्नान-जपुण्येनतेनसावैष्णवेपुरे ॥ ४९ ॥ उवासममुदायुक्ताचतुर्युगसहस्रकम् ॥ सुन्दोपसुन्दनाशाय-पश्चात्पद्मभवात्पुनः ॥५०॥ तिलोत्तमेतिनाम्नासाब्रह्मलोकेवतारिता ॥ तेनपुण्यस्यशेषेणरू-पस्यैकायनंययौ ॥५१॥ अयोनिजबलारत्नंदेवानामपिमोहिनी ॥ लावण्यह्रदिनीतन्वीसा-

तपसे क्षीण होकर उसी तीर्थमें मर गई, तब माघस्नान के पुण्य से वह विष्णुलोक में ॥ ४९ ॥ सहस्र चतुर्युगोपर्यन्त आनन्दपूर्वक निवास करती रही, इसके अनन्तर सुन्दउपसुन्दका विनाश करने के लिये कमलयोनि ब्रह्माजीके द्वारा ॥५०॥ तिलोत्तमा नामसे ब्रह्मलोकमें अवतीर्ण की गई, और इसी पुण्यकी विशेषतासे वह अत्यन्तही रूपवती हुई ॥ ५१ ॥ जिन स्त्रियों का जन्म योनि से नहीं हुआ है उनमें वह रत्नके समान सुन्दरी थी, अतः उसे देखकर देवताओं

को भी मोहित होना पड़ता था, और वह सूक्ष्मांगी सौन्दर्यकी सरोवर और सब अप्सराओं में श्रेष्ठ थी, ॥ ५२ ॥ उसे निर्मित कर चतुर ब्रह्माजी को भी आश्चर्यको प्राप्ति हुई, उसको निर्माण कर चुकने के अनन्तर सन्तुष्ट होके ब्रह्माजी ने यह आज्ञादी ॥ ५३ ॥ हे मृगशावकलोचनो ! दैत्योंका विनाश करनेके लिये शीघ्र ही तुम यहांसे जाओ, तब वह भामिनी वीणा लेकर ब्रह्माजीके लोकसे ॥ ५४ ॥ पुष्करमार्गके द्वारा वहां गई, जहाँ वे दोनों देवशत्रु उपस्थित थे,

भूदप्सरसांवरा ॥५२॥ निपुणस्यविधेःस्रष्टुर्नूनमाश्चर्यकारिणी ॥ तामुत्पाद्यविधातावैतुष्टोनु-
ज्ञातदाददौ ॥५३॥ एणशावाक्षिगच्छत्वंदैत्यनाशायसत्वरम् ॥ ततःसाब्रह्मणोलोकाद्वीणा-
मादायभामिनी ॥५४॥ गतापुष्करमार्गेणयत्रतौदेववैरिणौ ॥ तत्रस्नात्वातुरेवायाःपवित्रेनि-
र्मलेजले॥५५॥परिधायांबरंरक्तंवंधूककुसुमप्रभम्॥रणद्वलयिनीचारुसिंजन्मेखलनूपुरा॥५६॥
लोकमुक्तावलीकंठोचलत्कुंडलशोभना ॥ माधवीकुसुमापीडाकिंकेलीविटपेस्थिता ॥५७॥

वहां रेवाके पवित्र और निर्मल जलमें स्नान करके ॥ ५५ ॥ दुपहरीके पुष्पके समान लाल २ वस्त्रोंको उसने धारण किया, उसकी सुन्दर मेखला शब्द करने लगी, एवम् नूपुर भी शब्द कर रहे थे ॥५६॥ उसके कण्ठमें मुक्ताओं की कंठी चलायमान थी, उसके सुन्दर कुण्डल भी हिल रहे थे, उसके जूड़ेमें चमेलीके पुष्प गुँथे हुए थे, ऐसी विधि से वह अशोक वृक्षके नीचे जाके बैठ गई ॥ ५७ ॥ अथ च वह सुमनोहर स्निग्ध स्वर से गान करती, वीणा बजाती

छवों स्वरोंकी तानका उत्थान मनोहरतासे करती थी ॥ ५८ ॥ इस प्रकार उस तिलोत्तमाको अशोक वनमें उपस्थित हुई दैत्यके दूतों ने इस प्रकार देखा जैसे चन्द्रमाकी कला हृदयमें सुख देनेवाली होती है ॥ ५९ ॥ हे राजन् ! उसे देखतेही सैनिक लोग अतिशय विस्मित हुए और वे हर्षित हो सुन्द उपसुन्दके निकट जाके निवेदन किया ॥ ६० ॥

गायन्तीसुस्वरंसरिपधीडवंतीतुवल्लकीम्॥ मूर्च्छयंतीस्वरषट्कंसुस्निग्धंकोमलंकलम् ॥५८॥ इत्थंतिलोत्तमाबालातिष्ठंत्यशोककानने ॥ दृष्टवादैत्यभटैरिन्द्रोःकलेवसुखदाहृदि ॥५९॥ तां-दृष्ट्वाविस्मितैराजन्सानन्दैःसैनिकैर्भृशम् ॥ त्वरमाणैरदृष्टैवगत्वासुन्दोपसुन्दयोः ॥ ६० ॥ कथितासंभ्रमेणैववर्णयित्वापुनःपुनः॥हेदैत्योनविजानीमोदेवीवादानवीनुकिम् ॥ ६१ ॥ नागाङ्गनाथवायक्षीस्त्रीरत्नंसर्वथातुसा ॥ युवांरत्नभुजोलोकेरत्नभूतेतिसावला ॥६२॥ वर्ततेनातिदूरेऽत्रअशोकेशोकहारिणी ॥ गत्वातांपश्यन्तंशीघ्रमनथस्यापिमोहिनीम् ॥ ६३ ॥ इतिसेना-

संभ्रमपूर्वक वे दोनोंहीसे यों कहने लगे कि, हे दैत्यों ! हम नहीं जानते वह देवी है अथवा दानवी है ॥ ६१ ॥ अथवा नागकी वा यक्षिणी कौन है, किन्तु वह सर्वथाही स्त्री रत्न है, लोकमें रत्नोंका उपभोग करनेवाले आप हैं और वह कामिनी रत्नस्वरूप है ॥ ६२ ॥ वह शोकहारिणी थोडीही दूरीपर अशोकके नीचे उपस्थित है, आप चलके उसे देखिये, वह तो कामदेवकोभी मोहित करनेवाली है ॥ ६३ ॥ जब उन दोनों दैत्योंने सेनापतियोंके ऐसे मनोहर वचन

सुने तब वे दोनों मद्यपानके प्यालेको और जलसेवन (कुल्हे) कोभी परित्यागकरके ॥ ६४ ॥ एवं सहस्रों उत्तम स्त्रियोंकोभी छोड़कर जलाशयमेंसे निकले, और सौभारकी बनी लोहेकी कालदण्ड जैसी गदाको लेकर ॥ ६५ ॥ पृथक् गदा ले के बड़े वेगसे चले, (और वहां पहुँचे जहां) चण्डीके समान शृंगार किये हुए इनका वध करनेके लिये वह

पतीनांतौश्रुत्वावाचंमनोहरम् चषकंसीधुनस्त्यक्त्वाविहायजलसेवनम् ॥ ६४ ॥ उत्तमस्त्रीसहस्राणित्यक्त्वातस्माज्जलाशयात् ॥ शतभारायसींक्रूरांकालदंडोपमांगदाम् ॥६६॥ भिन्नांभिन्नांगृहीत्वातुजवेनाभिसृतंगतौ ॥ यत्रशृंगाररसज्जासाहंतुंचंडीत्रसंस्थिता ॥६६॥ राजन्संधुक्षयंतीवदैत्ययोर्मन्मथानलम् ॥ स्थित्वातस्याःपुरोजाल्मौतद्रूपेणविमोहितौ ॥६७॥ विशेषान्मधुनामत्तावूचतुस्तौपरस्परम् ॥ भ्रातर्विरमभार्येयंतमास्तुवरवर्णिनी ॥६८॥ त्वमेवार्यस्यजैतांमेभार्यांतुमदिरेक्षणाम् ॥ इत्याग्रहेणसंरब्धौमातंगाविवसोन्मदौ ॥६९॥ अन्योन्यंकाल

उपस्थित थी ॥ ६६ ॥ हे राजन्! वह बैठी २ उन दोनों दैत्योंके कामाग्नि को प्रदीप्त कररही थी, तब वे दोनों दुष्ट उसके रूपसे मोहित हो सामने खड़े होगये ॥ ६७ ॥ कारण कि, वे दोनों मद्यपान करनेके हेतु उन्मत्त हो रहे थे सुतराम् परस्पर कहने लगे, हे भाई! तुम यहाँसे चले जाओ, क्योंकि—यह सुन्दरी हमारी स्त्री है ॥६८॥ हे आर्य्य! तुम इस मस्त नेत्रोंवाली हमारी स्त्रीको छोड़ दो; इसप्रकार हठ करते २ वे दोनों उन्मत्त हाथीके समान ॥ ६९ ॥

कालके वशीभूत हो परस्पर गदासे ताड़ना करने लगे, निदान परस्पर प्रहारके कारण निर्जीव हो भूमिके ऊपर निपतित होगए ॥ ७० ॥ उन दोनोंको मृतक हुआ देख सैनिकोंने बड़ा कोलाहल किया, हाय ! यह कालरात्रिके समान कौन है, हाय ! यह क्या उपस्थित होगया ? ॥ ७१ ॥ इस प्रकार दैत्यसैनिकों के कहते हुए जिसप्रकार पर्वतके दो

निर्दिष्टौगदयाजघ्नतुस्तदा ॥ परस्परप्रहारेणगतासूपतितौभुवि ॥७०॥ तौमृतौसैनिकैर्दृष्ट्वा-कृत कोलाहलोमहान् ॥ कालरात्रिसमाकेयंहाकिमेतदुपस्थितम् ॥७१॥ एवंवदत्सुसैन्येषु-दैत्यौसुन्दोपसुन्दकौ॥पातयित्वागिरेःशृंगेह्रादिनीवतिलोत्तमा॥७२॥प्रस्थितागगनंशीघ्रंद्यो-तयन्तीदिशोदश ॥ देवकार्यंततःकृत्वाआगताब्रह्मणःपुरः । ७३॥ ततस्तुष्टेनदेवेनविधिना-सानुमोदिता॥स्थानंसूर्यरथेदत्तंतवचन्द्राननेमया ॥७४॥ भुंक्ष्वभोगाननेकांस्त्वंयावत्सूर्योम्ब-

शिखरोंको गिराकर वज्र आकाशको चला जाता है, उसीप्रकार उन सुन्द तथा उपसुन्दको गिराय वह तिलोत्तमा ॥ ७२ ॥ दशो दिशाओंको प्रकाशितकरती हुई शीघ्रही आकाशमें जाय सुरकार्य कर पश्चात् ब्रह्मलोकको जाती भई ॥ ७३ ॥ तब प्रसन्नचित्तसे ब्रह्माजीने उस तिलोत्तमाको अनुमोदितकर कहा कि, हे चन्द्रानने । तुझको सूर्यके रथमें मैंने स्थान दिया है ॥ ७४ ॥ जबतक आकाशमें सूर्य स्थित रहें तबतक तू अनेक दिव्यभोगों को भोग, इस प्रकार हे

राजेन्द्र ! वह कुब्जिका ब्राह्मणी अप्सराओंमें श्रेष्ठ होकर ॥ ७५ ॥ अबतक सूर्यलोकमें महान् माघस्नानका फल भोगती है, तिससे हे राजन् ! प्रयत्नपूर्वक परमगतिके चाहनेवाले श्रद्धावान् नरको सदैव मकरके सूर्यमें स्नान करने योग्य है, जो कि, माघके स्नान करनेवाले हैं उनको कोईभी पुरुषार्थ इस लोकमें अप्राप्य नहीं रहता; अर्थात् सबही प्राप्त होजाते

रेस्थतः ॥ इत्थंसाब्राह्मणीराजन्भूत्वाचाप्सरसांवरा ॥७५॥ भुंक्तेऽद्यापिरवेर्लोकेमाघस्नान-फलंमहत् ॥ तस्मात्प्रयत्नतोराजन्श्रद्दधानैःसदानरैः ॥ ७६ ॥ स्नातव्यंमकरादित्येवांछद्भिः-परमांगतिम् ॥ नानवाप्तोऽत्रतस्यास्तिपुरुषार्थोहिकश्चन ॥७७॥ नाक्षीणंपातकंकिंचिन्माघे मज्जतियोनरः ॥ तुलयन्तिनतेनात्रयज्ञाःसर्वेसदक्षिणाः ॥ ७८ ॥ माघस्नानेनराजेन्द्रतीर्थे चैववि-शेषतः ॥ नचान्यत्स्वर्गदंकर्मनचान्यत्पापनाशनम् ॥७९॥ नचान्यन्मोक्षदंयस्मान्माघस्नान

हैं ॥ ७६ ॥ ७७ ॥ जो नर माघ स्नान करनेवाला है उसका कुछ भी पाप अक्षीण नहीं रहता बल्कि सबही क्षीण होजाते हैं, इस संसारमें दक्षिणा सहित समस्त यज्ञ उस माघस्नानके साथ बराबर नहीं हो सकते हैं ॥ ७८ ॥ हे राजेन्द्र ! विशेषकर तीर्थके विषे किये हुए माघस्नानके तुल्य अन्य कर्म स्वर्गका देनेवाला और न अन्य कर्म पापका नाश करनेवाला है ॥ ७९ ॥ और माघस्नानके समान पृथ्वीपर मोक्षका देनेवाला अन्यकर्म भी नहीं हैं ॥ ८० ॥ इति

समंभुवि ॥ ८० ॥ इति श्रीपद्मपुराणे उत्तरखण्डे माघमास माहात्म्ये वसिष्ठदिलीपसंवादे माघस्नान प्रशंसायांसुन्दोपसुन्ददैत्यवधोनाम पंचमोऽध्यायः ॥ ५ ॥

श्रीपद्मपुराणे उत्तरखण्डे माघमासमाहात्म्ये भाषाटीकायां सुन्दोपसुन्ददैत्यवधवर्णनं नाम पञ्चमोऽध्यायः ॥ ५ ॥

दत्तात्रेयजी बोले—हे राजन् ! इस माघमाहात्म्य में तुमसे प्राचीन इतिहास कहता हूँ सुनो पहिले सत्ययुग के समय अतिश्रेष्ठ नैषध नगरमें ॥ १ ॥ कुबेर के समान धनाढ्य हिमकुण्डल नामका एक वैश्य होता भया। कैसा

॥ दत्तात्रेयउवाच ॥ अत्रतेकथयिष्यामिइतिहासंपुरातनम् ॥ पुराकृतयुगेराजन्नैषधेनगरे-वरे ॥१॥ आसीद्वैश्यःकुबेराभो नामतोहिमकुण्डलः ॥ कुलीनःसत्क्रियोदांतोद्विजवह्निसुरा-र्चकः॥२॥कृषिवाणिज्यकर्तासौबहुधाक्रयविक्रयी ॥ गोघोटकमहिष्यादिपशुपोषणतत्परः॥३॥

था वह वैश्य कि, कुलीन और शुभकर्मों का करनेवाला तथा जितेन्द्रिय और ब्राह्मण, अग्नि तथा देवताओं की पूजा करता था ॥ २ ॥ वह वैश्य कृषि (खेती) वाणिज्य (व्यापार) और क्रय विक्रय किया करता था, सुतराम् गौ अश्व और भैंस आदि पशुओं के पालनमें भी तत्पर रहता था ॥ ३ ॥ दूध, दही, मट्ठा, गोमय (गोबर) तृण (घास

भूसा आदि), काष्ठ, फल, मूल, लवण, पीपल, ॥ ४ ॥ धान्य, शाक, तैल, विविध प्रकार के वस्त्र, धातु और सब प्रकार के इक्षुविकार (मिठाइयें बेंचता) था ॥ ५ ॥ इस प्रकार उस वैश्य ने अनेक प्रकार के उपाय रचकर आठ करोड़ सुवर्ण की अशर्फियें उपार्जन करीं ॥ ६ ॥ जब वह इस प्रकार महाधनी हो गया, और उसके कानतक बुढ़ापा

पयोदधीनितक्राणिगोमयानितृणानिच ॥ काष्ठानिफलमूलानिलवणानिचपिप्पलीम् ॥ ४ ॥
धान्यानिशाकतैलानिवस्त्राणिविविधानिच ॥ धातूनिक्षुविकारांश्चविक्रीणीतेचसर्वदा ॥ ५ ॥
इत्थंनानाविधैर्वैश्यउपायैःपरमैस्तदा । द्रव्याण्युपार्जयामासअष्टौहाटककोटयः ॥६॥ एवंमहा-
धनःसोथआकर्णपलितोऽभवत् ॥ पश्चाद्विचार्यसंसारक्षणिकत्वंस्वचेतसि ॥७॥ तद्धनस्यषडं-
शेनधर्मकार्यंचकारसः, विष्णोरायतनंचक्रेचक्रेगेहंशिवस्यच॥८॥तडागंखानयामासविपुलंसा-
गरोपमम् । वाप्यश्चपुष्करिण्यश्चबहुशस्तेनकारिताः॥९॥वटाश्वत्थाम्रकंकोलजम्बूनिम्बादिका

आ पहुचा तब उसने अपने चित्त में संसार को क्षणभङ्गुर विचार कर ॥ ७ ॥ उस धन के छठें भाग से धर्मकार्य करने लगा, सुतराम् उसने विष्णुमन्दिर और शिवालय बनवाये ॥ ८ ॥ समुद्र के समान बड़े २ सरोवर खुदवाये, बावडी और पुष्करिणी बनवाई ॥ ९ ॥ तथा उसने बड़, पीपल, आम, कङ्कोल, जामुन, नीम आदि के बन लगाये,

और पुष्प वाटिका भी लगाई ॥ १० ॥ सूर्योदय से सूर्यास्त पर्य्यन्त बराबर वह अन्नदान करता रहता था, एवंच इसने नगरके बाहर चारों ओर बड़ी २ सुन्दर प्रपा (प्याऊ) बनवाये ॥ ११ ॥ भूमि के ऊपर प्रपादान करने का जो कुछ फल है सो पुराणों से प्रसिद्ध ही है, इससे धर्मात्मा ने सब ही दान किये ॥ १२ ॥ इसके अनन्तर जन्म भर

ननम् ॥ आरोपितंसुसत्त्वेनतथापुष्पवनंशुभम् ॥१०॥ उदयास्तमनंयावदन्नदानंचकारसः ॥ पुराद्बहिश्चतुर्दिक्षुप्रपाश्चक्रे सुशोभनाः ॥११॥पुराणेषुप्रसिद्धानिप्रपादानानिभूतले॥ ददौसता-निधर्मात्मानित्यंदानरतस्तथा ।१२।।यावज्जीवंकृतेपापे प्रायश्चित्तमथाकरोत् ॥ देवपूजारतो-नित्यंनित्यंचातिथिपूजकः॥१३॥तस्येत्थंवर्तमानस्यसंजातौद्वौसुतौनृप॥ तौतुप्रसिद्धनामानौ-श्रीकुंडलविकुंडलौ ।१४॥ तयोर्मूर्ध्निगृहंत्यक्त्वाजगामतपसेवनम् ॥ तत्राराध्यपरंदेवंगोविन्दं-वरदंप्रभुम्।।१५।।तपःक्लिष्टशरीरोसौवासुदेवमनाःसदा ॥ आसवान्वैष्णवंलोकंयत्रगत्वानशो-

के पापों का इसने प्रायश्चित्त किया, अथच वह नित्य ही देवपूजन में तत्पर रह कर अतिथियों की पूजा किया करता था ॥ १३ ॥ हे राजन् ! इसी प्रकार सदाचरण करते २ उसके दो पुत्र हुए, और वे दोनों श्री कुण्डल एवं विकुण्डल नाम से विख्यात हुए ॥ १४ ॥ तब वह उन दोनों के सिर पर घरके भार को सौंपकर तपश्चर्या करने के लिये वनको चला गया, और वहाँ परम प्रभु वर देनेवाले गोविन्द भगवान् की आराधना करके ॥ १५ ॥ वासुदेव भगवान् में

दत्तचित्त हो तपसे शरीरको कृशकर ऐसे विष्णुलोकको चला गया जहाँ जाके फिर सोच करना नहीं होता है ॥ १६ ॥ हे राजन् ! इसके अनन्तर उसके वे दोनों पुत्र, रूप और धनसम्पन्न होनेके कारण धन एवं मानके मदसे उन्मत्त होगये ॥ १७ ॥ अतएव उनका आचरण निन्दनीय होगया, सुतराम् वे दोनों धर्मकर्मका परित्याग करके व्यसनोंमें आसक्त होगये इसीसे वे अपनी माता तथा वृद्धोंके वाक्योंको भी नहीं सुनते थे ॥ १८ ॥ वे दुराचारी दोनों भ्राता

चति॥ १६॥अथतस्यसुतौराजन्धनमानमदान्वितौ । तरुणौरूपसंपन्नौधनगर्वेणगर्वितौ ॥ १७॥ दुःशीलौव्यसनासक्तौधर्मकर्मविदूरगौ॥ नवाक्यंशृणुतोमातुर्वृद्धानांवचनंतथा ॥१८॥ उन्मार्गगौदुरात्मानौपितृमित्रनिषेधकौ॥ अधर्मनिरतौदुष्टौपरदाराभिगामिनौ ॥१९॥ गीतवादित्रनिरतौवीणावेणुनिनादिनौ ॥ वारस्त्रीशतसंयुक्तौगायंतौचेरतुःसदा ॥२०॥ चाटुवाचिनरैर्युक्तौविटगोष्ठीविशारदौ॥ सुवेषौचारुवसनौचारुचंदनभूषितौ ॥ २१ ॥ सुगंधमाल्यमालाढ्यौक-

अपने पिताके मित्रोंका निषेध करके उन्मार्गगामी होगये, एवंच वे दुष्ट अधर्म में तत्पर हो परस्त्रीगमन करने लगे ॥ १९ ॥ गाने बजानेमें निरत होकर वे दोनों वीणा बजाने लगे, और सैकड़ों वेश्याओंको साथ लिये गाते फिरते थे ॥ २० ॥ बहुतसे खुशामदी लोग उनके साथ रहते थे, वे दोनों धूर्त्तोंकी गोष्ठीमें बैठ २ कर (धूर्त्ततामें) बड़े चतुर होगये थे, सुन्दर वस्त्र धारण कर अपने वेषको उत्तम बनाये रहते, और उत्तम चन्दनसे विभूषित रहते थे

॥ २१ ॥ सुगन्धित माला पहिरे, कस्तूरीकी सुगन्धिसे महकते, अनेक आभूषण धारण करनेसे शोभायमान रहते और मोतियोंके परमोत्तम हार पहिरे रहते थे ॥ २२ ॥ बहुतसे हाथी घोड़े और रथोंको साथ लिये इधर उधर विचरते, मद्य पानकर वेश्याओंको साथ लिये मोहित हुए फिरते थे ॥ २३ ॥ पिताके सैकड़ों सहस्रोंके धनको लुटाकर उन्होंने धनको नष्ट कर दिया, विशेष क्या कहें अनेक प्रकारके भोगोंमें आसक्त होकर वे अपने रमणीक घरमें पड़े

स्तूरीलक्ष्मलक्षितौ। नानालंकारशोभाढ्यौमौक्तिकोदारहारिणौ॥२२॥गजवाजिरथौघेनक्रीडं- तौताविततस्ततः॥ मधुपानसमायुक्तौवारस्त्रीरतिमोहितौ॥२३॥ नाशयंतौपितुर्द्रव्यंसहस्रंददतुः शतम्॥ तस्थतुःस्वगृहेरम्येनित्यंभोगपरायणौ॥२४॥इत्थंतुतद्धनंताभ्यांविनियुक्तमसद्व्ययैः॥ वारस्त्रीविटशैलूषमल्लचारणबंदिषु॥२५॥ अपात्रेतद्धनंदत्तंक्षिप्तंबीजमिवोषरे॥ नसत्पात्रेषु- तद्दत्तंनब्राह्मणमुखेहुतम्॥२६॥ नार्चितोभूतभृद्विष्णुःसर्वपापप्रणाशनः॥ तयोरेवन्तुतद्द्रव्यम-

रहते थे ॥ २४ ॥ इसप्रकार उन दोनोंने वह सम्पूर्ण धन वेश्याओं, धूर्तों, नटों, मल्ल (पहलवानों) चारण और वन्दीजनोंको दे २ कर असत्कार्योंमें व्ययकरके नष्ट कर डाला ॥ २५ ॥ ऊसर भूमिमें बीज बोनेके समान उन्होंने वह द्रव्य कुपात्रोंहीको दिया, सत्पात्रोंको कभी नहीं दिया और ब्राह्मणोंके मुखमें भी कभी हवन नहीं किया ॥ २६ ॥ समस्त प्राणियोंका पालन पोषण करनेवाले और सम्पूर्ण पापविनाशी श्रीविष्णुभगवान्‌का पूजन भी कभी नहीं किया,

विशेष क्या कहैं इस प्रकार करते २ उन दोनों का अखिल धन थोड़े ही कालमें नष्ट हो गया॥ २७ ॥ तब तो दुःखको प्राप्त हो वे दोनों अत्यन्त ही दीन हो गये, भूखकी पीड़ासे दुःखित हो मोहित होकर सोच करने लगे ॥ २८ ॥ उस समय उनके घरमें भोजन करने के योग्य कोई भी वस्तु नहीं थी, स्वजनों, बन्धुबान्धवों, सब सेवकों और उपजीवियोंने भी ॥ २९ ॥ द्रव्य न होने के कारण उनका परित्याग कर, दिया, सुतराम् नगर भर में उनकी निन्दा होने लगी,

चिरेणत्वयंययौ ॥२७॥ततस्तौदुःखमापन्नौकार्पण्यंपरमंगतौ ॥ शोचमानौमुमुहेतांक्षुत्पीडा-दुःखःदुःखितौ ॥२८॥ तयोस्तुतिष्ठतोर्गेहेनास्तियद्भुज्यतेतदा ॥ स्वजनैर्बान्धवैःसर्वैःसेवकैरु-पजीविभिः॥२९॥ द्रव्याभावात्परित्यक्तौनिन्दमानौततःपुरे । पश्चाच्चौर्यंसमारब्धंताभ्यांतन्नग-रेनृप ॥ ३० ॥ राजतोलोकतोभातौस्वपुरान्निःसृतौतदा ॥ चक्रतुर्वनवासंचसर्वेषामृणपी-डितौ ॥ ३१ ॥ जघ्नतुःसततंमूढौशितबाणैर्विषार्पितैः ॥ नानापक्षिवराहांश्चहरिणान्रोहिता-

हे राजन् ! अब तो उन्होंने इसी नगर में चोरी करने का आरंभ कर दिया ॥३०॥ राजा और अन्य लोगों के भय के मारे वे अपने नगर से निकल गये, और सबके ऋण से पीड़ित हो वन में निवास करने लगे ॥ ३१ ॥ निदान वे दोनों मूढ़ विषैले तीक्ष्ण बाणों से अनेक पक्षियों, शूकरों, हरिणों तथा रोहितों ॥३१॥ शशाओं, शल्लकी (हरिण विशेष) गोधा, गोह, तथा अन्य बहुत प्रकार के जङ्गली जीवों का वध करने लगे, वे दोनों महाबली भीलों के साथ में रहकर

अहेर करने लगे ॥ ३३ ॥ हे परंतप ! इस प्रकार वे दोनों पापी मांसका आहार करने लगे, एक समय उन दोनों मेंसे एक तो किसी पर्वत के ऊपर चलागया, और दूसरा किसी वनमें चलागया ॥३४॥ उनमें से ज्येष्ठ को सिंहने मार डाला और छोटे को सर्प ने डस लिया, सुतराम् हे राजन् ! वे दोनों पापी एक ही दिन मृत्यु को प्राप्त हो गये ॥३५॥ तब तो

स्तथा ॥३२॥ शशकान्शल्लकीगोंधाःश्वापदांश्चबहूंस्तथा॥महापापौभिल्लसंगवाखेटकरतौ सदा ॥३३॥एवंमांसमयाहारौपापाचारौपरंतप॥ कदाचिद्भूधरंप्रासएकोन्यश्चवनंगतः॥३४॥ शार्दूलेनहतोज्येष्ठःकनिकष्ठःसर्प दंशितः ॥ एकस्मिन्दिवसेराजन्पापिष्ठौनिधनंगतौ ॥३५॥ यमदूतैस्तदाबद्धौपाशैर्नीतौयमक्षयम्॥गत्वाभिजंगदुःसर्वेतेदूताः पापिनाविमौ॥३६॥ धर्मरा-जनराबेतातावानीवौतवशासनात् ॥ आज्ञादेहिस्वभृत्येषुप्रसोदकरवामकिम् ॥३७॥ आलो-क्यचित्रगुप्तेनतदादूतान्जगौयमः ॥ एकस्तुनीयतांघोरंनिरयन्तीव्रवेदनम् ॥ ३८ ॥ अपरः

यमदूत उनको पाशों में बाँधकर यमलोक को ले गये, और वहाँ पहुँच कर सब दूत कहने लगे कि, ये दोनों बड़े पापी हैं ॥ ३६ ॥ हे धर्मराज ! आपकी आज्ञासे हम इन दोनों पापी मनुष्योंको ले आये हैं, प्रसन्नता पूर्वक अपने सेवकोंको शीघ्र आज्ञा दीजिये कि, अब हम क्या करें ? ॥ ३७ ॥ जब चित्रगुप्तने उन दोनों का लेखा देख लिया, तब यमराजने दूतोंको आज्ञा दी कि—एक को तो तिव्र वेदना देनेवाले घोर नरक में ले जाओ ॥ ३८ ॥ और दूसरेको सर्वोत्तम भोगों

से परिपूर्ण हुए स्वर्गमें स्थापित करो उनकी यह आज्ञा सुन उतावले दूतोंने झटपट ऐसाही करडाला ॥ ३९ ॥
अर्थात् हे राजन् ! उनमेंसे ज्येष्ठको घोर नरकमें निक्षिप्त कर दिया तब तो एक यमदूत मधुर वचन कहने लगा ॥ ४० ॥

स्थाप्यतांस्वर्गेयत्रभोगा अनुत्तमाः ॥ तदाज्ञातुसुसम्प्राप्यदूतैस्तैःक्षिप्रकारिभिः ॥ ३९ ॥ निक्षिप्तो-
रौरवेघोरेतत्रज्येष्ठोनराधिप ॥ तेषांदूतवरःकश्चिदुवाचमधुरंवचः ॥ ४० ॥ विकुण्डलमयासार्धं-
मेहिस्वर्गंददामिते भुंक्ष्वभोगान्सुदिव्यांस्त्वमर्जितान्स्वेनकर्मणा ॥ ४१ ॥ इति श्रीपद्मपुराणे-
उत्तरखण्डेमाघमासमाहात्म्येवसिष्ठदिलीपसम्वादेविकुण्डलस्वर्गप्राप्तिर्नामषष्ठोऽध्यायः ॥ ६ ॥

हे विकुण्डल ! तू मेरे साथ स्वर्गमें आवो, अपने सत्कर्मों से उपार्जन करे हुए दिव्यभोगोंका उपभोग कर ॥ ४१ ॥
इति माघमाहात्म्ये भाषाटीकायां विकुण्डल स्वर्ग प्राप्ति नाम षष्ठोऽध्यायः ॥ ६ ॥

ऋषि बोले—तब तो सन्देहपूर्वक मनमें विस्मयको प्राप्त हो चित्तमें प्रसन्न होकर वह मार्गमें उस दूतसे पूछने

ऋषिरुवाच ॥ ततोहृष्टमनाःसोऽपिदूतम्पप्रच्छतम्पथि ॥ सन्देहंहृदिकृत्वातुविस्मयंपरमंगतः
॥ १ ॥ विचारयन्हृदिस्वर्गःकस्यहेतोःफलंमम ॥ विकुण्डलउवाच ॥ भोदूतवरपृच्छामिसन्देहं

लगा ॥ १ ॥ उसने अपने हृदयमें यह विचार किया कि, मुझे किस पुण्यके प्रभावसे स्वर्गकी प्राप्ति हुई है, विकुण्डल

बोला—हे श्रेष्ठदूत! हम एक बड़े आश्चर्यकी बात तुमसे पूछते हैं ॥ २ ॥ हम दोनोंका एकही कुलमें जन्म हुआ, एवं हमने कर्मभी समानही किये थे, हमारी मृत्युभी समानही हुई और समान ही हमें यमराजके दर्शन हुए ॥ ३ ॥ जब उसके भी कर्म मेरेही जैसे थे तो फिर मेरे ज्येष्ठ भ्राताको नरकमें निपतित क्यों किया गया, और मुझे

त्वामहंपरम् ॥२॥ आवांजातौकुलेतुल्येतुल्यंकर्मतथाकृतम् ॥ दुर्मृत्युरपितुल्योभूत्तुल्यंहष्टो-
यमस्तथा ॥३॥ कथंसनिरयेक्षिप्तस्तुल्यकर्माममाग्रजः ॥ ममभावीकथंस्वर्गइतित्वंछिंधिसंश-
यम्॥४॥ देवदूतनपश्यामिस्वस्यस्वर्गस्यकारणम् ॥ इतिपृष्टोदेवदूतोविकुण्डलमुवाचह ॥५॥
यमदूतउवाच ॥ मातापितासुतोजायास्वसाभ्राताविकुंडल ॥ जन्महेतुरियंसंज्ञाजन्मकर्मोप-
भुक्तये ॥ ६ ॥ एकस्मिन्पादपेयद्वच्छकुन्तानांसमागमः ॥ पुत्रभ्रातृपितृणांचतथाभवतिसं-

स्वर्गका लाभ कैसे हुआ यह सन्देह दूर करिये ॥ ४ ॥ हे देवदूत! मैं अपने स्वर्ग आनेका कोई कारण नहीं देखता हूँ, जब इसप्रकार देवदूतसे पूछा तब वह विकुण्डल से कहने लगा ॥ ५ ॥ यमदूत बोला—हे विकुण्डल! माता, पिता, पुत्र, स्त्री, बहिन और भाई ये सब संज्ञाएँ जन्मका कारण हैं, और जन्म तो कर्मोंका उपभोग करनेके लिये होता है ॥ ६ ॥ जैसे एक वृक्षके ऊपर अनेक पक्षियोंका समागम होता है, इसीप्रकार पुत्र, भ्राता और

पिता (आदि) का संगम जानना चाहिये ॥ ७ ॥ उन्हीं के योग से यह मनुष्य जो २ कर्म करता है, उन्हीं कर्मों के फल का सदा उपभोग करता है ॥ ८ ॥ हे वैश्य ! यह बात मैं तुम से प्रीति पूर्वक बिलकुल सत्य कहता हूँ कि—मनुष्य अपने किये हुए शुभाशुभ कर्मों का समयानुसार बारम्बार उपभोग करता है ॥ ९ ॥ अकेला ही उसके

गमः॥७॥ तेषांयोगोहियत्कर्मकुरुतेपूर्वभावितः॥ तस्यतस्यफलंभुंक्तेकर्मणःपुरुषःसदा ॥८॥
सत्यंवदामितेप्रीत्यानरःकर्मशुभाशुभम् ॥ स्वकृतंभुञ्जतेवैश्यकालेकालेपुनःपुनः ॥ ९ ॥
एकःकरोतिकर्माणिएकस्तत्फलमश्नुते ॥ अन्योन्यंलिप्यतेवैश्यकर्मनान्यस्यकस्यचित्॥१०॥
अतस्तुनरकेपापेतवभ्रातासुदारुणः ॥ त्वंचधर्मेणधर्मात्मन्स्वर्गंप्राप्स्यसिशाश्वतम्॥११॥ वि-
कुण्डलउवाच ॥ आवाभ्यांसमपापेषुनपुण्येषुरतंमनः ॥ यदिजानासिमत्पुण्यंतन्मांत्वंकृपया
वद ॥१२॥ यमदूतउवाच ॥ शृणुवैश्यप्रवक्ष्यामियत्त्वयापुण्यमर्जितम् । जानामितदहंसर्वंन-

फलको भोगता है, हे वैश्य ! दूसरे किसी के कर्म दूसरे किसी को परस्पर लिप्त नहीं करते हैं ॥ १० ॥ इसी कारण हे धर्मात्मा ! तुम्हारा भ्राता नरक में गया और तुम धर्मसे अविनाशी स्वर्ग में जारहे हो ॥ ११ ॥ विकुण्डल बोला—हम दोनोंने बराबर पापही किये, पुण्यमें तो कभी मनहीं नहीं लगाया, ऐसी दशामेंभी मेरा कोईपुण्य है और उसे तुम जानते हो तो कृपाकरके मेरे प्रति वर्णन करो ॥ १२ ॥ यमदूत बोला—सुनो वैश्य ! तुमने जो पुण्याचरण किया है

उसे मैं कहता हूँ और तुम्हारे प्रति वर्णन भी करता हूँ, कारण कि—तुम अवश्य ही उसे नहीं जानते हो ॥ १३ ॥ हरमित्र का पुत्र सुमित्र नाम वेदपारगामी एक ब्राह्मण था, और यमुना जी के दक्षिण तटपर उसका पवित्र आश्रम था ॥१४॥ हे वैश्यवर ! उस वनमें उक्त ब्राह्मणके साथ तुम्हारी मैत्री हो गई, और उसीके सत्सङ्ग से तुमने दो माघमासमें

त्वंवेत्सिसुनिश्चितम् ॥१३॥ हरमित्रसुतोविप्रःसुमित्रोवेदपारगः ॥ आसीत्तस्याश्रमःपुण्योय-मुनादक्षिणेतटे ॥१४॥ तेनतस्मिन्वनेसख्यंजातंतवविशांवर ॥ सत्संगेनत्वयास्नातंमाघमा-सद्वयंतथा ॥ १५ ॥ कालिंदीपुण्यपानीयेसर्वपापहरे शुभे ॥ तत्तीर्थेलोकविख्यातेसर्वपापप्र-णाशने॥१६॥एकेनसर्वपापेभ्योविमुक्तस्त्वंविशांवर ॥ द्वितीयमाघपुण्येनप्राप्तःस्वर्गस्त्वयाऽ-नघ॥१७॥त्वंतत्पुण्यप्रभावेणमोदस्वस्वर्गेचिरंदिवि॥ नरकेषुतवभ्रातासहतांयमयातनाम्॥१८॥

स्नान किया ॥ १५ ॥ शुभ कल्याण स्वरूप अतएव समस्त पापोंका विनाश करनेवाले सुतराम् लोकविख्यात कालिन्दी के शुभ जलमय तीर्थ में (तुमने स्नान किया था) ॥१६॥ हे वैश्यराज ! एक माघस्नान करनेसे तो तुम्हारा अखिल पापों से छुटकारा होगया; और हे निष्पाप ! दूसरे माघस्नानके पुण्यसे तुझे स्वर्गकी प्राप्ति हुई है ॥१७॥ उसी पुण्यके प्रभाव से तुम तो स्वर्ग में चिरकाल पर्यन्त आनन्द भोगो, और उधर तुम्हारा भ्राता नरक में यमयातना का उपभोग

करै ॥ १८ ॥ यह असिपत्रोंसे छेदन किया जायगा, मुद्गरोंसे उसे ताड़न किया जायगा, शिलाओंके चूर्ण २ करके उसे तप्त अँगारोंके ऊपर भूना जायगा ॥ १९ ॥ दत्तात्रेयजी बोले—दूतोंके ऐसे बचन सुन भाईके दुःखसे उसे अत्यन्तही खेद हुआ, संपूर्ण अंगमें पुलक हो आया, अतएव यह दीन नम्रतापूर्वक ॥ २० ॥ देवदूतसे निपुणता सहित मधुर-

छिद्यमानोसिपत्रैश्चभिद्यमानश्चमुद्गरैः ॥ चूर्णमानःशिलापृष्ठैस्तप्तांगारेषुभर्जितः ॥ १९ ॥ दत्तात्रेयउवाच ॥ इतिदूतवचःश्रुत्वाभ्रातृदुःखेनदुःखितः ॥ पुलकांकितसर्वाङ्गोदीनो-सोविनयान्वितः ॥ २० ॥ उवाचदेवदूततंमधुरंनिपुणंवचः ॥ मैत्रीसाप्तपदीसाधोसतांभ-वतिसत्फला॥२१॥ मैत्री भावचिंत्याथमामुपाकर्तुमर्हसि ॥ त्वत्तोऽहंश्रोतुमिच्छामिसर्वज्ञस्त्वंम-तोमम ॥२२॥ यमलोकंनपश्यंतिकर्मणाकेनमानवाः ॥ गच्छंतियेननिरयंतन्मेत्वं कृपया-

वाक्य बोला, हे सज्जन! सात पग चलनेही से सज्जनोंके साथ उत्तम फल देनेवाली मित्रता होजाती है ॥ २१ ॥ मैत्री-भावहीका विचार करके आपको हमारा उपकार करना कर्त्तव्य है, क्योंकि आपको मैंने सर्वज्ञ समझ रक्खा है, इस हेतु मैं तुमसे सुनना चाहता हूँ ॥ २२ ॥ कौनसे कर्मोंका आचरण करनेसे मनुष्योंको यमलोकका दर्शन नहीं होता, और जिस कर्मके करनेसे प्राणी नरकमें जाते हों कृपाकरके उसका मेरे प्रति वर्णन करो ॥ २३ ॥ यमदूत

बोला—तुम्हारे पापोंका इस समय नाश होगया है, अतएव संप्रति तुमने अच्छा प्रश्न किया, जब मनुष्योंका हृदय शुद्ध होजाता है तब उसकी मति कल्याणकी ओरको प्रवृत्त होती है ॥ २४ ॥ यद्यपि मैंने अपने स्वामीकी सेवामें (अर्थात आज्ञापालनमें) तत्पर हूँ, अतएव मुझे अवकाश नहीं है, तथापि तुम्हारे स्नेहसे यथामति मैं वर्णन करता हूँ ॥ २५ ॥

वद ॥ २३ ॥ यमदूतउवाच ॥ सम्यक्पृष्टंत्वयासौम्यलुप्तपापोसिसांमतम् ॥ विशुद्धहृदये-पुंसांबुद्धिःश्रेयसिजायते ॥२४॥ यद्यप्यवसरोनास्तिममसेवापरस्यवै ॥ तथापिचतवस्नेहा-त्मवक्ष्यामियथामती ॥२५॥ मनसाकर्मणावाचासर्वावस्थासुसर्वदा ॥ परपीडांनकुर्वन्तिनते-यांतियमालयम् ॥२६॥ नवेदैर्नचदानैश्चनतपोभिर्नचाध्वरैः ॥ कथंचित्सद्गतिंयांतिपुरुषाः प्राणिहिंसकाः ॥२७॥ अहिंसापरमोधर्मोह्यहिंसापरमंतपः ॥ अहिंसापरमंदानमित्याहुर्मु-

जो व्यक्ति मनवचन और कर्मसे किसी समय और किसी अवस्थामें भी परपीड़ा नहीं करते हैं, वे यमलोकमें नहीं जाते ॥ २६ ॥ प्राणियोंकी हिंसा करनेवाले पुरुषोंकी सद्गति वेदपाठ, दान तप और यज्ञानुष्ठानसे भी नहीं होती है ॥ २७ ॥ मुनियोंने सदा येही वर्णन किया है कि–किसीकी हिंसा न करना येही परमधर्म है, हिंसा न करनाही बड़ा भारी तप है और अहिंसाही सबसे बड़ा दान है ॥ २८ ॥ जो दयालु व्यक्ति मशक (मच्छर) मत्कुण (खटमल)

मा.मा

६२

दंश (डाँस) तथा यूका (जूं) आदि प्राणियोंकी भी अपनेही समान रक्षा करते हैं ॥ २९ ॥ दहकते हुए अङ्गारोंसे भरेहुए कीलमार्गमें प्रेत नदीकी दुर्गतिको और यमयातना को भी वे मनुष्य नहीं देखते हैं ॥ ३० ॥ जो मनुष्य अपनी प्राणयात्राके लिये जल और स्थलचारी जीवों की हिंसा करते हैं उन्हें घोर दुर्गति का उपभोग करना पड़ता है ॥ ३१ ॥

नयः सदा ॥ २८ ॥ मशकान्मत्कुणान्दंशान्यूकादिप्राणिनस्तथा ॥ आत्मौपम्येनरक्षंति-
मानवायेदयालवः ॥२९॥ तथांगारमयंकीलमार्गंप्रेततरंगिणीम् ॥ दुर्गतिंनचपश्यन्तिकृतां-
तस्यच ते नराः ॥३०॥ भूतानियेत्रहिंसंतिजलस्थलचराणिवै ॥ जीवनार्थंहितेयांतिकाल-
सूत्रांचदुर्गतिम् ॥ ३१ ॥ स्वमांसभोजनास्तत्रपूयशोणितफेनपाः ॥ मज्जंतश्चवसापंकेदुष्टाः
कीटैरधोमुखाः ॥ ३२ ॥ परस्परंचखादंतोध्वांतेचान्योन्यघातिनः ॥ वसंतिकल्पमेकंतेरटं-
तोदारुणंरवम् ॥ ३३ ॥ नरकान्निःसृतावैश्यस्थावराः स्युश्चिरंतुवै ॥ ततोगच्छंतितेक्रूरास्ति

वहाँ उन्हें अपने ही मांस का भोजन करना होता है, और वे पीब एवं रक्त के झाग पीते हैं, अथच वे दुष्ट अधोमुख होकर चर्बी के पंक में मज्जन करते हैं ॥ ३२ ॥ उन्हें वहाँ कीड़े काटते हैं, अन्धकार में परस्पर एक दूसरे का घात करके भक्षण करते हैं, और घोर शब्द करते हुए एक कल्प पर्य्यन्त वहाँ ही निवास करते हैं ॥ ३३ ॥ हे वैश्य ! नरक

भी.टी

अ.

६२

से निकल कर वे चिरकाल पर्य्यन्त स्थावर होके रहते हैं, इसके अनन्तर फिर वे दुष्ट सैकड़ों पशुपक्षियों की योनी में निवास करते हैं ॥ ३४ ॥ फिर वे प्राणी हिंसक पुरुष, जन्मान्ध, काने, कुबड़े, लूले, लँगड़े, दरिद्री और अङ्गहीन होते हैं ॥ ३५ ॥ इस हेतु धर्मका ज्ञाता जो मनुष्य दोनों लोक में सुख प्राप्ति की अभिलाषा करता हो उसे चाहिये कि

र्यग्योनिशतेषुच ॥ ३४ ॥ पश्चाद्भवंतिजात्यंधाः काणाकुब्जाश्चपंगवः ॥ दरिद्राअंगहीना-श्चपुरुषाःप्राणिहिंसकाः ॥ ३५ ॥ तस्माद्वैश्यपरद्रोहंकर्मणामनसागिरा ॥ लोकद्वयेसुखप्रेप्सु-र्धर्मज्ञोनसमाचरेत् ॥३६॥ लोकद्वयेनविंदन्तिसुखानिप्राणिहिंसकाः ॥ येहिंसंतिनभूतानि-नतेबिभ्यंतिकुत्रचित् ॥ ३७ ॥ प्रविशंतियथानद्यःसमुद्रमृजुवक्रगाः ॥ सर्वेधर्माह्यहिंसायां-प्रविशंतितथादृढम् ॥ ३८ ॥ इति श्रीपद्मपुराणेउत्तरखंडेमाघमाहात्म्येदिलीपवसिष्ठसंवादे-विकुंडलदूतसंवादोनामसप्तमोऽध्यायः ॥ ७ ॥

मनवच कर्म से कदापि द्रोह न करै ॥ ३६ ॥ जो मनुष्य प्राणियों की हिंसा करते हैं उन्हें दोनों लोकमें सुखकी प्राप्ति नहीं होती, और जो व्यक्ति प्राणियों की हिंसा नहीं करते उन्हें कहींभी डरना नही होता है ॥ ३७ ॥ जैसे कि सीधी अथवा टेढ़ी चाहें जैसी गतिसे चलनेवाली क्यों न हो परन्तु नदियें सब समुद्रही में पहुँचती हैं, उसी प्रकार जितने धर्म हैं वे सब अवश्य ही अहिंसामें प्रवेश करते हैं ॥ ३८ ॥ इति माघमाहात्म्यें सप्तमोऽध्यायः ॥ ७ ॥

यमदूत बोले—हे वैश्यराज ! जो किसी को अभयदान देता है, मानो उसने सब तीर्थों में स्नान करलिया और उसीको सब यज्ञों में दीक्षा प्राप्त हो गई है ॥ १ ॥ हे वैश्य ! जो व्यक्ति शास्त्रोक्त अपने २ स्वच्छ धर्मों का यथोक्त रीतिसे पालन करते हैं, उन्हें यमलोक में जाना नहीं होता है ॥ २ ॥ ब्रह्मचारी, गृहस्थ, वानप्रस्थ और संन्यासी ये

यमदूतउवाच ॥ सस्नातः सर्वतीर्थेषुसर्वयज्ञेषुदीक्षितः ॥ अभयंयेनभूतेभ्योदत्तमत्रविशांवर ॥ १ ॥ निजांनिजांश्चशास्त्रोक्तान्वर्णधर्माननिश्रिताः ॥ पालयंतीहयेवैश्यनतेयांतियमालयम ॥२॥ ब्रह्मचारीगृहस्थश्चवानप्रस्थोयतिस्तथा ॥ स्वधर्मनिरताःसर्वेनाकपृष्ठेवसंतिते ॥ ॥ ३ ॥ यथोक्तकारिणःसर्वेवर्णाश्रमसमन्विताः ॥ नराजितेंद्रियायांतिब्रह्मलोकंचशाश्वतम् ॥४ इष्टापूर्तरतायेचपंचयज्ञरताश्चये ॥ दयान्विताश्चयेनित्यंनेक्षंतेतेयमालयम् ॥५॥

सबही अपने २ धर्म्म में निरत रहकर स्वर्ग लोक में निवास करते हैं ॥ ३ ॥ जो मनुष्य जितेन्द्रिय रहकर वर्ण और आश्रम के धर्मों का यथोक्त रीति से पालन करते हैं, उन्हींको अविनाशी ब्रह्मलोक की प्राप्ति होती है ॥ ४ ॥ जो मनुष्य इष्टापूर्त्त अथवा पञ्चयज्ञ करने में निरत हैं, एवं जो नित्यही दयालु रहते हैं उन्हें यमलोक के दर्शन तक नहीं होते ॥ ५ ॥ जो ब्राह्मण इन्द्रियों के विषयों से पृथक् रहकर वेदवाक्यों का वर्णन करते हैं, जो शक्तिशाली हैं, और

अग्निहोत्र करने में नित्य लगे रहते हैं, वेही, स्वर्गको यात्रा करते हैं ॥ ६ ॥ जिन शूरवीरोंने शत्रुओं के द्वारा वेष्टित होकर भी कभी दीन वचन नहीं कहे, और जिनकी, मृत्यु संग्राम में हुई है वे लोग सूर्यलोक में होकर परलोक में जाते हैं ॥ ७ ॥ जो मनुष्य अनाथ (असहाय) स्त्री और ब्राह्मणों के लिये अथवा शरणागत का पालन करने में

इंद्रियार्थैर्निवृत्तायेसमर्थावेदवादिनः ॥ अग्निपूजारतानित्यंतेविप्राःस्वर्गगामिनः ॥ ६ ॥
अदीनवादिनःशूराःशत्रुभिःपरिवेष्टिताः ॥ आहवेषुविपन्नायेतेषामार्गोदिवाकरः ॥ ७ ॥
अनाथस्त्रीद्विजार्थेचशरणागतपालने ॥ प्राणास्त्यजंतियेवैश्यतेमोदंतेसदादिवि ॥ ८ ॥
पंग्वंधबालवृद्धानांरोग्यनाथदरिद्रिणाम् ॥ येपुष्णंतिसदावैश्यनच्यवंतेदिवस्तुते ॥ ९ ॥ गांदू-
र्वापंकनिर्मग्नांरोगमग्नंद्विजंतथा ॥ उद्धरंतिनरायेतुतेषांलोकोऽश्वमेधिनाम् ॥ १० ॥ गोग्रा-

अपने प्राणों का परित्याग करते हैं, हे वैश्य ! वे सदैव स्वर्गलोक में आनन्द का उपभोग करते हैं ॥ ८ ॥ हे वैश्य ! जो व्यक्ति पंगु (लूले लंगड़े) अन्धे, बालक, वृद्ध, रोगी, अनाथ और दरिद्री इनका पालन पोषण करते हैं, उनका स्वर्गलोक से पतन कदापि नहीं होता ॥ ९ ॥ गौ को कीचड़ में फँसी हुई और ब्राह्मणों को रोग में मग्न देखकर जो मनुष्य उनका उद्धार करते हैं, उन्हें अश्वमेधयज्ञ करनेवालों के लोक की प्राप्ति होती है ॥ १० ॥ जो मनुष्य गोग्रास

देते हैं, सदैव गौकी सेवा शुश्रूषा करते हैं और जो गौकी पीठके ऊपर कभी नहीं चढ़ते हैं, वेही स्वर्गलोक में जाते हैं ॥ ११ ॥ जहाँ गौएँ जलपान करती हैं उस स्थान में जो मनुष्य गढाबना देते हैं, वे यमलोक को बिनाही देखे स्वर्गलोकको चले जाते हैं ॥ १२ ॥ बावड़ी वापी कूप और तालाब आदि के निर्माण करने से अनन्तफल की

संयेप्रयच्छंतिशुश्रूषंतिचगांसदा ॥ येनारोहंतिगोपृष्ठेतेस्युःस्वर्लोकगामिनः ॥११॥ गर्तमात्रं-चयेचक्रुर्यत्रगौर्वितृषी भवेत् ॥ यमलोकमदृष्ट्वैवतेयान्तिस्वर्गतिंनराः १२॥ वापीकूपतडागा-दौधर्मस्यांतोनविद्यते ॥ पिबंतिस्वेच्छयायत्रजलस्थलचराःसदा ॥ १३ ॥ यथायथाचपानी-यंपिबंतिस्वेच्छयानराः ॥ तथातथाऽक्षयः स्वर्गोधर्मवृद्धिर्विशांवर ॥ १४॥ प्राणिनांजीवनं वारिप्राणावारिणिसंस्थिताः ॥ तत्प्रपांयेप्रयच्छन्तितेदीप्यंतेसदादिवि ॥१५॥ अश्वत्थमेकंपि-

प्राप्ति होती है, क्योंकि—उसमें जलचर और स्थलचर जीव सदैव जलपान किया करते हैं ॥ १३ ॥ अपनी इच्छा-अनुसार जैसे २ मनुष्य उनमें जलपान करते हैं, उसी क्रमसे हे वैश्य ! कूपादि निर्माणकर्ताओंके धर्म की वृद्धि और स्वर्गकी प्राप्ति होती है ॥ १४ ॥ जलही में प्राण रहते हैं इसीलिये केवल जलही को प्राणियोंका जीवन कहना चाहिये, सुतराम् जो व्यक्ति जलकी प्याऊ लगाते हैं उनका स्वर्गमें सदैव प्रताप वृद्धि को प्राप्त होता है ॥ १५ ॥ पीपल

का एक, पिचुमन्द (नीम) का एक वटवृक्ष, इमलीके दश वृक्ष, कपित्थ (कैथ) बेल और आँवले के तीन अथच आमके पांच वृक्ष बोने वाले मनुष्य को नरकके दर्शन करने नहीं होते ॥ १६ ॥ दश कुपुत्रों की अपेक्षा पाँच वृक्ष श्रेष्ठ हैं, कारण कि—वे पुत्र पुष्प फल और मूलोंके द्वारा अपने पितरों की तृप्ति संपादन करते हैं ॥ १७ ॥ उन

चुमंदमेकंन्यग्रोधमेकंदशतिंतिणीकम् ॥ कपित्थबिल्वामलकत्रयंचपंचाम्रवापीनरकंनपश्येत् ॥ १६ ॥ वरंभूमिरुहाःपंचनतुकोष्ठरुहादश ॥ पत्रैःपुष्पैःफलैर्मूलैः कुर्वंतिपितृतर्पणम् ॥१७॥ नतत्करोत्यग्निहोत्रंसुहुतंयोषितः सुतः ॥ यत्करोतिघनच्छायपादपःपथिरोपितः ॥ १८ ॥ सदासुखीसवसतिसदादानंप्रयच्छति ॥ सदायज्ञंसयजतेयोरोपयतिपादपम् ॥१९॥ सच्छा- यान्फलपुष्पाढ्यान्पादपान्पथिरोपितान् ॥ येछिंदंतिसदामूढास्तेयांतिनिरयंचिरम् ॥ २० ॥

स्त्री पुत्रों को अग्निमें अग्निहोत्र करने की आवश्यकता नहीं है, जिन्होंने मार्गमें घनी छायावाले वृक्ष लगाये हैं ॥१८॥ जो मनुष्य वृक्षारोपण करते और दान करते हैं वे सदा सुखी रहते और यज्ञका यजन करते हैं ॥ १९ ॥ जो मनुष्य मार्ग में लगे हुए फल फूल समन्वित वृक्षों को काटते हैं वे मूढ चिरकालपर्य्यन्त नरक में निवास करते हैं ॥ २० ॥ बहुत से तुलसी के वृक्ष लगाने से भी यमराज के दर्शन करने नहीं होते हैं, क्योंकि तुलसीका वन पवित्र

और कामनाओंको पूर्ण करने वाला है, अतएव वह समस्त पापोंकाभी अपहरण करता है ॥ २१ ॥ हे वैश्य ! जिस घर में तुलसीका वन लगा रहता है, उसे बिलकुल तीर्थही समझना चाहिये, सुतराम् उसमें यमदूत नहीं जा सकते हैं ॥ २२ ॥ जो व्यक्ति तुलसीका आरोपण करते हैं वे मनुष्य उतनेही सहस्र वर्ष पर्यन्त जितने कि, दल और बीज

नपश्यंतियमंवैश्यतुलसीवनरोपणात् ॥ सर्वपापहरंपुण्यंकामदंतुलसीवनम् ॥२१॥ तुलसी-काननंवैश्यगृहेयस्मिंश्चतिष्ठति ॥ तद्गृहंतीर्थभूतंहिनोयांतियमकिंकराः ॥२२॥ तावद्वर्ष-सहस्राणियावद्बीजदलानिच ॥ वसंतिदेवलोकेतेतुलसींरोपयंतिये ॥२३॥ तुलसीगंधमाघ्रा-यपितरस्तुष्टमानसाः ॥ प्रयांतिगरुडारूढाभवनंचक्रपाणिनः ॥ २४ ॥ दर्शनंनर्मदायास्तु-गंगास्नानंविशांवर ॥ तुलसीवनसंस्पर्शः सममेतत्त्रयंस्मृतम् ॥ २५ ॥ रोपणात्पालनात्से-

होते हैं ॥ २३ ॥ तुलसी की गन्धका आघ्राण करने से पितरों का चित्त सन्तुष्ट हो जाता है, अतएव वे गरुड़जीके ऊपर आरूढ़ होकर चक्रपाणि श्रीविष्णुभगवान् के भवन में निवास करते हैं ॥ २४ ॥ हे वैश्यराज ! नर्मदानदीका दर्शन, गंगाजी में स्नान करना, और तुलसी बनका स्पर्श ये तीनों (अर्थात्—इन तीनों का पुण्य) समानही कीर्तन किया गया है ॥ २५ ॥ तुलसी के लगाने, पालने, जलदेने, दर्शन और स्पर्श करने से तुलसी मनुष्योंके मन वचन

का एक, पिचुमन्द (नीम) का एक वटवृक्ष, इमलीके दश वृक्ष, कपित्थ (कैथ) बेल और आँवले के तीन अथच आमके पांच वृक्ष बोने वाले मनुष्य को नरकके दर्शन करने नहीं होते ॥ १६ ॥ दश कुपुत्रों की अपेक्षा पाँच वृक्ष श्रेष्ठ हैं, कारण कि—वे पुत्र पुष्प फल और मूलोंके द्वारा अपने पितरों की तृप्ति संपादन करते हैं ॥ १७ ॥ उन

चुमंदमेकंन्यग्रोधमेकंदशतिंतिणीकम् ॥ कपित्थबिल्वामलकत्रयंचपंचाम्रवापीनरकंनपश्येत्
॥ १६ ॥ वरंभूमिरुहाःपंचनतुकोष्ठरुहादश ॥ पत्रैःपुष्पैःफलैर्मूलैः कुर्वंतिपितृतर्पणम् ॥ १७ ॥
नतत्करोत्यग्निहोत्रंसुहुतंयोषितः सुतः ॥ यत्करोतिघनच्छायपादपःपथिरोपितः ॥ १८ ॥
सदासुखीसवसतिसदादानंप्रयच्छति ॥ सदायज्ञंसयजतेयोरोपयतिपादपम् ॥ १९ ॥ सच्छा-
यान्फलपुष्पाढ्यान्पादपान्पथिरोपितान् ॥ येछिंदंतिसदामूढास्तेयांतिनिरयंचिरम् ॥ २० ॥

स्त्री पुत्रों को अग्निमें अग्निहोत्र करने की आवश्यकता नहीं है, जिन्होंने मार्गमें घनी छायावाले वृक्ष लगाये हैं ॥ १८ ॥ जो मनुष्य वृक्षारोपण करते और दान करते हैं वे सदा सुखी रहते और यज्ञका यजन करते हैं ॥ १९ ॥ जो मनुष्य मार्ग में लगे हुए फल फूल समन्वित वृक्षों को काटते हैं वे मूढ चिरकालपर्य्यन्त नरक में निवास करते हैं ॥ २० ॥ बहुत से तुलसी के वृक्ष लगाने से भी यमराज के दर्शन करने नहीं होते हैं, क्योंकि तुलसीका वन पवित्र

और कामनाओंको पूर्ण करने वाला है, अतएव वह समस्त पापोंकाभी अपहरण करता है ॥ २१ ॥ हे वैश्य ! जिस घर में तुलसीका वन लगा रहता है, उसे बिलकुल तीर्थही समझना चाहिये, सुतराम् उसमें यमदूत नहीं जा सकते हैं ॥ २२ ॥ जो व्यक्ति तुलसीका आरोपण करते हैं वे मनुष्य उतनेही सहस्र वर्ष पर्यन्त जितने कि, दल और बीज

नपश्यंतियमंवैश्यतुलसीवनरोपणात् ॥ सर्वपापहरंपुण्यंकामदंतुलसीवनम् ॥२१॥ तुलसी-काननंवैश्यगृहेयस्मिंश्चतिष्ठति ॥ तद्गृहंतीर्थभूतंहिनोयांतियमकिंकराः ॥२२॥ तावद्वर्ष-सहस्राणियावद्बीजदलानिच ॥ वसंतिदेवलोकेतेतुलसींरोपयंतिये ॥२३॥ तुलसीगंधमाघ्रा-यपितरस्तुष्टमानसाः ॥ प्रयांतिगरुडारूढाभवनंचक्रपाणिनः ॥ २४ ॥ दर्शनंनर्मदायास्तु-गंगास्नानंविशांवर ॥ तुलसीवनसंस्पर्शः सममेतत्त्रयंस्मृतम् ॥ २५ ॥ रोपणात्पालनात्से-

होते हैं ॥ २३ ॥ तुलसी की गन्धका आघ्राण करने से पितरों का चित्त सन्तुष्ट हो जाता है, अतएव वे गरुड़जीके ऊपर आरूढ़ होकर चक्रपाणि श्रीविष्णुभगवान् के भवन में निवास करते हैं ॥ २४ ॥ हे वैश्यराज ! नर्मदानदीका दर्शन, गंगाजी में स्नान करना, और तुलसी वनका स्पर्श ये तीनों (अर्थात्—इन तीनों का पुण्य) समानही कीर्तन किया गया है ॥ २५ ॥ तुलसी के लगाने, पालने, जलदेने, दर्शन और स्पर्श करने से तुलसी मनुष्योंके मन वचन

कायासे संचय किये पापका विनाश करती है ॥ २६ ॥ हे वैश्य ! प्रत्येक पक्षकी द्वादशी को ब्रह्मादि देवताभी तुलसीवनकी पूजा करते हैं ॥ २७ ॥ मणि, सुवर्ण पुष्प और मोती ये सब तुलसी के एक पत्रकी पूजाकी भी समानता नहीं कर सकते अर्थात् तुलसी के एक पत्र की पूजा करने से जिस उत्तम फलकी प्राप्ति है—मणि,

काद्दर्शनात्स्पर्शनान्नृणाम् ॥ तुलसीदहतेपापंवाङ्मनःकायसंचितम् ॥२६॥ पक्षेपक्षेतुसंप्राप्तेद्वादश्यांवैश्यसत्तम ॥ ब्रह्मादयोपिकुर्वंततुलसीवनपूजनम् ॥ २७ ॥ मणिकांचनपुष्पाणितथामुक्ताफलानिच ॥ तुलसीपत्रपूजायाः कलांनार्हंतिषोडशीम् ॥ २८ ॥ आम्ररोपसहस्रेणपिप्पलानांशतेनच ॥ यत्फलंहितदेकेनतुलसीविटपेनच ॥२६॥ विष्णुपूजनसंसक्तस्तुलसींयस्तुरोपयेत् ॥ युगायुतंदशैकंचरोपकोरमतेदिवि ॥३०॥ तुलसीमंजरीभिस्तुकुर्याद्ध-

सुवर्ण, पुष्प और मोती दान करने से उसके षोडशांशकी भी प्राप्ति नहीं होसकती ॥ २८ ॥ आमके सहस्र, और पीपल के सौ वृक्ष लगानेसे भी जो फल मिलता है सोही फल तुलसी का एक वृक्ष लगानेसे भी प्राप्त होता है ॥ २६ ॥ जो मनुष्य विष्णु भगवान् की पूजा में निरत रहकर तुलसी के वृक्षका आरोपण करता है, वह ग्यारह सहस्र वर्ष पर्य्यन्त स्वर्गलोक में निवास करता है ॥ ३० ॥ जो व्यक्ति तुलसी की मंजरी के द्वारा नारायण की पूजा करते हैं,

उनकी मुक्ति हो जाती है, अतएव वे गर्भमें कभी नहीं आते ॥ ३१ ॥ पुष्कर आदि सब तीर्थ, गंगा आदि सब नदियें और वासुदेव आदि सब देवता तुलसीदल में निवास करते हैं ॥ ३२ ॥ जो मनुष्य तुलसी वृक्षका आरोपण कर उसके दलोंसे विष्णु भगवान् की पूजा करते हैं वे प्रसन्नता पूर्वक हरिभगवान् के निकट निवास करते हैं ॥ ३३ ॥ जो मनुष्य

रिसमर्चनम् ॥ नसगर्भगृहंयातिमुक्तिभागीभवेन्नरः ॥ ३१ ॥ पुष्करादीनितीर्थानिगंगाद्याःसरितस्तथा ॥ वासुदेवादयोदेवावसंतितुलसीदले ॥ ३२ ॥ आरोप्य तुलसींवैश्यसंपूज्यतद्दलैर्हरिम् ॥ वसंतिमोदमानास्तेयत्रदेवश्चतुर्भुजः ॥ ३३ ॥ एककालंद्विकालंवात्रिकालंवापियोनरः ॥ समर्चयतिभूतेशंलिंगेरेवासमुद्भवे॥३४॥स्फाटिकेरत्नलिंगेवापार्थिवेवास्वयंभुवि ॥ स्थापितेवाक्वचिद्वैश्यतीर्थेतीर्थेगिरौवने॥३५॥ नमःशिवायमंत्रेणकुर्वंतस्तज्जपंसदा ॥ शृण्वंतियमलोकस्यकथामपिनतेनराः ॥ ३६ ॥ शिवपूजाप्रभावेणशिवभक्ताः शिवेरताः ॥

एक दो अथवा तीन समय रेवासमुद्भूत भूतनाथ की पूजा करते हैं ॥ ३४ ॥ अथवा जो व्यक्ति स्फटिक मणिनिर्मित वा रत्नलिंग, पार्थिव अथवा स्वयं प्रादुर्भूत हुए लिंग की किंवा हे वैश्य ! किसी तीर्थ वा वनमें स्थापना किये हुए शिवलिंग की ॥ ३५ ॥ "ॐनमःशिवाय" इस मंत्रके द्वारा जप पूर्वक पूजा करते हैं, उन मनुष्योंको यमलोक की कथा

भी नहीं सुननी पड़ती है ॥ ३६ ॥ महादेवजी के जो भक्त शिवभक्तिमें तत्पर होते हैं, वे महादेवजी की पूजाके प्रभावसे चौदह इन्द्रके राज्यपर्य्यन्त शिवलोक में आनन्द भोगते हैं ॥ ३७ ॥ जो मनुष्य किसी प्रसङ्ग, मोह (अज्ञान), दम्भ (पाखण्ड) अथवा लोभसे महादेवजी के दर्शन करलेते हैं, उन्हें यमराज के दर्शन करने नहीं पड़ते ॥ ३८ ॥ हे वैश्य !

मोदंतेशिवलोकंतेयावदिंद्राश्चतुर्दश ॥ ३७ ॥ प्रसंगेनापिमोहेनदंभेनापिहिलोभतः ॥ येसे-वंतेमहादेवंनयेपश्यंतिभास्करिम् ॥३८॥ शिवार्चनसमंपुण्यंसर्वपापप्रणाशनम् ॥ सर्वैश्वर्य-प्रदंवैश्यनास्तिकिंचिज्जगत्त्रये ॥ ३९ ॥ शिवभक्तिंप्रकुर्वाणायेद्विषंतिजनार्दनम् ॥ तेषांनिर-यपातस्तुतत्कालेचउदाहृतः ॥ ४० ॥ द्रव्यमन्नंफलंतोयंशिवस्वंनस्पृशेत्कचित् ॥ निर्माल्यं-नैवसंलंघेत्कूपेसर्वंचतत्क्षिपेत् ॥४१॥ मक्षिकापादमात्रंहिशिवस्वमुपजीवति॥मोहाल्लोभात्स-

सब पापों का विनाश करने वाला, और अखिल ऐश्वर्य्यदायक शिवपूजन के समान त्रिलोकी में अन्य कोई पुण्य नहीं है ॥३९॥ जो मनुष्य महादेवजीकी भक्ति का आचरण करते हैं किन्तु श्रीविष्णु भगवान्‌से द्वेष करते हैं, उनका तत्काल ही नरक में पतन हो जाता है ॥ ४० ॥ धन, अन्न फल अथवा जल महादेवजी का चाहे जो द्रव्य हो उसका स्पर्श न करै एवं शिवनिर्माल्य का उल्लङ्घन भी न करै, किन्तु, उसे कूप (अथवा किसी गर्त्त) में डाल देना चाहिये ॥ ४१ ॥

जो मनुष्य लोभ अथवा मोहके वशीभूत होकर मक्खी के चरणके समान भी शिवद्रव्य को ग्रहण करता है वह कल्प-पर्यन्त नरक में दुःखों को भोगता है ॥ ४२ ॥ और जो मनुष्य तृण काष्ठ अथवा पाषाणों के द्वारा शिवमन्दिर को निर्माण करते हैं, वे महादेवजी के निकट उनके साथ आनन्दसे निवास करते हैं ॥ ४३ ॥ जो मनुष्य ब्रह्मा, विष्णु

पच्येतकल्पांतंनरकंनरः ॥४२॥ तृणैःकाष्ठैश्चपाषाणैर्येकुर्वंतिशिवालयम् ॥ मोदंतेसहरुद्रेण-तेनराःशिवसन्निधौ ॥ ४३ ॥ ब्रह्मविष्णुमहादेवप्रासादंमठमेवच ॥ कृत्वातुसुचिरंकालंतत्र-लोकेवसंतिते ॥ ४४ ॥ येधर्ममठगोशालाः पथिविश्राममंदिरम् ॥ यतोनांसदनंवैश्यदीना-नांचकुटीरकम् ॥ ४५ ॥ ब्रह्मशालांचविपुलांब्राह्मणस्यचमंदिरम् ॥ सृष्ट्वायांविशांश्रेष्ठइंद्र-स्यभवनंनराः ॥ ४६ ॥ जीर्णोद्धारेणवैतेषांतत्फलंद्विगुणंभवेत् ॥ तद्भंगंयत्रयःकुर्यात्सग-

अथवा महादेवजी का मन्दिर अथवा मठ बनाते हैं, वे चिरकाल पर्य्यन्त उन्हीं के लोक में निवास करते हैं ॥ ४४ ॥

जो मनुष्य मार्गमें धर्म्मशाला, मठ, गोशाला, विश्रामस्थान, संन्यासियोंके स्थान अथवा दीन दुखियों की कुटी ॥ ब्रह्मशाला अथवा ब्राह्मणों के मन्दिर इनको निर्माण करते हैं, हे वैश्यराज ! वे लोग इन्द्रलोक में निवास करते हैं ॥ ४५ ॥ ४६ ॥ और उनका जीर्णोद्धार करने से उससे द्विगुणफलकी प्राप्ति होती है, एवं जो व्यक्ति उन्हें भग्न करता

(तोड़ता फोड़ता) है वह अवश्य ही नरक में जाता है ॥ ४७ ॥ जो व्यक्ति लोभ से मोहित हो देवता, ब्राह्मण अथवा यतियों के मठोंका अधिकारी बनना चाहता है, उसको समस्त धर्मकृत्योंमें से वहिष्कृत करदेना चाहिये ॥४८॥ जो मनुष्य मठ के पत्र पुष्प फल जल अथवा अन्न आदि किसी द्रव्यकाभी भक्षण करता है वह इक्कीस नरकों में क्लेश

च्छेन्निरयंध्रुवम् ॥४७॥ देवविप्रयतीनांतुमठलोभविमोहितः॥ मठाधिपत्यंयःकुर्यात्सर्वधर्मब-हिष्कृतः ॥४८॥ पत्रंपुष्पंफलंतोयंद्रव्यमन्नंमठस्यच ॥ योश्नातिनरकान्घोरान्सेवतेचैकविं-शतिः ॥४९॥ इच्छेन्नरकंनेतुंसपुत्रपशुबांधवम्॥ तं देवेष्वधिपंकुर्याद्गोषुचब्राह्मणेषुच ॥५०॥ अभोज्यंमठिनामन्नंभुक्त्वाचांद्रायणंचरेत् ॥ स्पृष्ट्वामठपतिंवैश्यसवासाजलमाविशेत् ॥५१॥ आदित्यंचंडिकांविष्णुंरुद्रंचैवगणेश्वरम् ॥ उपभुंजंतियेद्रव्यंतेवैनिरयगामिनः ॥ ५२ ॥

भोगता है ॥ ४९ ॥ जो मनुष्य अपने पुत्रों पशुओं और बन्धु बान्धवों को नरक में भेजना चाहता हो, उसे देवताओं गौओं और ब्राह्मणों के ऊपर अधिकारी बना देना चाहिये ॥ ५० ॥ मठके अधिकारियों का अन्न भोजन करने के अयोग्य है, उसका भोजन करने के अनन्तर चान्द्रायण व्रत करना चाहिये हे वैश्य ! मठाधिकारी का स्पर्श करले तो वस्त्रोंसहित स्नान करना कर्त्तव्य है ॥ ५१ ॥ जो मनुष्य सूर्य्य, चण्डिका, विष्णु, महादेव अथवा गणेशजी के द्रव्यका

भक्षण करते हैं, उन्हें नरक में जाना होता है ॥ ५२ ॥ ब्रह्मा, विष्णु अथवा महादेवजी की ही पूजा के लिये जो मनुष्य पुष्पवाटिका का आरोपण करते हैं, उनके अहोभाग्य हैं, सुतराम् वे लोग देवलोक में निवास करते हैं ॥ ५३ ॥ जो मनुष्य पितरों, देवताओं और अतिथियों की सदा पूजा करते हैं, वे प्रजापति के उत्तमोत्तम लोक में जाते हैं ॥ ५४ ॥

ब्रह्मविष्णुमहेशानांपूजार्थं पुष्पवाटिकाम् ॥ आरोपयंतियेधन्यादेवलोकेवसंतिते ॥ ५३ ॥
येसदापितृदेवांश्चप्रीणयंत्यतिथीन्सदा ॥ प्राजापत्यंहितेयांतिलोकंसर्वोत्तमोत्तमम् ॥ ५४ ॥
मूर्खोवापंडितोवापिश्रोत्रियःपतितोपिवा ॥ ब्रह्मतुल्योतिथिर्वैश्यमध्याह्ने यः समागतः ॥५५॥
पथिश्रांतायविप्रायह्यन्यस्मैक्षुधितायच ॥ प्रयच्छंत्यन्नपानीयंतेनाकेचिरवासिनः ॥ ५६ ॥
प्रासह्यदृष्टपूर्वाश्च भोक्तुकामाक्षुधातुराः ॥ यद्गेहेतृप्तिमायांतिब्रह्मलोकेवसंतिते ॥५७॥ अति-

हे वैश्य ! जो अतिथि मध्याह्न समय आके उपस्थित हुआ हो वह मूर्ख हो या पण्डित वेदपाठी हो अथवा पतित परन्तु उसे ब्रह्मतुल्य जानना चाहिये ॥ ५५ ॥ मार्ग में थके हुये ब्राह्मण अथवा अन्य क्षुधित व्यक्ति को जो मनुष्य अन्न जल प्रदान करते हैं वे स्वर्ग लोक में चिरकाल पर्यन्त निवास करते हैं ॥ ५६ ॥ जिनको पहिले कभी न देखा हो ऐसे मनुष्य क्षुधित होकर भोजन करने की कामना से आयके जिनके घर तृप्त होते हैं उन मनुष्यों का ब्रह्मलोक

में निवास होता है ॥ ५७ ॥ हे वैश्य ! मध्याह्न अथवा सन्ध्या के समय जिसके घर से आगत अतिथि विमुख हो लौट जाता है, वह यमलोक में निवास करता है ॥ ५८ ॥ जिस गृहस्थ के घर से अभ्यागत "नहीं २" वाक्य सुन निराश हो लौट जाता है उस गृहस्थी के जन्मभर के संचित पुण्य को वह अतिथि ले जाता है ॥ ५९ ॥ अतिथि-

थिर्विमुखोयस्यसंगच्छेद्गृहमागतः ॥ मध्याह्नेवैश्यसायंवासप्रयातियमालयम् ॥५८॥ नास्ति-
नास्तिवचः श्रुत्वात्यक्ताशोह्यतिथिर्व्रजेत् ॥ आजन्मसंचितंपुण्यंगृह्णातिगृहमेधिनः ॥५९॥
नास्त्यतिथिसमोबंधुर्नास्त्यतिथिसमंधनम् ॥नास्त्यतिथिसमोधर्मोनास्त्यतिथिसमोहितः ॥६०॥
आतिथ्यस्यप्रभावेणराजानोमुनयस्तथा ॥ ब्रह्मलोकंगताद्यापिनच्यवंतेविशांवर ॥ ६१ ॥
आजन्मतोगृहस्थोयः प्रमादाद्वाकथंचन ॥ भोजयेदतिथिंनूनंनैवपश्यतिसोऽन्तकम् ॥६२॥

के समान बन्धु, धन, धर्म और हितकारी अन्य कोई भी नहीं है ॥ ६० ॥ हे वैश्य ! अतिथियों ही के प्रताप से जो राजा और मुनिलोग ब्रह्मलोक में पहुँचे हैं, अबतक भी उनका पतन नहीं हुआ है ॥ ६१ ॥ हे वैश्य ! जो गृहस्थ अपने जन्म में प्रमादसे भी अतिथि को भोजन करा देते हैं, उसको यमराजके दर्शन कदापि नहीं होते ॥ ६२ ॥ हे वैश्य ! अन्नदान करनेवाले व्यक्ति दीप्तिमान् विमानों में बैठकर अमृतपान करते हैं, और स्वर्गसे च्युत होकर उत्तर-

कुरुओंमें उनका जन्म होता है ॥ ६३ ॥ तदनन्तर वे लोग भारतवर्षमें धर्माचारी राजा होते हैं, अथच जो मनुष्य अन्नदान करता है उसे दीर्घ आयु और विपुल सुखसंपत्तिकी प्राप्ति होती है ॥ ६४ ॥ क्योंकि—सब मनुष्योंके प्राण अन्नहीमें हैं, इसलिये हे वैश्यराज ! अन्नदान करनेवालेको विद्वानोंने प्राणदाता कहा है ॥ ६५ ॥ जब केसरिध्वज राजा

सुदीप्तेषुविमानेषुभुंक्तेपीयूषमन्नदः ॥ यातिस्वर्गच्युतोवैश्यउत्तरांश्चकुरून्प्रति ॥६३॥ ततश्च-भारतेवर्षेराजाभवतिधार्मिकः ॥ अन्नदःदीर्घमायुश्च विंदते सुखसंपदः ॥ ६४ ॥ सर्वेषामेवभू-तानामन्नेप्राणाःप्रतिष्ठिताः ॥ तेनान्नदोविशांश्रेष्ठप्राणदातास्मृतोबुधैः ॥६५॥ प्राहवैवस्वतो-देवोराजानंकेसरिध्वजम् ॥ ६७ ॥ इत्यश्राविमयावैश्यसाक्षाद्धर्ममुखादपि ॥ अन्नदानस-मंदानमतोनास्तिमयोदितम् ॥६८॥ पानीयंप्रदद्ग्रीष्मेहेमन्तेऽग्निंतथैवच ॥ अन्नंचसर्वदा-

स्वर्ग से निपतित होने लगा, तब वैवस्वतदेवने करुणा करके उससे कहा ॥ ६६ ॥ हे राजन् ! यदि कर्मभूमिमें मर्त्य-लोक में जाकर फिर तुम स्वर्गप्राप्तिकी इच्छा करो तो अन्नका दान अवश्य करना ॥ ६७ ॥ हे वैश्य ! यह वृत्तान्त मैंने स्वयं धर्मराजके मुखसे सुना था, अतएव अन्नदानके समान अन्य कोई दान नहीं है ऐसा मैंने कहा है ॥ ६८ ॥ जो मनुष्य ग्रीष्मऋतुमें जल, हेमन्तऋतुमें अग्नि और सब कालमें अन्नदान करते हैं, उन्हें नारकयातना नहीं भोगनी

पड़ती ॥ ६९ ॥ जो मनुष्य ज्ञान अथवा अज्ञानसे किये हुए छोटे अथवा बड़े पापोंके लिए छ मासमें प्रायश्चित्त करता है ॥ ७० ॥ हे वैश्यराज ! वह मनुष्य निष्पाप हो जाता है, अतएव उसे यमराजके दर्शन नहीं होते, और जो पुरुष वाचिक मानसिक अथवा कायिक कर्मों के प्रायश्चित्तका आचरण करता है ॥ ७१ ॥ उसको देवताओं और

दत्त्वागच्छेद्याम्यांनयातनाम् ॥ ६९ ॥ ज्ञाताज्ञातेषुपापेषुक्षुद्रेषुचमहत्सुच ॥ षट्सुषट्सुचमासेषुप्रायश्चित्तंतुयश्चरेत् ॥ ७० ॥ निष्कल्मषोनरोवैश्यसकृतांतंनपश्यति ॥ प्रायश्चित्तंचरेद्यस्तुवाङ्मनः कायकर्मसु ॥७१॥ सप्राप्नोतिशुभाँल्लोकान्देवगंधर्वशोभितान् ॥ नित्यंजपंतियेवैश्यगायत्रींवेदमातरम् ॥ ७२ ॥ अन्यद्वावैदिकंजाप्यंनतेलिंपंतिपातकैः ॥ वेदाभ्यासरतानित्यंसायप्रातर्हुताशने ॥७३॥ येजुह्वतिद्विजावैश्यतेलभंतेऽक्षयांगतिम् ॥ नित्यंव्रतसमाचारोनित्यंतीर्थोपसेवकः ॥७४॥ नित्यंजितेन्द्रियः सत्यंयमंरौद्रंनपश्यति ॥ नरकंदारुणंस्पृ-

गन्धर्वों के द्वारा शोभायमान लोकोंकी प्राप्ति होती है । हे वैश्य ! जो लोग वेदमाता गायत्रीका नित्यही जप करते॥७२॥ अथवा अन्य किसी वैदिक मन्त्रका जप करते हैं, उन्हें पातकोंसे लिप्त होना नहीं होता, जो व्यक्ति वेदके अभ्यासमें निरत रहकर प्रातः और सन्ध्यासमय अग्नि में हवन करते हैं ॥ ७३ ॥ हे वैश्य ! उनको अक्षय गतिकी

प्राप्ति होती है, जो मनुष्य नित्य ही व्रतका आचरण करता, नित्यतीर्थों की सेवा करता है ॥ ७४ ॥ और जो नित्यही इन्द्रिय दमन पूर्वक सत्य संभाषण करता है, उसको बीभत्स यमराजके दर्शन करने नहीं पड़ते, एवं नरकों की दारुणताका विचार (स्मरण) करके पराये अन्नकी अभिरुचिका परित्याग कर डालना चाहिये ॥ ७५ ॥ कारण कि, जो जिसके अन्नका उपभोग करता है, वह उसके पातकों का भी भोग करता है जो मनुष्य प्रभात समय स्नान करता है,

त्वापरान्नेचरतिंत्यजेत् ॥ ७५ ॥ योयस्यान्नंसमश्नातितस्याश्नातिचकिल्बिषम् ॥ याम्यंहियातनाद्दुःखंप्रातःस्नायीनविंदति ॥ ७६ ॥ प्रातःस्नानेनपूयंतेअतिपापकरानराः ॥ प्रातःस्नानंहरेद्वैश्यसवाह्याभ्यंतरंमलम् ॥ ७७ ॥ प्रातःस्नानेननिष्पापोनरोननिरयंव्रजेत् ॥ स्नानंविनायोभुंक्तेसमलाशीसदानरः ॥७८॥ अस्नायिनोऽशुचेस्तस्यनिराशाःपितृदेवताः ॥ स्नानहीनो-

उसे यमयातना नहीं भोगनी पड़ती ॥ ७६ ॥ प्रातः समय स्नान करने से बड़े २ पापाचारी भी पवित्र हो जाते हैं, हे वैश्य ! प्रातः काल स्नान करना बाह्य और अभ्यन्तर के सब मलोंका अपहरण कर लेता है ॥ ७७ ॥ प्रातः समय स्नान करने से मनुष्य के समस्त पापों का नाश हो जाता है, अतएव उसको नरक में जाना नहीं होता है; एवंच जो मनुष्य विना स्नान किये भोजन करलेता है उसको सदा मल खानेवाला जानना चाहिये ॥ ७८ ॥ जो

मा.मा ८०

मनुष्य स्नान न करने के कारण अपवित्र रहता है उसके पितृदेव निराश रहते हैं, कारण कि, जो मनुष्य स्नान नहीं करता वह पापी और अशुद्ध होता है ॥ ७९ ॥ जो मनुष्य स्नान नहीं करते वे नरक के यातना को भोगकर नीच जातियों में उत्पन्न होते हैं और जो मनुष्य माघमास में पर्व के दिन स्नान करते हैं ॥ ८० ॥ उनकी दुर्गति अथवा कुत्सित योनियों में उनका जन्म नहीं होता, एवञ्च उनके दुःस्वप्न और अनिष्टचिन्तायें सबही निष्फल हो

नरःपापःस्नानहीनोऽशुचिःसदा ॥ ७९ ॥ अस्नायीनरकंभुक्त्वापुल्कसादिषुजायते ॥ येपुः नस्तपसिस्नानमाचरंतीहपर्वणि ॥ ८० ॥ तेनैवदुर्गतिंयांतिनजायंतेकुयोनिषु ॥ दुःस्वप्नंदुष्ट- चिंत्यंचवंध्यंभवतिसर्वदा ॥ ८१ ॥ प्रातःस्नानविशुद्धानांपुरुषाणांविशांवर ॥ तिलांश्चतिलपा- त्रंचतिलपद्मंयथाविधि ॥ ८२ ॥ दत्त्वाप्रेतपतेर्भूमिनव्रजंतिनराःक्वचित् ॥ पृथिवींकांचनंगाश्च- महादानानिषोडश ॥ ८३ ॥ दत्त्वातुननिवर्तंतेस्वर्गलोकाद्द्विकुण्डल ॥ पुण्यासुतिथिषुप्राज्ञो-

जाती हैं ॥ ८१ ॥ हे वैश्यवर ! प्रभात समय स्नान करने से जो मनुष्य शुद्ध हो गये हैं, उन को तिल, तिलपात्र और तिलकमल यथा विधि से ॥ ८२ ॥ दान करके दिये जायँ तो दान करनेवाले मनुष्यों को यमपुरी में नहीं जाना पड़ता, पृथिवी, कांचन (सुवर्ण) गौ और षोडश महादान ॥ ८३ ॥ इन सबका दान करने से हे विकुण्डल ! स्वर्ग- लोक से लौटना नहीं होता है। विचार शील व्यक्तियों को चाहिये कि पवित्र तिथियों में व्यतीपात और संक्रान्ति के

मा.टी अ० ८ ८०

दिन ॥ ८४ ॥ स्नान करके कुछ न कुछ अवश्य दान करे, क्योंकि—ऐसा करनेसे उसको दुर्गति नहीं भोगनी पड़ती, और दान करनेवाले व्यक्तियोंको दारुणनरकके मार्गमें भी नहीं चलना पड़ता ॥ ८५ ॥ और इस लोकमें भी उनका निर्धनोंके कुलमें जन्म नहीं होता, जो मनुष्य सदैव मौनधारण अथवा सत्य संभाषण करनेवाला हैं, किंवा जो प्रिय बातही बोलता है ॥ ८६ ॥ जो क्रोध नहीं करता, जो क्षमा करने ही में अपना पौरुष सफल जानता है, जो अत्र

व्यतीपातेचसंक्रमे ॥ ८४ ॥ स्नात्वादत्त्वातुयत्किंचिन्नैवमज्जतिदुर्गतिम् ॥ ८५ ॥ इहलोकेन-
जायंतेकुलेधनविवर्जिते ॥ सत्यवादीसदामौनीप्रियवादीचयोनरः ॥ ८६ ॥ अक्रोधनःक्षमा-
सारोनातिवागनसूयकः ॥ सदादाक्षिण्यसंयुक्तःसदाभूतदयान्वितः ॥ ८७ ॥ गोप्ताचपरधर्मा-
णांवक्तापरगुणस्यच ॥ परस्वंतिलमात्रंतुमनसापिनयोहरेत् ॥ ८८ ॥ नपश्यतिविशांश्रेष्ठनैन-
रकयातनाम् ॥ परापवादीपापिष्ठःपापेष्वभिरतःसदा ॥ ८९ ॥ पच्यतेनरकेघोरेयावदाभूतसंप्लवम् ॥

भाषण करता और किसीकी निन्दा नहीं करता, जिसके कार्य्य सदैव निपुणतासे सम्पन्न होते और जो सदैव अन्य प्राणियों के ऊपर दया करता है ॥ ८७ ॥ जो पराये धर्मकी रक्षा करता और पराये गुणोंका प्रकाश करता है, और जिसके मनमें पराये द्रव्यको तिलमात्र भी लेनेकी आकांक्षा नहीं होती है ॥ ८८ ॥ हे वैश्यवर ! उसको नरक यातनाके दर्शनतक भी नहीं होते, जो मनुष्य दूसरों की निन्दा करता, जो पापाचारी और सदैव पापही में रुचि

रखनेवाला है ॥ ८६ ॥ वह प्रलय पर्य्यन्त घोर नरकमें कष्ट भोगता है, जो मनुष्य कठोर वचन बोलता है उसके लिये समझ लेना चाहिये कि, वह अवश्य नरकमें जायगा ॥ ९० ॥ और हे वैश्यराज, इसमें भी कोई सन्देह नहीं है कि, पीछेसे उसे दुर्गतिकी प्राप्ति होगी, जो मनुष्य दूसरोंके किये हुए उपकारोंको नहीं मानते, तीर्थयात्रा और तपश्चर्य्यासे भी उनका उद्धार नहीं होता ॥ ९१ ॥ और वह मनुष्य नरकमें चिरकालपर्य्यन्त घोर कष्टका उपभोग

वक्तापरुषवाक्यानांमंतव्योनरकंगतः ॥९०॥ संदेहोनविशांश्रेष्ठपुनर्यास्यतिदुर्गतिम् ॥ नतीर्थैर्नतपोभिश्चकृतघ्नस्यास्तिनिष्कृतिः ॥९१॥ सहतेयातनांघोरांसनरोनरकेचिरम् ॥ पृथिव्यांयानितीर्थानितेषुमज्जतियोनरः ॥९२॥ जितेन्द्रियोजिताहारोनसयातियमालयम ॥ नतीर्थेपातकंकुर्यात्त्यजेत्तीर्थोपजीवनम् ॥९३॥ अन्यतीर्थसमांगंगांयोब्रवीतिनराधमः ॥ सयातिरौरवंवैश्यनरकंदारुणंभृशम् ॥ ९४ ॥ तीर्थेप्रतिग्रहस्त्याज्यस्त्याज्योधर्मस्यविक्रयः ॥ दुर्जर-

करता है, और जो मनुष्य भूमण्डलके सम्पूर्ण तीर्थोंमें स्नान करता है ॥ ९२ ॥ और जितेन्द्रिय रहकर नियमित भोजन करता है, उसको यमलोकमें जाना नहीं होता, मनुष्योंको चाहिये कि, तीर्थके ऊपर पापका आचरण न करे एवं तीर्थकी आजीविकाको भी त्याग देना चाहिये ॥ ९३ ॥ हे वैश्य ! जो नीच मनुष्य गंगाजीको भी अन्य तीर्थोंही को समान बताते हैं, उन्हें अतीव घोर नरकमें जाना होता है ॥ ९४ ॥ तीर्थमें दान लेना और धर्मका विक्रय त्याग

देना चाहिये, क्योंकि तीर्थका दान और पातक ये दोनों ही कठिनतासे दूर होते हैं ॥ ९५ ॥ तीर्थोंमें जो कुछ भी किया जाय सब कठिनता ही से दूर होता है, अतएव वह पापादि करनेवालोंको नरकमें जाना होता है, जिसने एक बारभी गंगाजलमें स्नान किया है उसकी आत्मा गंगाजलके स्पर्शसे शुद्ध हो जाती है ॥ ९६ ॥ इसी कारण उसने चाहे जितने पाप क्यों न किये हों तथापि उसे नरकमें नहीं जाना पड़ता, व्रत, दान, तप, यज्ञ तथा अन्य पवित्र कर्म

पातकंतीर्थेदुर्जरंप्रतिग्रहः ॥९५॥ तीर्थेषुदुर्जरंसर्वमेतत्कृन्नरकंव्रजेत् ॥ सकृद्गंगाम्भसिस्नात्वापूतोगांगेनवारिणा ॥९६॥ नरोनरकंयातिअपिपातकराशिकृत् ॥ व्रतंदानंतपोयज्ञाःपवित्राणीतराणिच ॥९७॥ गंगाबिन्द्वभिषेकस्यनसमानीतिविश्रुतम् ॥ धर्मद्रव्यंधर्मबीजंवैकुंठचरणच्युतम् ॥९८॥ धृतंमूर्ध्निमहेशेनयद्गांगममलंजलम् ॥ तद्ब्रह्मैवनसंदेहोनिर्गुणंप्रकृतेःपरम् ॥९९॥ तेतत्किंसमतांगच्छेदपिब्रह्मांडगोलके गंगेनामग्रहणाद्योजनानांशतैरपि॥१००॥

सब भी मिलकर ॥ ९७ ॥ गंगाजलके एक बिन्दुके अभिषेककी समानता नहीं कर सकते हैं, ऐसा शास्त्रोंमें कहा है। यह गंगाजल धर्मका द्रव्य है धर्मका बीजस्वरूप है, इसका प्रादुर्भाव श्रीविष्णुभगवान्के चरणोंसे हुआ है ॥ ९८ ॥ उसी निर्मल गंगाजलको महादेवजी ने अपने शिरके ऊपर धारण किया, उसी जलको मायिक गुणोंसे रहित, और जहाँ तक प्रकृतिकी भी पहुँच नहीं है ऐसा ब्रह्मही समझना चाहिये ॥ ९९ ॥ अतएव उस ब्रह्माण्डके गोलकमें कोई

वस्तुभी उसके समान नहीं हो सकती, जब सौ योजनकी दूरीपर बैठा हुआ भी मनुष्य गंगा नामका उच्चारण करनेसे ॥ १०० ॥ नरकयातनासे बच जाता है, तब उसके सदृश भला और क्या हो सकता है, अन्य किसीके द्वारा नरक देनेवाले कार्य्य तत्काल भस्मीभूत नहीं होते ॥ १०१ ॥ अतएव यत्नपूर्वक गंगाजीमें मनुष्योंको स्नान करना चाहिये, जिसने दान लेना त्याग दिया, अथवा जो दान नहीं लेता है ॥१०२॥ वह तारारूप होकर चिरकालपर्य्यन्त स्वर्गलोकमें

नरोननरकंयातिकिंतयासदृशंभवेत्।।नान्येनदह्यतेसद्यःक्रियानरकदायिनी॥१०१॥गंगांभसि-
प्रयत्नेनस्नातव्यंतैश्चमानुषैः॥प्रतिग्रहनिवृत्तोयःप्रतिग्रहक्षमोपिसन्।१०२॥सद्विजोद्योततेवैश्य-
तारारूपश्चिरंदिवि ॥ गामुद्धरंतियेपंकाद्येरक्षंतिरोगिणम् ॥१०३॥ म्रियंतेगोगृहेचैवतेस्युर्न-
भसितारकाः॥ यमलोकंनपश्यंतिप्राणायामरतानराः॥०४॥अपिदुष्कृतकर्माणस्तएवहतकि-
ल्बिषाः।दिवसेदिवसेवैश्यप्राणायामास्तुषोडश॥१०५॥अपिभ्रूणहताःपुंसांपुनंत्यहरहःकृताः॥

प्रदीप्त रहता है, जो मनुष्य पंक (कीचड़) में से गौका उद्धार और रोगीकी रक्षा करते हैं ॥१०३॥ अथवा गोशाला में जिनका मरण होता है, वे सब आकाशमें तारा होते हैं; और गंगाजीको प्रणाम करनेवाले मनुष्योंको यमलोकके दर्शनतक नहीं होते ॥ १०४ ॥ हे वैश्य ! जो प्रतिदिन सोलह २ प्राणायाम करते हैं उन्होंने चाहें जैसे दुष्कर्म किये हों तथापि उनके सब पाप दूर हो जाते हैं ॥ १०५ ॥ जो मनुष्य–जप, व्रत, तथा अन्य नियमोंका पालन करते हैं, उनके

भ्रूणहत्यादिक पातकभी दूर हो जाते हैं ॥ १०६ ॥ सहस्र गौओंका दान करना, तथा प्राणायाम करना, अथच जो मनुष्य एक मास पर्य्यन्त कुशाग्रसे गंगाजल पान करता है ॥ १०७ ॥ इसका फल एक वर्ष प्राणायाम करनेके समान है, जितने महापातक हैं, तथा जितने क्षुद्र उपपातक हैं ॥ १०८ ॥ हे वैश्यवर ! प्राणायाम करनेसे ये सब पातक क्षण

तपांसियानितप्यंतेव्रतानिनियमाश्चये ॥ १०६ ॥ गोसहस्रप्रदानंचप्राणायामास्तुतत्समाः ॥ गंगांभोपिकुशाग्रेणमासमेकंतुयःपिबेत् ॥ १०७ ॥ संवत्सरशतंसाग्रंप्राणायामस्तुतत्समः ॥ पातकंतुमहद्यच्चतथाक्षुद्रोपपातकम् ॥ १०८ ॥ प्राणायामैःक्षणात्सर्वं भस्मसाच्चविशांवर ॥ मातृवत्परदारेषु पश्यंतिनरोत्तमाः ॥ १०९ ॥ तेनयांतिविशांश्रेष्ठकदाचिद्यमयातनाम् ॥ मनसापिपरेषांयः कलत्राणिनसेवते ॥ ११० ॥ सहिलोकद्वयेदेवस्तेनवैश्यधराधृता ॥ तस्मात्सर्वात्मनात्याज्यंपरदारोपसेवनम् ॥ १११ ॥ नयंतिपरदारास्तुनरकानेकविंशतिम् ॥ नलोभेजायतेयेषांपरद्रव्येषु-

भरमें भस्म हो जाते हैं, जो मनुष्य पराई स्त्रियोंको अपनी माताके सदृश अवलोकन करते हैं ॥ १०९ ॥ हे वैश्यराज ! उन्हें यमयातना भोगनी नहीं होती, एवं च जो व्यक्ति पराई स्त्रियोंकी अपने मनसेभी सेवा नहीं करते हैं ॥ ११० ॥ वह दोनों लोकोंमें उत्तम समझा जाता है, और मानों उसीने भूमिको धारण कर रक्खा है, सुतराम् मनुष्योंको परस्त्री सेवन सर्वथैव परित्याग करदेना चाहिये ॥ १११ ॥ परस्त्रीगमन इकीस नरकोंमें लेजाता है, जिनके चित्तमें पराये

द्रव्यका लाभ नहीं होता है ॥ ११२ ॥ वे लोग देवलोक में जाते हैं, और उन्हें यमयातनाका उपभोग करना नहीं होता, जिन कारणों से क्रोध उत्पन्न होता है, उन कारणोंके उपस्थित होनेपर भी क्रोध जिसे नहीं आता ॥ ११३ ॥ उस क्रोधहीन व्यक्तिको स्वर्गका विजय करनेवाला समझना चाहिए, जो मनुष्य माता-पिताका देववत् आराधना

मानसम् ॥११२॥ तेयांतिदेवलोकंहिनयाम्यंवैश्यसत्तम ॥ सत्सुक्रोधनिमित्तेषुयःक्रोधेनन-
जीयते ॥ ११३ ॥ जितस्वर्गःसमतव्योपुरुषोऽक्रोधनोभुवि ॥ मातरंपितरंयस्तुआराधयति-
देववत् ॥ ११४॥ संप्राप्तेवार्द्धकेकालेनसयातियमालयम् ॥ पितुराधिक्यभावेनयेऽर्चयंतिगुरुं-
नराः ॥ ११५ ॥ भवंत्यतिथयोलोकेब्रह्मणस्तेविशांवर ॥ इहताश्चस्त्रियोधन्याःशीलस्यपरिर-
क्षणात् ॥ ११६ ॥ शीलभंगेननारीणांयमलोकःसुदारुणः ॥ शीलंरक्षंतियानित्यंदुष्टसंग-

करता है ॥ ११४ ॥ वह व्यक्ति वृद्ध भाव प्राप्त होनेपर यमलोकका दर्शन नहीं करता, और जो मनुष्य गुरुमहाराज की पूजा पिताकी अपेक्षासे भी अधिक भावसे करते हैं ॥ ११५ ॥ हे वैश्यवर ! वे लोग ब्रह्मलोकमें गमन करते हैं, एवंच इस लोकमें उन्हीं स्त्रियोंको धन्य है जो शीलको रक्षा करती हैं ॥ ११६ ॥ यदि शीलका विनाश होजाय तो स्त्रियोंको कठिन यमलोककी प्राप्ति होती है, अतएव जो स्त्रियें दुष्ट संगका परित्याग कर अपने शीलको रक्षा करती

हैं ॥ ११७ ॥ हे वैश्य ! उन स्त्रियोंको शीलकी रक्षा करनेही से निस्सन्देह स्वर्गकी प्राप्ति होती है शुद्ध पाकयज्ञका आचरण करने और निषिद्ध कार्योंका परित्याग करनेसे ॥ ११८ ॥ हे वैश्य ! स्वर्गकी गतिका लाभ होता है, और उक्तविधिसे आचरण करनेवालेको नरककी यात्रा नहीं करनी पड़ती, जो मनुष्य शास्त्रका विचार करते, और जो वेदका अभ्यास करते हैं ॥११९॥ एवंच जो महाशय पुराण और संहिताको सुनाते अथवा स्वयं पढ़ते हैं, जो स्मृतियों

विवर्जनात् ॥ ११७ ॥ शीलेनहिपरःस्वर्गःस्त्रीणांवैश्यनसंशयः ॥ विशुद्धपाकयज्ञेननिषिद्धाकरणेनच ॥११८॥ स्वर्गतिर्विहितावैश्यनगतिस्तस्य नारकी ॥ विचारयंतियेशास्त्रंवेदाभ्यासरताश्चये ॥११९॥ पुराणंसंहितांयेचश्रावयन्तिपठन्तिच ॥ व्याकुर्वंतिस्मृतिंयचयेधर्मप्रतिबोधकाः ॥ १२० ॥ वेदांतनिपुणायेवैतैरियंजगतीधृता ॥ तत्तदभ्यासमाहात्म्यैःसर्वेलेहतकिल्विषाः ॥ १२१ ॥ गच्छंतिब्रह्मणोलोकंयत्रमोहोनविद्यते॥ज्ञानमादाययोदद्याद्वेदशा

(अर्थात्–मनुस्मृति आदि धर्मशास्त्रोंमें) की व्याख्या करते एवं जो धर्मका उपदेश करते हैं ॥ १२० ॥ और जो व्यक्ति वेदान्तशास्त्र की क्रियामें निपुण हैं, उन्होंनेही इस भूमिको धारण कर रक्खा है। जिनका २ नाम प्रथम लिया गया है उनका अभ्यास करनेके माहात्म्यसे उक्त सब महाशयोंके पापोंका नाश हो जाता है ॥ १२१ ॥ सुतराम् वे ब्रह्माजीके उस लोकमें जाते हैं, जहाँ अज्ञान है ही नहीं, जो मनुष्य वैदिक अथवा शास्त्रीय ज्ञानका दूसरोंको

उपदेश करते हैं ॥ १२२ ॥ उस सांसारिकबन्धनसे मुक्तकराने वाले महात्माकी देवता भी पूजा करते हैं ॥ १२३ ॥
इति श्रीमाघमाहात्म्य भाषाटीकायामष्टमोऽध्यायः ॥ ८ ॥

स्नसमुद्भवम् ॥१२२॥ अपि देवास्तमर्चंति भवबंधविदारकम् ॥ १२३ ॥ इति श्रीपद्म० उत्तरखंडेमाघमासमा० वसिष्ठदिलीपसंवादेऽष्टमोऽध्यायः ॥ ८ ॥

यमदूत बोला—हे वैश्यराज ! धर्मराजका समस्त, और सम्पूर्ण लोकोंको अमरत्व लाभ करानेवाले इस अद्भुत रहस्यको तुम सुनो ॥ १ ॥ जो मनुष्य विष्णु भगवान्‌की भक्तिका आचरण करते हैं वे लोग यमराज, घोर

यमदूतउवाच ॥ श्रूयतामद्भुतं ह्येतद्रहस्यंवैश्यसत्तम ॥ संमतंधर्मराजस्यसर्वलोकामृतप्रदम् ॥ १ ॥ नयमंयमदूतंचनदूतान्घोरदर्शनात् ॥ पश्यंतिवैष्णवानूनं सत्यमेतन्मयोदितम् ॥२॥ आहास्मान्यमुनाभ्राता सादरंचपुनःपुनः ॥ भवद्भिर्वैष्णवास्त्याज्यानतेस्युर्ममगो

दर्शनवाले उनके सब दूत अथवा किसी यमदूतके दर्शन नहीं करते हैं, यह बात मैं बिलकुल सत्यही कहता हूँ ॥ २ ॥ यमुना भ्राता (यमराजजी) वारंवार हमसे येही कहा करते हैं कि—तुम लोग वैष्णवोंको मत पकड़ना, कारण कि—

मैं उन्हें देखतक नहीं सकता हूँ ॥ ३ ॥ हे दूतों ! जो मनुष्य किसी कारणसे एकबार भी विष्णुभगवान्का स्मरण करते हैं, उनके समस्त पापसमूहका विनाश हो जाता है सुतराम् उनको विष्णुभगवान्के परमपद मोक्षकी प्राप्ति होती है ॥ ४ ॥ जो मनुष्य विष्णुभगवान्का भजन करता है, वह दुराचारी, दुःशील और सदैव पापाचरण करनेमें निरतही

चराः ॥ ३ ॥ येस्मरन्तिसकृद्दूताःप्रसंगेनापिकेशवम् ॥ तेविध्वस्ताखिलाघौघायांतिविष्णोः परंपदम् ॥ ४ ॥ दुराचारोपिदुःशीलःसदापापरतोपिवा ॥ भवद्भिःसर्वदात्याज्योविष्णुंचेद्भजतेनरः ॥५॥ वैष्णवोयद्गृहेभुंक्तेतेषांवैष्णवसंगतिः ॥ तेपिवःपरिहार्या स्युस्तत्संगहतकिल्बिषाः ॥ ६ ॥ इतिवैश्यानुशास्तास्मान्देवोदंडधरः सदा ॥ अतोनवैष्णवोयातिराजधानीयमस्यतु ॥ ७ ॥ विष्णुभक्तिविनानृणांपापिष्ठानांविशांवर ॥ उपायोनास्तिनास्त्यन्यःसंत

क्यों न हो तथापि तुम्हें उसका सर्वदाही परित्याग करदेना चाहिये ॥ ५ ॥ जिस घरमें वैष्णवलोग भोजन करते हैं, उनको वैष्णवके संसर्गका लाभ होता है, चूँकि वैष्णवोंके संसर्गसे उनके भी समस्त पापोंका विनाश हो जाता है, अतएव तुम्हें उनका भी परित्याग करदेना चाहिये ॥ ६ ॥ हे वैश्य ! यमराजजी इस प्रकार सदैव हम लोगों को शासन करते रहते हैं उसका यही कारण है कि वैष्णव व्यक्ति को यमराज की राजधानी में जाना नहीं होता है ॥ ७ ॥ हे

वैश्य ! जो पापाचरण करनेवाले मनुष्य हैं उनका संसार सागरसे उद्धार करनेके लिये विष्णुभक्ति को छोड़के अन्य कोई भी उपाय है ही नहीं ॥ ८ ॥ जो ब्राह्मण विष्णु के भक्त नहीं हैं, उनको सांसारिक जन स्वपाक (चाण्डाल) के समान अवलोकन करते हैं, और वैष्णव यदि नीच वर्ण का हो तथापि वह तीनों लोकों को पवित्र कर सकता है ॥ ९ ॥ पितृपक्ष और मातृपक्ष के पूर्वज व्यक्तिगण चिरकाल से नरक में निपतित होंता भी जब उनके कुल में पुत्र

तुंनरकांबुधिम् ॥८॥ श्वपाकमिवनेचंतेलोकाविप्रमवैष्णवम् ॥ वैष्णवोवर्णबाह्योपिपुनाति-भुवनत्रयम् ॥ ९ ॥ नरकेपिचिरंमग्नाः पूर्वजायेकुलद्वये ॥ तदैवयांतितेस्वर्गंयदार्चंतिसुतोहरिम् ॥ १० ॥ विष्णुभक्तस्ययेदासावैष्णवान्नभुजश्चये ॥ तेपिक्रतुभुजांश्रेष्ठगतिंयांतिनराः किल ॥ ११ ॥ अर्जयेद्वैष्णवस्यान्नंप्रयत्नेनविचक्षणः ॥ सर्वपापविशुद्ध्यर्थंतदभावेजलंपिबेत् ॥ १२ ॥ गोविंदेतिजपन्मंत्रंकुत्रचिन्म्रियतेयदि ॥ सनरोनयमंपश्येन्नचप्रेतामहे

विष्णुभगवान् का पूजन करता है तभी वे लोग स्वर्ग को चले जाते हैं ॥ १० ॥ जो मनुष्य वैष्णवों के दास हैं और जो वैष्णवों के अन्नका भोजन करते हैं, उन पुरुषोंको भी अवश्य ही देवताओं की उत्तम गतिका लाभ होता है ॥११॥ मनुष्य यदि अपने समस्त पापों का संशोधन करना चाहे तो उसको चाहिये कि—वैष्णवही के अन्नकी याचना करै और यदि उसका अन्न न मिल सके तो केवल जलही पीकर रह जाय ॥ १२ ॥ जो मनुष्य "गोविन्दाय नमोनमः"

इस मन्त्रका जप करता हुआ कहीं अपने प्राणपरित्याग करता है। उसे यमराजके दर्शन नहीं होते, और न हमही उसका अवलोकन कर सकते हैं॥ १३॥ जो मनुष्य अंगन्यास, ऋषि, छन्द और देवता सहित "ॐ नमोभगवते वासुदेवाय" इस समग्र द्वादशाक्षर मन्त्रका जप करते हैं॥ १४॥ अथवा जो नरोत्तम व्यक्तिगण समस्त मन्त्रोंके अधीश्वर स्वरूप "ॐ नमोनारायणाय" इस अष्टाक्षर मन्त्रका जप करते हैं, वे स्वयं वैष्णव होजाते हैं, अतएव उनके

वयम् ॥१३॥ सांगंसमग्रंसन्यासंसऋषिच्छंददैवतम् ॥ तद्दीक्षाविधिसंपन्नंसन्मंत्रंद्वादशाक्षरम् ॥ १४॥ अष्टाक्षरंचमंत्रेशंयेजपंतिनरोत्तमाः ॥ तान्दृष्ट्वाब्रह्महाशुद्धस्तेजातावैष्णवाः स्वयम् ॥१५॥ शंखिनश्चक्रिणोभूत्वाब्रह्मायुर्वनमालिनः ॥ वसंतिवैष्णवेलोकेविष्णुरूपेण तेनराः ॥१६॥ हृदिसूर्येजलेवाथप्रतिमास्थंडिलेषुच ॥ समभ्यर्च्यहरिंयांतिनरास्तेवैष्णवंपदम् ॥ १७॥ अथवासर्वदापूज्योवासुदेवोमुमुक्षुभिः ॥ शालिग्रामशिलाचक्रेचक्रेकीटविनि

दर्शन करनेसे ब्रह्मघात करनेवालोंकी भी शुद्धि हो जाती है॥ १५॥ और वे लोग शंख चक्र धारणकर वनमालासे सुसज्जित होके विष्णुरूपही से विष्णुलोकमें ब्रह्माजीकी आयुपर्य्यन्त निवास करते हैं॥ १६॥ हृदय, सूर्य्य, जल, प्रतिमा अथवा स्थण्डिलमें जो मनुष्य नारायणकी पूजा करते हैं, उन्हें भी वैष्णवपदकी प्राप्ति होती है॥ १७॥ अथवा मोक्षकी अभिलाषा करने वाले प्राणियोंको शालिग्रामशिलामें वा गोमती चक्रमें श्रीविष्णुभगवान्‌की पूजा

अवश्यही करनी चाहिये ॥ १८ ॥ क्योंकि वह श्रीविष्णुभगवान्‌का निवासस्थान सम्पूर्ण पापोंका प्रदान करनेवाला है अथच वह सबही को मुक्ति भी देता है ॥ १९ ॥ जो व्यक्ति शालिग्रामशिलामें विष्णुभगवान्‌की पूजा करते हैं मानों वे लोग प्रतिदिन सहस्रों राजसूययज्ञ अनुष्ठान करते हैं ॥ २० ॥ ज्ञानद्वारा जानलेनेके योग्य अविनाशी परब्रह्म

मिते ॥१८॥ अधिष्ठानंहितद्विष्णोःसर्वपापप्रणाशनम् ॥ सर्वपुण्यप्रदंवैश्यसर्वेषामपिमुक्तिदम् ॥ १९ ॥ यःपूजयेद्धरिंचक्रेशालिग्रामशिलोद्भवे ॥ राजसूयसहस्रेणतेनेष्टंप्रतिवासरम् ॥ २० ॥ यदामनंतिवेदांतंब्रह्मनिर्वाणमच्युतम् ॥ तत्प्रसादोभवेन्नृणांशालिग्रामशिलार्चनात् ॥२१॥ महत्काष्ठस्थितोवह्निर्यथास्थानेप्रकाशते ॥ तथातथाहरिर्व्यापीशालिग्रामेप्रकाशते ॥२२॥ अपिपापसमाचारानकर्मण्यधिकारिणः ॥ शालिग्रामार्चकावैश्यनवैयांतियमा-

को जाननेपर जो पुण्यफल प्राप्त होता है, शालिग्रामशिलाका पूजन करने से भी उसी फलकी प्राप्ति हो जाती है ॥२१॥ जैसे काष्ठमें अग्निव्याप्त है परन्तु किसी स्थान में उसका प्रादुर्भाव हो जाता है ऐसेही यद्यपि भगवान सर्वव्यापक हैं तथापि शालिग्रामशिलामें उनका प्रकाश प्रगट होता है ॥ २२ ॥ जिन्होंने अनेक पापोंका आचरण किया है, जिनको शुभकर्मों का अनुष्ठान करनेका अधिकार नहीं है ऐसे व्यक्तिभी यदि शालिग्राम शिलाकी अर्चना करें तो हे वैश्य !

मा.मा

६१

उन्हें यमलोक में आना नहीं होता ॥ २३ ॥ श्रीविष्णु भगवान् वैकुण्ठलोक से लक्ष्मीजी के साथ रमण करने से भी ऐसे प्रमुदित नहीं होते, जैसे शालिग्रामशिला और गोमती चक्र में रमण करने से होते हैं ॥ २४ ॥ जिस मनुष्य ने शालिग्राम में भगवान् का पूजन करलिया, उसने मानों अग्निहोत्र का आचरण और सागर पर्य्यन्त भूमिका दान कर

लयम् ॥ २३ ॥ नतथारमतेलक्ष्म्यांनतथा स्वपुरेहरिः ॥ शालिग्रामशिलाचक्रेयथासरमते सदा ॥ २४ ॥ अग्निहोत्रंहुतंतेनदत्तापृथ्वीससागरा ॥ येनार्चितोहरिश्चक्रेशालिग्रामसमुद्भवे ॥२५॥ सकृत्करोतिमनुजः शालिग्रामशिलार्चनम् ॥ पापानिविलयंयांतितमः सूर्योदयेयथा ॥२६॥ शिलाद्वादशभोवैश्यशालिग्रामसमुद्भवाः ॥ विधिवत्पूजितायेनतस्यपुण्यंवदामिते ॥२७॥ कोटिद्वादशलिंगैस्तुपूजितैः स्वर्णपंकजैः ॥ यच्चद्वादशकल्पेषुदिनेनैकेनत

दिया ॥ २५ ॥ जो मनुष्य एकबार भी शालीग्रामशिला की पूजा करता है, उसके सब पाप इस प्रकार नष्ट होजाते हैं, जैसे सूर्योदय होनेपर अन्धकार का नाश हो जाता है ॥ २६ ॥ हे वैश्य ! शालिग्राम की बारह शिलाओं का जिस व्यक्तिने पूजन करलिया हो अब हम उसके पुण्यको तुम्हारे प्रति वर्णन करते हैं, तुम श्रवण करो ॥ २७ ॥ सुवर्ण-निर्मित कमलों के द्वारा बारह कल्पपर्य्यन्त द्वादशलिङ्ग की पूजा करने से जो फल प्राप्त होता है, वह फल बारह

मा.टी

अ. १

६१

शालिग्रामशिलाओं का पूजन करने से एक दिन में मिलजाता है ॥ २८ ॥ और जो व्यक्ति भाव पूर्वक शालिग्राम की शिलाओंकी अर्चना करता है, वह वैकुण्ठधाममें निवास करने के अनन्तर इसलोक में चक्रवर्ती राजा होता है ॥ २९ ॥ कामी, क्रोधी, अथवा लोभी पुरुष भी यदि शालिग्रामशिलाका पूजन करे तो उसे भी हरिलोककी प्राप्ति होती है ॥३०॥

द्भवेत् ॥ २८ ॥ यः पुनः पूजयेद्भक्त्याशालिग्रामशिलाशतम् ॥ उषित्वासहरेर्लोकंचक्रवर्ती हजायते ॥ २९ ॥ कामक्रोधैश्चलोभैश्चव्याप्तोयश्चनरोधमः ॥ सोपियातिहरेर्लोकंशालिग्रामशिलार्चनात् ॥ ३० ॥ यः पूजयतिगोविंदंशालिग्रामे सदानरः ॥ आभूतसंप्लवंयावन्नैवप्रच्यवतेहिसः ॥ ३१ ॥ विनातीर्थैर्विनादानैर्विनायज्ञैर्विनामतिम् ॥ मुक्तिंयांतिनरावैश्यशालिग्रामशिलार्चनात् ॥ ३२ ॥ नरकंगर्भवासंचतिर्यक्त्वंचकुयोनिषु ॥ नयातिवैश्यपापिष्ठः

जो मनुष्य शालिग्रामशिलामें गोविन्दभगवान् की पूजा करता है, प्रलयपर्य्यन्त उसे अधोगतिकी प्राप्ति नहीं होती ॥३१॥ जो नरोत्तम व्यक्ति शालिग्रामशिला की पूजा करते हैं, वे चाहें तीर्थयात्रा भी न करैं, और चाहे वे दान अथच यज्ञानुष्ठानभी न करैं एवं उन्हें चाहें इस बातका ज्ञानभी नहो तथापि उन्हें स्वर्ग की प्राप्ति होती है ॥ ३२ ॥ शालिग्राम शिला में श्रीविष्णु भगवान् की पूजा करनेवाले पापी मनुष्य का भी न तो नरक में निवास ही होता है, और न कीट,

पतंग आदिकी किंवा कुत्सित योनिहीमें जन्म हो जाता है ॥ ३३ ॥ दीक्षाविधि और मन्त्रका जाननेवाला जो मनुष्य बलिपूजन करता है, उसको वैष्णव धामकी प्राप्ति होती है हमारा यह कथन बिल्कुल सत्य है ॥ ३४ ॥ जो पुरुष शालिग्रामशिलाके जलसे अभिषेक करता है, मानों वह सब तीर्थों में स्नान करता और सब यज्ञोंमें दीक्षित होता

शालिग्रामाच्युतार्चकः ॥३३॥ दीक्षाविधानमंत्रज्ञश्चक्रेयोबलिमाहरेत् ॥ सयातिवैष्णवंधा-
मंसत्यंसत्यंमयोदितम् ॥३४॥ सस्नातःसर्वतीर्थेषुसर्वयज्ञेषु दीक्षितः ॥ शालिग्रामशिलातोयैर्यो
भिषेकसमाचरेत् ३५॥ गंगागोदावरीरेवानद्योमुक्तिप्रदास्तुया ॥ निवसंतिसतीर्थास्ताःशा-
लिग्रामशिलाजले ॥३६॥ नैवेद्यैर्विविधैःपुष्पैर्धूपैर्दीपैश्चचंदनैः ॥ स्तोत्रवादित्रगीताद्यैःशा-
लिग्रामशिलार्चनम् ॥३७॥ कुरुते मानवोयस्तुकलौ भक्तिपरायणः ॥ कल्पकोटिसहस्राणिर
मतेसन्निधौहरेः ॥३८॥ लिंगस्तुकोटिभिर्दृष्टैर्यत्फलंपूजितैस्तुतैः ॥ शालिग्रामशिलायां तु

है ॥ ३५ ॥ गोदावरी, गंगा और रेवा आदि जितनी मोक्षदायिनी नदियें हैं, वे सब तीर्थों सहित शालिग्रामशिलाके जल में निवास करती हैं ॥ ३६ ॥ जा मनुष्य कलिकालमें भक्तिभावपूर्वक नैवेद्य (मिष्ठान्न), विविधभाँतिके पुष्पों, धूप दीप, चन्दन, स्तोत्रपाठ, वाद्य, एवं गान आदिके द्वारा शालिग्रामशिला का पूजन करते हैं, वे सहस्रों करोड़ कल्पपर्य्यन्त भगवान् के निकट क्रीडा करते हैं ॥ ३७ ॥ ३८ ॥ करोड़ों शिवलिंगोंके दर्शन, उनकी पूजा अथवा

स्तुति से जिस फलकी प्राप्ति होती है, शालिग्राम की एकही शिलाका पूजन करनेसे उस फलका लाभ होजाता है ॥३९॥ जो व्यक्ति शालिग्रामशिलाजनित लिंगमें एकबार भी अर्चना करते हैं, वे चाहें अध्यात्मज्ञानरहित हों तौ भी उनकी मुक्ति हो जाती ॥ ४० ॥ जहाँ शालिग्रामशिलारूपसे भगवान् विराजमान रहते हैं, वहाँही सम्पूर्ण यक्ष, देवता,

एकायामपितत्फलम् ॥३९॥ सकृदभ्यर्चनाल्लिंगेशालिग्रामशिलोद्भवे ॥ मुक्तिंप्रयांतिमनुजा-
नूनंसांख्येनवर्जिताः ॥ ४० ॥ शालिग्रामशिलारूपीयत्रतिष्ठतिकेशवः ॥ तत्रयक्षाःसुरासि-
द्धाभुवनानिचतुर्दश ॥ ४१ ॥ शालिग्रामशिलाग्रेतुयः श्राद्धंकुरुतेनरः ॥ पितरस्तस्यतिष्ठं-
तितृप्ताःकल्पशतंदिवि॥४२॥ येपिबतिनरानित्यंशालिग्रामशिलाजलम्॥ पञ्चगव्यसहस्रैस्तु-
प्राशितैः किंप्रयोजनम् ॥ ४३ ॥ शालिग्रामशिलायत्रतत्तीर्थंयोजनत्रयम् ॥ तत्रदानंचहोम
श्चसर्वंकोटिगुणंभवेत् ॥ ४४ ॥ शालिग्रामशिलातोयंचक्रांकितशिलाजलैः ॥ मिश्रितंपिब-

सिद्ध और चौदह भुवन निवास करते हैं ॥ ४१ ॥ जो पुरुष शालिग्रामजीकी शिलाके अगाड़ी श्राद्ध करता है, उसके पितर तृप्त होकर सौ कल्पपर्य्यन्त स्वर्गलोकमें निवास करते हैं ॥ ४२ ॥ अथच जो मनुष्य शालिग्रामशिलाका जल-पान करते हैं, उन्हें सहस्रोंवार पंचगव्य प्राशन करने से क्या प्रयोजन है अर्थात् सहस्रों पंचगव्यका आचमन करनेसे जो पुण्य होता है वही पुण्य शालिग्राम शिलाका जलपान करने से भी होता है ॥ ४३ ॥ जिस स्थान में शालिग्राम-

शिखा स्थित रहती है, तीन कोश पर्य्यन्त वह स्थान तीर्थ के समान समझा जाता है, वहाँ दान अथवा होम जो कुछ भी किया जाय सब करोड़ गुणा अधिक पुण्यदान करता है ॥ ४४ ॥ शालिग्रामशिला का जल एवं गोमतीचक्र का जल इन दोनों को मिलाकर जो व्यक्ति पान करता अथवा शिर के ऊपर धारण करता है ॥ ४५ ॥ उसका देह निःसन्देह चक्रांकित हो जाता है, और वह चिह्न गुप्त रहता है, सुतराम् धर्मराज के अतिरिक्त उसके दर्शन अन्य

तेयस्तुदेहेशिरसिधारयेत् ॥ ४५ ॥ तस्यचक्रांकितोदेहोभवेन्नास्त्यत्रसंशयः ॥ गुप्तंनपश्यते-कोऽपिलोकेसूर्यसुतंविना ॥ ४६ ॥ अतोऽन्यवारयद्दूतान्वैष्णवानांगृहोत्तमे ॥ भीतोवैष्णवभ-क्तानांपादोदकनिषेवणात् ॥ ४७ ॥ त्रिरात्रफलदोमाघोयाःकाश्चिदसमुद्रगाः ॥ समुद्रगा-स्तुपक्षस्यमासस्यसरितांपतिः ॥४८॥ षण्मासफलदागोदावत्सरस्यतुजाह्नवी ॥ पादोदकंभ-गवतोद्वादशाब्दफलप्रदम् ॥४९॥ कोटितीर्थसहस्रैस्तुसेवितैःकिंप्रयोजनम् ॥ तोयंयदिभवेत्पु-

किसीको नहीं होते ॥ ४६ ॥ यमराज हरिभक्तों के चरणोदक से भयभीत रहते हैं, अतएव उन्होंने वैष्णव भक्तों के घर जाने के लिये अपने दूतों को निषेध कर दिया है ॥ ४७ ॥ जो नदियें समुद्रगामिनी नहीं हैं माघमास में उसमें स्नान करने से त्रिरात्र फलकी प्राप्ति होती है, समुद्रगामिनी नदियों में स्नान करने से एक पक्ष और समुद्र ही में स्नान करने से एक मास के फलका लाभ होता है ॥ ४८ ॥ गोदावरी में स्नान करने से छः मास, और भागीरथी गंगामें स्नान

करने से एक वर्ष के फलकी लब्धि होती है, अथच भगवान् का चरणोदक बारह वर्ष माघस्नान के फलको देता है ॥ ४६ ॥ (यदि माघमास में स्नान करने के लिये) शालिग्राम शिलाका पवित्र जल प्राप्त हो जाय तो सहस्रों एवं करोड़ों तीर्थों की सेवा करने से भी कोई प्रयोजन नहीं है ॥ ५० ॥ जो मनुष्य माता के दुग्धही में मिलाकर एक बिन्दुमात्र भी शालिग्राम शिलाका जलपान करता है, उसका मोक्ष हो जाता है ॥ ५१ ॥ शालिग्राम शिलाके निकट

ण्यंशालिग्रामसमुद्भवम् ॥ ५० ॥ शालिग्रामशिलातोयंयःपिवेद्बिंदुमात्रकम् ॥ मातुस्तस्य-रसेनैवसभवेन्मुक्तिभाग्नरः ॥ ५१ ॥ शालिग्रामसमीपेतुक्रोशमात्रंसमंततः ॥ कीटकोपिमृतो-यातिवैकुंठभवनंहढम् ॥५२॥ शालिग्रामशिलाचक्रंयोदद्याद्दानमुत्तमम् ॥ भूचक्रंतेनदत्तंस्या-त्सशैलवनकाननम् ॥५३॥ शालिग्रामशिलायास्तुमौल्यंचैवकरोतियः ॥ विक्रेताचानुमंता-चयःपरीक्षानुमोदकः ॥५४॥ तेसर्वेनरकंयांतियावदाभूतसंप्लवम् ॥ अतस्तद्वर्जयेद्देश्य चक्रस्य-

यदि एक कोशपर्यन्त कोई कीट (कीड़ा) भी मृतक हो जाय तो वहभी अवश्यही वैकुण्ठलोक को जाता है ॥ ५२ ॥ जो मनुष्य शालिग्राम शिला का दान करता है उसे पर्वतवन और गहनवन सहित भूमण्डल के दान करने का फल उपलब्ध होता है ॥ ५३ ॥ जो व्यक्ति शालिग्राम शिला का मूल्य लगाता, जो बेंचता अथवा विक्रय का अनुमोदन करता है, किंवा जो उसकी परीक्षा अनुमोदन करता है ॥ ५४ ॥ वे सब प्रलय पर्यन्त नरक में निवास करते हैं,

अतएव हे वैश्य! चक्रका क्रयविक्रय न करना चाहिये॥ ५५ ॥ हे वैश्य! विशेष कहने से क्या है? हे वैश्य! पापों-से डरनेवाले मनुष्यको श्रीवासुदेव भगवान्‌का स्मरण करना चाहिये, क्योंकि हरिस्मरण समस्त पापोंका हरनेवाला है ॥ ५६ ॥ इन्द्रियदमनपूर्वक वनमें घोर तप करनेसे जिस फलकी प्राप्ति होती है, हरिस्मरण करनेसे उसी फलका लाभ होता है ॥ ५७ ॥ अज्ञानसे वशीभूत हो बहुत प्रकारके पापका आचरण करनेवालाभी मनुष्य यदि पापोंका

क्रयविक्रयम् ॥५५॥ बहुनोक्तेनकिंवैश्यकर्तव्यंपापभिरुणा ॥ स्मरणंवासुदेवस्यसर्वपापहरं-सदा ॥५६॥ तपस्तप्त्वानरोघोरमरण्येनियतेन्द्रियः ॥ यत्फलंसमवाप्नोतितत्स्मृत्वागरुध्वजम् ॥५७॥ कृत्वातुबहुधापापंनरोमोहसमन्वितः ॥ नयातिनरकंनत्वासर्वपापहरंहरिम् ॥ ५८ ॥ पृथिव्यांयानितीर्थानिपुण्यान्यायतनानिच ॥ तानिसर्वाण्यवाप्नोतिविष्णोर्नामानुकीर्तनात्५९ देवंशार्ङ्गधरंविष्णुंयेप्रपन्नाःपरायणम् ॥ नतेषांयमसालोक्यंनतेवानरकौकसः॥६०॥ वैष्णवः

अपहरण करनेवाले नारायणको प्रणाम करे तो उसे नरक में जाना नहीं होता ॥ ५८ ॥ पृथ्वीके ऊपर जितने तीर्थ अथवा पवित्र स्थान हैं, श्रीविष्णुभगवान् के नामोंका कीर्तन करनेसे उसे सब (फल) की प्राप्ति हो जाती है ॥ ५९ ॥ शार्ङ्गपाणि श्रीशरणागतवत्सल विष्णुभगवान्‌की शरणमें जो व्यक्ति जाते हैं, उन्हें न तो यमराजके निकटही जाना होता है और न नरकमें निवास ही करना पड़ता है ॥ ६० ॥ हे वैश्य! जो वैष्णव पुरुष महादेवजी

की निन्दा करता है, वह विष्णुलोक को नहीं जाता किन्तु अवश्य ही नरकगामी होता है ॥ ६१ ॥ जो मनुष्य प्रसंगवशात् भी चाहें किसी एक ही एकादशी का व्रत धारण करता है, उसको यमयातना भोगनी नहीं होती, हमने यमराजही से ऐसा सुना है कि ॥ ६२ ॥ यह एकादशी का दिन जैसा पापों का नाश करनेवाला है, त्रिलोकों में ऐसा पवित्र करनेवाला और कोई भी नहीं है ॥ ६३ ॥ हे वैश्यवर ! जब तक प्राणी विष्णु भगवान् के शुभ दिन एका-

पुरुषोवैश्यशिवनिंदांकरोतियः ॥ नगच्छेद्वैष्णवंलोकंसयातिनरकंध्रुवम् ॥६१॥ उपोष्यैका-
दशीमेकांप्रसंगेनापिमानवः ॥ नयातियातनांयाम्यामितिनोयमतः श्रुतम् ॥६२॥ नेदृशं-
पावनंकिंचित्त्रिषुलोकेषुविद्यते ॥ यादृशंपद्मनाभस्यदिनंपातकनाशनम् ॥६३॥ तावत्पापा-
निदेहेस्मिन्वसंतीहविशांवर ॥ यावन्नोपवसेज्जंतुःपद्मनाभदिनंशुभम् ॥६४॥ अश्वमेधसहस्रा-
णिराजसूयशतानिच ॥ एकादश्युपवासस्यकलांनार्हंतिषोडशीम् ॥ ६५ ॥ एकादशेंद्रियैः

दशीका व्रत धारण नहीं करता है, तभीतक उसके देहमें पापोंका निवास रहता है ॥ ६४ ॥ सहस्रों अश्वमेध और सैकड़ों राजसूय यज्ञ एकादशी व्रतकी एक सोलहवीं कलाकीभी बराबरी नहीं कर सकते हैं ॥ ६५ ॥ हे वैश्य ! ग्यारहों इन्द्रियोंके द्वारा किये हुए मनुष्योंके सब पाप एकादशीका व्रत करनेसे विनाशको प्राप्त हो जाते हैं ॥ ६६ ॥ एकादशीके व्रत के समान लोकमें और कुछभी पुण्य (पवित्र) नहीं है, जो किसी निमित्तसे भी एकादशीके व्रतका

आचरण करते हैं, उन्हेंभी यमयातना नहीं भोगनी पड़ती ॥ ६७ ॥ यह एकादशी सम्पूर्ण भोगोंको देनेवाली, शरीर को निरोग रखने वाली उत्तम स्त्री और दीर्घजीवी पुत्रको भी देनेवाली है ॥ ६८ ॥ हे वैश्य! क्या गंगा, क्या काशी, क्या गया, क्या पुष्कर, क्या कुरुक्षेत्र, क्या रेवा और क्या वेणिका ॥ ६९ ॥ क्या यमुना, क्या चन्द्रभागा,

पापंयत्कृतंवैश्यमानवैः ॥ एकादश्युपवासेनतत्सर्वंविलयंव्रजेत् ॥६६ । एकादशीसमंकिंचि-त्पुण्यंलोकेनविद्यते ॥ व्याजेनापिकृतायैस्तुतेपियांतिनभास्करीम् ॥६७॥ सर्वभोगप्रदाह्ये-षाशरीरारोग्यदायिनी ॥ सुकलत्रप्रदाचैषाजीवपुत्र प्रदायिनी ६८॥ नगंगानगयावैश्यन-काशीनचपुष्करम् ॥ नचापिकौरवंक्षेत्रंनरेवानचवेणिका ॥ ६९ ॥ यमुनाचंद्रभागाचदिने-नसमाहरेः ॥ अनायासेनयेनात्रप्राप्यतेवैष्णवंपदम् ॥७०॥ रात्रौजागरणंकृत्वासमुपोष्यहरे-दिनम् ॥ दशवैपैतृकेपक्षेमातृकेदशपूर्वजान् ॥७१॥ प्रियायादशवैश्यैतान्समुद्धरतिनिश्चि-

इनमेंसे कोईभी एकादशीके समान पवित्र नहीं है, कारण कि—इसके द्वारा अनायास (विनापरिश्रम) ही विष्णुलोक की प्राप्ति होती है ॥ ७० ॥ जो मनुष्य एकादशीके दिन उपवास धारण करके रात्रिमें जागरण करता है वह पितृ-पक्षके दश ॥ ७१ ॥ और पत्नीके पक्षवाले भी दश पुरुषाओंका अवश्यही उद्धार करता है, और वे सब पुरुष, सम-

स्त संगसे मुक्त होकर गरुड़जीके ऊपर आरूढ हो ॥ ७२ ॥ माला और पितांबर धारण कर नारायणके लोकमें जाते हैं, हे वैश्यवर ! बाल्यभाव, युवावस्था, अथवा वृद्धवयमें चाहे जब एकादशीका व्रत किया जाय ॥ ७३ ॥ परन्तु इसका उपवास करके महापापीभी दुर्गतिको प्राप्त नहीं होता, तीन रात्रिपर्यन्त व्रतका आचरण और तीर्थ में स्नान

तम् ॥ तएवसंगनिर्मुक्तानागारिकृतकेतनाः॥७२॥स्रग्विणःपीतवस्त्राहिप्रयातिहरिमंदिरम् ॥ बालत्वेयौवनेवापिवृद्धत्वेवाविशांवर॥७३॥ उपोष्यैकदशींनूनंनैतिपापोपिदुर्गतिम्॥उपोष्ये-हस्त्रिरात्राणिकृत्वातीर्थेचमज्जनम् ॥ ७४ ॥ दत्वाहेमतिलान्गांश्चस्वर्गंतियान्तिमानवाः॥ती-र्थेनस्नांतियेवैश्यनदत्तंकांचनंतुयैः ॥७५॥ नैवतप्तंतपःकिंचित्तेस्युःसर्वत्रदुःखिता ॥ संक्षि-प्यवक्ष्मितेधर्मं नरकस्यनिवारकम् ॥७६॥ अद्रोहःसर्वभूतेषुवाङ्मनःकायकर्मभिः॥इन्द्रिया-णांनिरोधश्चदानंचहरिसेवनम् ॥ ७७ ॥ वर्णाश्रमाणांधर्माणांपालनंविधितःसदा ॥ स्वर्गा

करके ॥ ७४ ॥ सुवर्ण तिल और गोदान करने से मनुष्योंको स्वर्गकी गतिका लाभ होता है । हे वैश्य ! जो प्राणी तीर्थमें स्नान नहीं करते, जो सुवर्णका दान नहीं करते ॥ ७५ ॥ और जिन्होंने तपकाभी कुछ आचरण नहीं किया है, वे सर्वत्रही दुःखित होते हैं, नरकसे बचानेवाले धर्मको मैं संक्षेपरीति से तुम्हारे प्रति वर्णन करता हूँ ॥ ७६ ॥ वाणी, मन और शरीरके द्वारा किसी प्राणी के साथ द्रोह न करै, इन्द्रियोंका निग्रह रक्खै, दान और हरिकी सेवा

करे ॥ ७७ ॥ चारों वर्ण और चारों आश्रम इनके धर्मोंका सदैव विधिपूर्वक पालन करता रहै, और हे वैश्य! स्वर्गप्राप्तिकी इच्छावाले प्राणीको तप और दानका आचरण सर्वदा करना कर्त्तव्य है ॥ ७८ ॥ जो व्यक्ति अपने हितकी इच्छा करता हो उसे यथाशक्ति उपानह, छत्र, वस्त्र, आदि अन्न, मूल फल अथवा जल इनका दान अवश्य करना चाहिये ॥ ७९ ॥ दरिद्री मनुष्य तो ऐसा नहीं कर सकते किन्तु-सामर्थ्यवालों को चाहिये कि, बिना दान

र्थीसर्वदानैश्यतपोदानंचकीर्तयेत् ॥७८॥ यथाशक्तिसमंदद्यादात्मनोहितमिच्छता ॥ उपान-च्छत्रवस्त्रादिह्यन्नंमूलफलंजलम् ॥७९॥ अबन्ध्यंदिवसंकुर्यान्नदरिद्रैर्हिमानवैः॥ इहलोकेपरेचै-वनादत्तमुपतिष्ठति ॥८०॥ इतिमत्वासदाचैवदातव्यंतुस्वशक्तितः ॥ दातारोनैवपश्यंतिता-सांहियमयातनाम्॥८१॥दीर्घायुषोधनाढयास्तेभवंतीहपुनःपुनः॥ किमत्रबहुनोक्तेनयांत्यधर्मे-णदुर्गतिम् ॥ ८२ ॥ आरोहंतिदिवंधर्मैर्नराःसर्वत्रसर्वदा ॥ तेनबालत्वमारभ्यकर्तव्योधर्म

किये दिनको खाली न जानेदे, कारणकि-इसलोक अथवा परलोक में बिना किये कुछभी प्राप्त नहीं होता ॥ ८० ॥ ऐसा मानकर अपनी शक्तिके अनुसार सदैव दान करना कर्त्तव्य है, क्योंकि दान करनेवालोंको यमयातना अवलो-कन करनी नहीं होता ॥ ८१ ॥ दानी लोग बारंबार दीर्घायु और धनाढ्य होते हैं, विशेष कहने से क्या होता, है, अधर्म करनेवालोंको दुर्गति की प्राप्त होती है ॥ ८२ ॥ धर्महीके आधार से मनुष्य सदा स्वर्गारोहण करते हैं,

अतएव बचपनसेही धर्मका संग्रह करना चाहिये ॥ ८३ ॥ यह सब वृत्तान्त हमने तुम्हारेप्रति वर्णन किया, अब और क्या श्रवण करनेकी तुम्हारी इच्छा है ॥ ८४ ॥ इति श्रीमाघ मासमाहात्म्य भाषाटीकायां नवमोऽध्यायः ॥ ९ ॥

संग्रहः ॥ ८३ ॥ इतितेकथितंसर्वंकिमन्यच्छ्रोतुमिच्छसि ॥ ८४ ॥ इति श्रीपद्मपुराणे-उत्तर खंडेमाघमाहात्म्ये वसिष्ठदिलीपसंवादे विकुंडलदूतसंवादे शालिग्रामशिलामहिमा व-र्णनंनामनवमोऽध्यायः ॥ ९ ॥

विकुंडल उवाच ॥ श्रुत्वातववचःसौम्यप्रसन्नंममभानसम् ॥ गंगेवतापहंसद्यःपापहागोः सतांयतः ॥१॥ उपकर्तुंप्रियंवक्तुंगुणोनैसर्गिकः सताम् ॥ शीतांशुःक्रियतेयेनशीतलोमृत मंडलः ॥ २ ॥ देवदूततत्तोब्रूहिकारुण्यान्ममपृच्छतः ॥ नरकान्निर्गतिः सद्योभ्रातुर्मेजायते

विकुण्डल बोला—हे सौम्य ! तुम्हारे वचन सुनकर मेरा मन अति प्रसन्न हो गया, आपके वाक्य गंगाजीके समान ताप हरनेवाले हैं, और सज्जनोंका वाक्य (वार्तालाप) पापोंका नाश करता है ॥ १ ॥ सज्जनोंका यह स्वाभा-विक गुण है कि वे प्रियवाक्य बोलते और दूसरोंका उपकार करते हैं, अमृतपूर्ण चन्द्रमा वोही है जो सबको शीतल करता है ॥ २ ॥ अब हे देवदूत ! मैं पूछता हूँ अतएव मेरे ऊपर करुणा करके यह बताओ कि मेरे भ्राताकानरकसे

बहुत शीघ्र उद्धार कैसे हो सकता है ॥ ३ ॥ दत्तात्रेयजी बोले—उसकी मित्रतारूप रज्जु के बन्धनसे बँधकर जब देवदूतने वे वाक्य सुने तब ज्ञान दृष्टिके द्वारा क्षणमात्र ध्यान करके यों बोला ॥ ४ ॥ देवदूतने कहा—हे वैश्य ! तुमने अपने व्यतीत हुए आठवें जन्ममें जो पुण्य संचय किया है, यदि तुम अपने भ्राता को स्वर्ग में भेजना चाहते हो तो वह उसे प्रदान कर दो ॥ ५ ॥ विकुण्डल बोला—हे दूत ! उस जन्म में कौन था, और वह मेरा संचित पुण्य क्या है, और

कथम् ॥ ३ ॥ दत्तात्रेयउवाच ॥ इतितस्यवचः श्रुत्वादेवदूतोजमादह। ज्ञानदृष्ट्याक्षणंध्या-
त्वातन्मैत्रीरज्जुबंधनः ॥ ४ ॥ दूतउवाच ॥ गतेवैश्याष्टमेपुण्यंत्वयाजन्मनिसंचितम् ॥ तद्भ्रा-
त्रेदीयतांशीघ्रंतस्यस्वर्गंयदीच्छसि ॥ ५ ॥ विकुंडलउवाच ॥ किंतत्पुण्यंकथंजातंकिंजन्माहं-
पुराभवम् ॥ तत्सर्वंकथ्यतांदूततच्चदास्यामिसत्वरम् ॥ ६ ॥ दूतउवाच ॥ शृणुवैश्यप्रवक्ष्या-
मितत्पुण्यंचसहेतुकम् ॥ पुरामधुवनेपुण्येमुनिरासीच्चशाकलिः ॥ ७ ॥ तपोध्ययनसंपन्नस्ते-

मुझसे वह किस प्रकार बना, ये सब वृत्तान्त मेरे प्रति वर्णन करो, मैं तत्काल वह पुण्य उसे प्रदान करदूँगा ॥ ६ ॥ दूत बोला—सुनो वैश्य ! हम तुम्हारे पुण्यका हेतु (कारण) सहित वर्णन करते हैं, पहिले पवित्र मधुवन में एक शाकलि ऋषिथे ॥ ७ ॥ वे तपस्वी और वेदाध्यायन करनेवाले थे, उनका तेज ब्रह्माजी के समान था, रेवतीनामकी उनकी स्त्रीसे नवग्रहके समान नव पुत्र उत्पन्न हुए ॥ ८ ॥ ध्रुव, शशी, बुध, तार और ज्योतिष्मान् ये पाँचों अग्नि होत्री

थे, और गृहस्थधर्म में रमण करते थे ॥ ९ ॥ और निर्मोह, जितमाय, ध्यानकाम, तथा गुणाति ये चारों ऋषिकुमार गृहस्थधर्म से विरक्त थे ॥ १० ॥ ये चारोंही संन्यासी थे सुतराम् किसी कर्म करने में भी इनकी रुचि नहीं थी ये सब एकहीं ग्राममें निवास करते और संग तथा परिग्रह रहित थे ॥ ११ ॥ इन्होंने शिखा और यज्ञोपवीत का भी परित्याग

जसाब्रह्मणासमः ॥ जज्ञिरेतस्यरेवत्यांनवपुत्राग्रहाइव ॥ ८ ॥ ध्रुवःशशीबुधस्तारोज्योतिष्मानत्रपंचमः ॥ अग्निहोत्रप्रियाह्येतेगृहधर्मेषुरेमिरे ॥ ९ ॥ निर्मोहोजितमायश्चध्यानकामोगुणातिगः ॥ एतेगृहविमुक्तास्तुचत्वारोद्विजसूनवः ॥ १० ॥ चतुर्थाश्रमसंपन्नाः सर्वकर्मसुनिःस्पृहाः ॥ ग्रामैकवासिनः सर्वेनिःसंगानिष्परिग्रहाः ॥ ११ ॥ निःशिखानोपवीताश्चसमलोष्टाश्मकांचनाः ॥ येनकेनचिदाच्छन्नायेनकेनचिदाशिताः ॥ १२ ॥ सायंगृहास्तथानित्यंब्रह्मध्यानपरायणाः ॥ जितनिद्राजिताहारावातशीतसहिष्णवः ॥ १३ ॥ पश्यंतेविष्णुरूपेण-

करदिया था, इनका मृत्तिका पाषाण और सुवर्ण में समानही ज्ञान था, सुतराम् ये चाहें जिस वस्तु से अपने शरीर का आच्छादन कर लेते, और चाहें, जहाँ बैठ जाते थे ॥ १२ ॥ सन्ध्या के समय अपने घर में आ जाते और नित्यही ब्रह्मका ध्यान करने में तत्पर रहते थे, इन्होंने निद्रा और भोजन को भी नियमबद्ध करलिया तथा ये सब पवन और शीतका भी सहन कर लेते थे ॥ १३ ॥ चराचर संपूर्ण जगत् को विष्णुरूपही देखते थे, अथच मौनधारणपूर्वक

ही ये सब भूमण्डलके ऊपर विचरते थे ॥ १४ ॥ ये योगीजन किंचिन्मात्र क्रियाका आचरण नहीं करते थे, इनका ज्ञान अतिशय दृढ था अतएव इनको किसी विषयमेंभी सन्देह नहीं होता था, एवं च ये लोग सच्चिदानन्द स्वरूप ब्रह्मके विचार (अनुशीलन) करनेमें बड़ेही निपुण थे ॥ १५ ॥ इसप्रकार वे तुम्हारे आठवें जन्ममें स्त्री पुत्रादि

जगत्सर्वंचराचरम् ॥ चरंतिलीलयापृथ्वींतेन्योन्यंमौनमास्थिताः॥१४॥ नकुर्वंतिक्रियांकिंचिदणुमात्रांहियोगिनः ॥ दृढज्ञानाश्चसंदेहाश्चिद्विचारविशारदा ॥ १५ ॥ एवंतेतवविप्रस्य-पूर्वमष्टमजन्मनि ॥ तिष्ठतोमत्स्यदेशेषुपुत्रदारकुटुम्बिनः ॥१६॥ गेहंतावकमाजग्मुर्मध्याह्नेक्षुत्पिपासिताः ॥ वैश्वदेवोत्तरेकालेत्वयादृष्टागृहांगणे ॥१७॥ सगद्गदंसाश्रुनेत्रंसहर्षंचससंभ्रमम् ॥ दंडवत्प्रणिपातेनबहुमानपुरः सरम् ॥ १८ ॥ प्रणम्य चरणौस्पृष्ट्वाकृत्वापाणिपुटांजलिम् ॥ तदाभिनंदिताःसर्वेत्वयासुनृतयागिरा ॥१९॥ अद्यमेसफलंजन्मसफलंजीवितंमम ॥

कुटुम्बी हुए, उस समय मत्स्यदेशमें तुम्हारी स्थिति थी ॥ १६ ॥ मध्याह्नसमयमें क्षुधा और तृषासे व्यथित हो वे तुम्हारे घर आये, और वैश्यदेवसे निवृत्त होनेके अनन्तर घरके आँगनमें तुमने उन्हें देखा ॥ १७ ॥ तब नेत्रोंमें आँसू भर कर आनन्दपूर्वक गद्गद हो संभ्रमसे प्रणाम कर अतिशय आदर सत्कारसहित ॥ १८ ॥ प्रणाम करके और

मा.मा. १०८

उनके चरणोंका स्पर्श करके दोनों हाथ जोड़कर मनोहर वाणी से तुमने उनका सम्मान किया ॥ १९ ॥ आज मेरा जन्म और जीवन सफल है, आज मेरे ऊपर विष्णुभगवान प्रसन्न हुए, और आजही मैं सनाथ हुआ जो आपने मुझे पवित्र किया ॥ २० ॥ मुझे, मेरे घर स्त्री, माता, पिता, गौएँ शास्त्रका श्रवण और धन सबहीको धन्य है ॥ २१ ॥ इसका कारण यह है कि—दैहिक, दैविक और भौतिक तापोंका नाश करनेवाला आपके चरणोंका मुझे दर्शन हुआ,

अद्य विष्णुःप्रसन्नोभूत्सनाथोस्म्यद्यपावितः ॥२०॥ धन्योस्मिमेगृहंधन्यंधन्यामेद्यकुटुंबिनी ॥ ममाद्यपितरौधन्यौधन्यागावः श्रुतंधनम् ॥२१॥ यद्दृष्टौभवतांपादौतापत्रयहरौमया ॥ भव-तांदर्शनंयस्माद्धन्यंसर्वंहरेरिव ॥२२॥ एवंसंपूज्यतेषांतुचरणक्षालनंत्वया ॥ धृतंमूर्ध्निचपा-दोदःश्रद्धयापरयातदा ॥२३॥ यतिपादोदकंवैश्यहंतिपापंपुराकृतम् ॥ सप्तजन्मार्जितंसद्यः श्रद्धयापरयाधृतम् ॥ २४ ॥ गंधपुष्पाक्षतैर्धूपैर्नीराजनपुरःसरम् ॥ संपूज्यसंस्कृतैरन्नैर्भोजि-

क्योंकि आपका दर्शन ईश्वरके दर्शनके समान सौभाग्यशालियोंहीको होता है ॥ २२ ॥ इसप्रकार उनकी पूजा करके तुमने उनके चरण पखारे और बड़ी श्रद्धाके साथ चरणोदकको अपने शिरपर धारण किया ॥ २३ ॥ हे वैश्य ! यदि संन्यासियों का चरणोदक परम श्रद्धा पूर्वक शिरके ऊपर धारण किया जाय तो वह सात जन्म के संचित पापों का नाश कर देता है ॥ २४ ॥ फिर तुमने गन्ध, पुष्प, अक्षत (चावल) धूप और नीराजन आदि से उनकी पूजा

भा.टी. अ.१० १०८

मा.मा करके सुन्दर पक्वान्नका भोजन कराके संन्यासियोंको सन्तुष्ट किया ॥ २५ ॥ उक्त परमहंसों ने तृप्त होकर रात्रिमें तुम्हारे ही घर विश्राम किया, और समस्त ज्योतियोंके भी ज्योतिःस्वरूप परब्रह्म परमेश्वर का ध्यान करते रहे ॥ २६ ॥ हे वैश्य ! उनका अतिथिसत्कार करने से तुम्हें जिस पुण्यकी प्राप्ति हुई, उसे मैं सहस्रों मुख से भी वर्णन नहीं कर- मा.टी.

१०६

तायतयस्त्वया ॥२५॥ तृप्ताः परमहंसास्ते विश्रांतास्मंदिरे निशि ॥ ध्यायंतश्च परं ब्रह्म यज्ज्योतिर्ज्योतिषां वरम्॥२६॥ तेषामातिथ्यजं पुण्यं जातं ते यद्विशां वर। न तद्वक्त्रसहस्रेण वक्तुं शक्तोऽस्म्यहं खलु ॥२७॥ भूतानां प्राणिनः श्रेष्ठाः प्राणिनां बुद्धिजीविनः । बुद्धिमत्सु नराः श्रेष्ठा नरेषु ब्राह्मणाः स्मृताः ॥ २८ ॥ ब्राह्मणेषु च विद्वांसो विद्वत्सु कृतबुद्धयः ॥ कृतबुद्धिषु कर्तारः कर्तृषु ब्रह्मवेदिनः ॥२९॥ अतएव हि पूज्यास्ते यस्माच्छ्रेष्ठा जगत्त्रये ॥ यत्संगात्तु विशां श्रेष्ठ महापात- अ.१०

सक्ता ॥ २७ ॥ सृष्टिमें प्राणी, प्राणियों में बुद्धिमान्, बुद्धिमानोंमें मनुष्य, और मनुष्योंमें ब्राह्मणोंको श्रेष्ठ कहा गया है ॥ २८ ॥ ब्राह्मणों में विद्वान्, विद्वानोंमें कृतबुद्धि उनमें भी क्रिया करनेवाले और क्रिया करनेवालोंमें भी ब्रह्मवादी श्रेष्ठ हैं ॥ २९ ॥ क्योंकि वे तीनों लोकों में श्रेष्ठ हैं अतएव उनकी पूजन करना कर्त्तव्य है। हे वैश्यश्रेष्ठ ! उनकी संगति महापातकों को नाश करने वाली है ॥ ३० ॥ सतोगुण का आश्रय करनेवाले ब्रह्मवादी महात्मा

१० १०६

गृहस्थियों के घर में विश्रान्त होकर जन्म भरके पापोंको क्षणभर में नष्ट कर देते हैं ॥ ३१ ॥ सो पहिले आठवें जन्ममें संचय किये हुए इसी पुण्यको तुम अपने भ्राताके निमित्त प्रदान करदो, तब वह नरक से मुक्त हो जायगा ॥ ३२ ॥ दूतके ऐसे वचन सुन उसने अपने मनमें प्रसन्न हो यह पुण्य अपने भ्राता को दे दिया, और उसका भी

कनाशिनी ॥ ३० ॥ विश्रान्तागृहिणोगेहेसत्त्वस्थाब्रह्मवादिनः ॥ आजन्मसंचितंपापंनाशं-
यातिक्षणेनवै ॥३१॥ इतितेसंचितंपुण्यमष्टमेपूर्वजन्मनि ॥ स्वभ्रात्रेदेहितत्पुण्यंनरकाद्येनमु-
च्यते ॥ ३२ ॥ इतिदूतवचःश्रुत्वाददौपुण्यंससत्वरम् ॥ हृष्टेनचेतसाभ्रात्रेनिरयात्सोऽपि-
निर्गतः ॥३३॥ देवैस्तौपुष्पवर्षेणपूजितौनदिवंगतौ ॥ ताभ्यांचपूजितःसम्यग्मतोदूतोयथा-
गतम्॥३४॥ अखिलजनसुबोधंदेवदूतस्यवाक्यंनिगमवचनतुल्यंवैश्यपुत्रोनिशम्य ॥ स्वकृत-

नरक से उद्धार हो गया ॥ ३३ ॥ पुष्प वृष्टिके द्वारा देवताओं से पूजित होकर वे दोनों भ्राता स्वर्ग को चले गये, एवं वह दूत भी उन दोनोंसे पूजित होकर जैसे आया था वैसेही चला गया ॥ ३४ ॥ सब मनुष्यों के लिये ज्ञानप्रदान करनेवाला वेदवाक्यकी सदृश देवदूत के वाक्यों को सुनकर वैश्यपुत्र ने अपना पुण्य भ्राताको दिया

और उसको तारकर उसके साथही आपभी स्वर्गलोकको चलागया ॥ ३४ ॥ हे राजन् ! इस इतिहास को जो पढ़ेगा

सुकृतदानाद्भ्रातरंतारयित्वासुरपतिवरलोकंतेनसार्धंजगाम॥३५॥इतिहासमिमंराजन्यःपठे-च्छृणुयादपि ॥ सगोसहस्रदानस्यविपापोलभतेफलम् ॥३६॥ इति श्रीपद्मपुराणे उत्तरखंडे-माघमासमाहात्म्येवशिष्ठ दिलीपसंवादेश्रीकुंडलविकुण्डलयोःस्वर्गगमनंनामदशमोऽध्यायः१०

अथवा सुनेगा, वह निष्पाप होकर सहस्र गोदान का फल फल पावेगा ॥ ३६ ॥ इति श्रीमाघमाहात्म्य भाषाटीकायां दशमोऽध्यायः ॥ १० ॥

कार्तवीर्यउवाच ॥ हेतुनाकेनविप्रर्षेमाघस्नानेमहाद्भुतः ॥ प्रभावोवर्ण्यतेनूनंतन्मेकथयसुव्रत ॥१॥ गतपापोयदेकेनद्वितीयेनदिवंगतः ॥ वैश्योऽसौमाघपुण्येनब्रूहिमेतत्कुतूहलम् ॥२॥

कार्तवीर्य बोले—श्रेष्ठव्रत का आचरण करनेवाले हे ब्रह्मर्षि ! इसका क्या कारण है माघस्नान करने का ऐसा क्या अद्भुत प्रभाव है, यह भली प्रकार वर्णन करिये ॥ १ ॥ जो एक माघस्नान करनेसे सब पापों का विनाश हो गया, और द्वितीय माघस्नान से स्वर्ग की प्राप्ति हुई, इस कौतूहलका मेरे प्रति सम्यक् वर्णन करिये ॥२॥

दत्तात्रेयजी बोले हे पुरुषोत्तम ! जल स्वभावही से पवित्र, निर्मल, स्वच्छ, पाण्डुवर्ण, मल और दाहका नाश करने वाला और द्रावक है ॥ ३ ॥ सब भूतों का तारनेवाला पोषण करनेवाला और जीवन स्वरूप है, और जलको सब वेदोंमें नारायणस्वरूप वर्णन किया गया है ॥ ४ ॥ जैसे सब ग्रहोंमें सूर्य और सब नक्षत्रों में चन्द्रमा उत्तम है इसी

दत्तात्रेयउवाच ॥ निसर्गात्सलिलंमेध्यंनिर्मलंशुचिपांडुरम् ॥ मलहंपुरुषव्याघ्रद्रावकंदाहकं-
तथा ॥३॥ तारकंसर्वभूतानांपोषणंजीवनंचयत् ॥ आपोनारायणोदेवःसर्वंवेदेषुपठ्यते॥४॥
ग्रहाणांचयथासूर्योनक्षत्राणांतथाशशी ॥ मासानांचतथामाघःश्रेष्ठःसर्वेषुकर्मसु ॥ ५ ॥ मक-
रस्थेरवौमाघेप्रातःकालेतथाऽमले ॥ गोष्पदेपिजलेस्नानंस्वर्गदंपापिनामपि ॥६॥ योगोयं-
दुर्लभोराजंस्त्रैलोक्येसचराचरे ॥ अस्मिन्यागेत्वशक्तोपिस्नायाद्यदिदिनत्रयम् ॥ ७ ॥ दद्या-

प्रकार संपूर्ण शुभकर्म करने के लिये माघमास सबसे श्रेष्ठ है ॥ ५ ॥ माघके महीनेमें जब सूर्य्य मकर राशिके ऊपर स्थित हों तब प्रभात समय गौके खुर मात्र भी निर्मल जलमें स्नान करनेसे पापियों को स्वर्ग की प्राप्ति होती है ॥ ६ ॥ हे राजन् ! चराचर त्रिलोकी में यह योग बड़ा दुर्लभ है, जो असक्त है वह मनुष्य भी इस योग में केवल तीनही दिन स्नान करले ।७॥ और अशक्त व्यक्तिका दरिद्र दूर करनेकी कामना से यत्किंचित् भी दान करना कर्त्तव्य है,

तीन माघमास में स्नान करने से धनियोंको दीर्घ जीवन लाभ होता है ॥८॥ जब सूर्य मकरराशि के ऊपर उपस्थित होते हैं, तब पाँच सात वा दो हो दिनमें चन्द्रमा के समान पुण्यकालको वृद्धि होती है कारण कि मकरमास अत्यन्त पवित्र और मनुष्योंको पुण्यप्रदान करनेवाला है ॥ ९ ॥ मकरमासको सबही विधियें ऐसी हैं कि—उनमें स्नान,

त्किंचिदशक्तोपिदरिद्राभावशांछया ॥ त्रिस्नानेनापिमाघस्यधनिनोदीर्घजीविनः॥८॥ पंचवा-
सप्तवाद्व्यहं चंद्रवद्वर्धतेफलम् ॥ संप्राप्तेमकरादित्येपुण्येपुण्यप्रदेनृणाम् ॥ ९ ॥ माकर्यस्ति-
थयःसर्वाःस्नानदानादिकर्मणाम् ॥ कर्तारंपापहंतीहह्यक्षयंशाश्वतंपदम् ॥१०॥ तस्मान्माघे-
बहिःस्नायादात्मनोहित काम्यया ॥ अथातःसंप्रवक्ष्यामिमाघस्नानविधिंपरम् ॥ ११ ॥
कर्तव्योनियमःकश्चिद्व्रतरूपीनरोत्तमैः ॥ फलातिशयहेतोर्वैकिंचिद्भोज्यंत्यजेद्बुधः ॥१२॥

दान आदि कर्म करनेवाले व्यक्तियोंके पापोंको विनाश होता है और उन्हें अक्षय मोक्षपदको प्राप्ति होती है ॥ १० ॥ सुतराम् जो मनुष्य अपने हितकी कामना करता हो, उसे चाहिये कि माघमासमें नगरसे बाहर स्नान करे, अब इसके अनन्तर हम माघस्नान करनेकी विधिका वर्णन करते हैं ॥ ११ ॥ श्रेष्ठ मनुष्योंको कोई न कोई व्रतरूप, नियम अवश्य धारण करना चाहिये, एवम् प्रभूतफल प्राप्त होनेके निमित्त बुद्धिमान् को कुछ न कुछ भोजन का पदार्थ त्याग

मा.मा ११४

देना चाहिये ॥ १२ ॥ विचारशीलको चाहिये कि, भूमिके ऊपर शयन करै, घृत और तिलोंका हवन करै अथच सनातन श्रीविष्णुभगवान् की तीनों समय अर्चना करनी कर्त्तव्य है ॥ १३ ॥ देवाधिदेव माधव (श्रीविष्णु) भगवान्के निमित्त अखण्डदीपकका दान करना चाहिये—तथा इंधन, कम्बल, वस्त्र, जूते, कुंकुम और घृत ॥ १४ ॥

भूमौशयीतहोतव्यभोज्यंतिलविमिश्रितम् ॥ त्रिकालंचार्चयेद्विष्णुंवासुदेवंसनातनम् ॥१३॥ दातव्योदीपकोऽखंडोदेवमुद्दिश्यमाधवम् ॥ इंधनंकंबलंवस्त्रमुपानत्कुंकुमंघृतम् ॥ १४ ॥ तैलंकापासकोष्ठंचतूलींतूलबटींपटीम् ॥ अन्नंचैवयथा शक्तिदेयंमाघेनराधिप ॥१५॥ सुवर्ण-रत्तिकामात्रंदद्याद्वेदविदेतथा ॥ तद्दानमक्षयंराजन्समुद्रइवसर्वदा ॥ १६ ॥ परस्याग्निंनसेवे-तत्यजेच्चैवमतिग्रहम् ॥ माघांतेभोजयेद्विप्रान्यथाशक्तिनराधिप ॥१७॥ देयाचदक्षिणातेभ्य-

तैल, कपास, कोठी, तोसक, कनात और पर्दे और अन्न ये सब वस्तुएँ हे राजन् ! यथाशक्ति दान करना चाहिये॥१५॥ हे राजन् ! माघमासमें रत्तीभर सुवर्णका दान करनाभी समुद्रके समान अक्षय होता है ॥ १६ ॥ हे नरनाथ ! दूसरेकी अग्निका सेवन न करै, दान का परित्यागन करदे, और माघके अन्तमें यथाशक्ति ब्राह्मण भोजन करावे॥१७॥

अपने कल्याणकी कामनासे उन ब्राह्मणोंको दक्षिणा देनी चाहिये, तथा एकादशीकी विधिसे माघस्नानका उद्यापन करना चाहिये ॥ १८ ॥ स्वर्गप्राप्ति, अनन्त पुण्यका लाभ, और श्रीविष्णुभगवान्‌की प्रसन्नताके निमित्त श्रद्धापूर्वक उक्त कर्म करना कर्तव्य है ॥ १९ ॥ हे गोविन्द ! अविनाशी माधव ! माघमासमें मकरराशिके ऊपर

आत्मनःश्रेयइच्छता ॥ एकादशीविधानेनमाघस्योद्यापनंतथा ॥१८॥ कर्तव्यंश्रद्धधानेन-ह्यक्षय्यस्वर्गवांछया ॥ अनंतपुण्यवप्त्यर्थंविष्णुसंप्रीतिहेतवे ॥१९॥ मकरस्थेरवौमाघेगोविंदा-च्युतमाधव ॥ स्नानेनानेनभोदेवयथोक्तफलदोभव ॥२०॥ इतिमंत्रंसमुच्चार्यस्नायान्मौनी-समाहितः ॥ वासुदेवंहरिंकृष्णंमाधवंचस्मरेत्पुनः॥२१॥ गृहेऽपिसजलंकुंभंवायुनानिशिपीडि-तम् ॥ तत्स्नानंतीर्थसदृशंसर्वकामफलप्रदम्॥२२॥तत्रव्रतेनदातव्यंसान्नंचोपस्करान्वितम् ॥

सूर्यके उपस्थित होनेपर जो हम स्नान करते हैं इसका यथोक्त फल हमें प्रदान करिये ॥ २० ॥ इस मन्त्रका उच्चारणकरके मौनधारणपूर्वक चित्तको एकाग्र करके स्नान करना चाहिये और फिर वासुदेव हरि, कृष्ण तथा माधवका स्मरण करे ॥ २१ ॥ जलपूर्ण घटको रात्रिमें हवामें रखकर उसके जलसे घरहीमें स्नान किया जाय तो वह स्नानभी तीर्थहीको समान समस्त कामनाओंको पूर्ण करनेवाला है ॥ २२ ॥ फिर सब उपस्क्रियसहित व्रतकरके

अन्नदान करना चाहिये, इस व्रतके प्रभावसे मनुष्यको नरकमें जाना नहीं होता ॥ २३ ॥ जो मनुष्य मकरके सूर्य्यमें घरपरही तप्त जलसे स्नान करते हैं, उनको छः वर्ष स्नान करनेका फल उपलब्ध होता है ॥ २४ ॥ और बावड़ी आदिके ऊपर नगरके बाहर वर्ष स्नान करना बारह वर्ष स्नान करनेका फल प्रदान करता है, तालावमें स्नान करनेसे

तत्स्नानस्यप्रभावेणनरोननिरयंव्रजेत् ॥ २३ ॥ तप्तेनवारिणास्नानं यद्गृहेक्रियतेनरैः ॥ षडब्दफलदंतद्धिमकरस्थेदिवाकरे ॥ २४ ॥ बहिःस्नानंतुवाप्यादौद्वादशाब्दफलंस्मृतम् ॥ तडागेद्विगुणंराजन्नद्यांचैवचतुर्गुणम् ॥२५॥ शतधादेवखातेषुशतधातुमहानदी ॥ शतंचतु-र्गुणंराजन्महानद्याश्चसंगमे ॥२६॥ सहस्रगुणितंसर्वंतत्फलंमकरेरवौ ॥ गंगायांस्नानमात्रे-णलभतेमानवोनृप ॥२७॥ गंगायांयेवगाहंतिमाघमासेनृपोत्तम ॥ चतुर्युगसहस्रं तुनपतन्ति-

दूना और नदीमें स्नान करनेसे चौगुना फल मिलता है ॥ २५ ॥ देवसरोवरों और महानदियोंमें सौगुना एवं हे राजन् ! महानदीके संगममें स्नान करनेसे चार सौगुना फल प्राप्त होता है ॥ २६ ॥ अथच हे राजन् ! मकरके सूर्य्यमें गंगाजीमें स्नानमात्र करनेसे इन सबसे सहस्रगुणा अधिक फल प्राप्त होता है ॥ २७ ॥ हे नरनाथ ! जो व्यक्ति माघमासमें गंगास्नान करते हैं वो चार सहस्र युगपर्य्यन्त स्वर्गसे निपतित नहीं होते ॥ २८ ॥ हे राजन् !

मा.मा

११७

जो मनुष्य माघमें गंगास्नान करता हैं, मानों वह प्रतिदिन सहस्रपरिमित सुवर्ण दान करता है ॥ २९ ॥ माघमासमें गंगास्नान करनेसे जो फल प्राप्त होता है, गंगा यमुनाके संगममें स्नान करनेसे उससे सौगुणा अधिक फल प्राप्त होता है, ऐसा मुनियोंने वर्णन किया है ॥ ३० ॥ हे राजन् ! प्रजाके हितमें तत्पर होकर उनके प्रभूत पापराशि-

सुरालयात् ॥२८॥ दिनेदिनेसहस्रं तुसुवर्णानांविशांपते ॥ तेनदत्तंतुगंगायांयो माघेस्नाति-मानवः ॥ २९ ॥ शतेनगुणितंमाघेसहस्रं राजसत्तम ॥ निर्दिष्टमृषिभिःस्नानंगंगायमुनसं-गमे ॥ ३० ॥ पापौघभूरभारस्यदाहार्थंचप्रजापतिः ॥ प्रयागंविदधेभूपप्रजानांचहिते-स्थितः ॥ ३१ ॥ शृणुस्थानमिदंसम्यक्सितासितजलंकिल ॥ पापरूपपशूनांचब्रह्मणाविहितं पुरा॥३२॥ सितासितजलेमज्जेदपिपापशतान्वितः॥मकरस्थेरवौमाघेनैवगर्भेषुमज्जति ॥३३॥

का दाह करनेके लिये ब्रह्माजी ने प्रयागराजकी सृष्टि करी थी ॥ ३१ ॥ इस स्थान का सम्यक्तया वर्णन सुनो यहांके श्वेत और कृष्णवर्ण जलको ब्रह्माजीने पापरूप पशुओंका नाश कनेके लिये रचा था ॥ ३२ ॥ सैकड़ों पापोंका आचरण करनेवाला मनुष्य इस श्वेतकृष्ण जलमें माघमास और मकरके सूर्य्यमें स्नान करे तो उसे गर्भ में निमग्न होना नहीं होता ॥ ३३ ॥ जो श्वेत और कृष्ण जलकी धारा को जिसके गर्भमें सरस्वती हैं, सृष्टिकर्ता ब्रह्माजी

मा.मा

अ.११

११७

ने उसीको ब्रह्मलोकका मार्गनिर्माण किया है ॥ ३४ ॥ हे नरपाल ! वैष्णवी माया बड़ी दुर्मदा है, देवताभी उससे बच नहीं सकते, परन्तु माघमासमें प्रयागके बीच वह भस्म हो जाती है ॥ ३५ ॥ जो मनुष्य माघमासमें प्रयागमें स्नान करते हैं वे तेजोमयलोकोंमें अनेक प्रकारके भोगोंका उपभोगकरके अन्तमें भगवान् में लीन हो जाते हैं ॥ ३६ ॥

सितासितातुयाधारासरस्वत्याविगर्भिता ॥ तन्मार्गंब्रह्मलोकस्यसृष्टिकर्तासमर्जवै ॥ ३४ ॥ दुर्मदावैष्णवीमायादेवैरपिसुदुस्त्यजा ॥ प्रयागेदह्यतेसातुमाघेमासिनराधिप ॥ ३५ ॥ तेजोमयेषुलोकेषुभुक्त्वाभोगाननेकशः ॥ पश्चाच्चक्रिणिलीयंतेप्रयागेमाघमज्जनात् ॥ ३६ ॥ उपस्पृशतियोमाघेमकरार्केसितासिते ॥ नतत्पुण्यंचसंख्यातुंचित्रगुप्तोपिवेत्यलम् ॥ ३७ ॥ संवत्सरशतंसाग्रंनिराहारस्ययत्फलम् ॥ प्रयागेमाघमासेतुत्र्यहःस्नानस्यतत्फलम् ॥ ३८ ॥ स्वर्णभारस-

अथच माघमास और मकरके सूर्य्यमें जो प्राणी प्रयाग में गंगा यमुनाका स्पर्श करता है, उसके पुण्योंकी संख्या करनेके ज्ञानको तो चित्रगुप्तभी पूर्णयतया नहीं रखते हैं ॥ ३७ ॥ एक वर्षपर्यन्त निराहार व्रत धारण करनेका जो कुछ फल होता है, माघमासमें प्रयागमें केवल तीनही दिन स्नान करने से उस फलकी प्राप्ति होती है ॥ ३८ ॥ सूर्य्यग्रहण के समय कुरुक्षेत्रमें सहस्र भार सुवर्ण दान करनेसे जिस पुण्यका लाभ होता है, माघमासमें त्रिवेणीमें

प्रतिदिन स्नान करने से भी उसी फलकी प्राप्ति होती है ॥ ३९ ॥ हे राजन्! माघमास में गंगा यमुनाके संगममें स्नान करनेसे सहस्र राजसूययज्ञके बिलकुल फलकी प्राप्ति होती है ॥ ४० ॥ हे नृपसत्तम! भूमिके ऊपर जितने तीर्थ और सातपुरी हैं वे सब माघमास में त्रिवेणीजीमें स्नान करनेको आती हैं ॥ ४१ ॥ पापियोंके संसर्गजनित

हस्ते णकुरुक्षेत्रेरविग्रहे ॥ यत्फलंलभतेमाघेवेण्याः स्नानाद्दिनेदिने ॥ ३९ ॥ राजसूयसहस्र-स्यराजन्नविकलंफलम् ॥ सितासितेतुमाघेचस्नानांभवतिध्रुवम् ॥४०॥ पृथिव्यांयानितीर्था-निपुर्यःसप्तचयाःपुनः ॥ स्नातुमायांतुवैमाघेमासिसर्वेनृपोत्तम ॥ ४१ ॥ सर्वतीर्थानिकृष्णा-निपापिनांसंगदोषतः ॥ भवंतिशुक्लवर्णानिप्रयागेमाघमज्जनात् ॥ ४२ ॥ आकल्पजन्मभिः पापंनरस्यविलयंव्रजेत् ॥ प्रयागमाघमासेतुत्र्यहःस्नातस्यनिश्चितम् ॥ ४३ ॥ प्रयागेमाघमा-सेयस्त्र्यहंस्नातिचमानवः ॥ पापंत्यक्त्वादिवंयातिजीर्णांत्वचमिवोरगः ॥४४॥ कुरुक्षेत्रसमागं-

दोषसे सब तीर्थोंका वर्ण कृष्ण हो जाता है, फिर माघमासमें प्रयागमें स्नान करनेहीसे उन्हें शुक्लवर्णकी प्राप्ति होती है ॥ ४२ ॥ जो मनुष्य प्रयागराजमें तीन दिन भी स्नान करलेता है, उसके कल्पभरके जन्मों के पाप विनष्ट हो जाते हैं ॥ ४३ ॥ जैसे सर्प अपनी पुरानी त्वचा (कैंचली) को छोड़ देता है, उसी प्रकार माघमासमें तीन दिन

स्नान करनेवाला मनुष्य पापोंका परित्याग करके स्वर्गको चला जाता है ॥ ४४ ॥ गंगाजी में चाहे जहां स्नान किया जाय, उसको कुरुक्षेत्रकी समान पुण्य प्रद माना गया हैं, और काशीमें उत्तरवाहिनी गंगा उसकी अपेक्षाभी शतगुणा अधिक हैं ॥ ४५ ॥ यमुनाके संगममें गंगाजी काशीकी अपेक्षासेभी शतगुणा अधिक हैं, और पश्चिमवाहिनी

गायत्रकुत्रावगाहिता ॥ तस्माच्छतगुणागंगाकाश्यामुत्तरवाहिनी ॥ ४५ ॥ काश्याः शत-गुणाप्रोक्तागंगायामुनसंगमे ॥ सासहस्रगुणातासांभवेत्पश्चिमवाहिनी ॥ ४६ ॥ याराजन्द-र्शनादेवब्रह्महत्यापहारिणी ॥ यापश्चाद्वाहिनीगंगाकालिंद्यासहसंगता ॥४७॥ हन्तिकोटिकृतं पापंसामाघेनृपदुर्लभा ॥ यत्कथ्यतेमृतंराजन्सावेणीभुविकीर्तिता ॥ ४८ ॥ तस्यांमाघेमुहूर्त-तुदेवानामपिदुर्लभम् ॥ ब्रह्माविष्णुर्महादेवोरुद्रादित्यमरुद्गणाः ॥४९॥ गंधर्वालोकपालाश्च-

गंगा उन सबसे सहस्र गुणा अधिक फल देनेवाली हैं ॥ ४६ ॥ हे राजन् ! उसके केवल दर्शनमात्रही करनेसे ब्रह्महत्याका अपहरण होता है, जो पश्चिमवाहिनी गंगा यमुनासें मिली हैं ॥ ४७ ॥ हे राजन् ! उस दुर्लभकी यदि माघमास में प्राप्ति होजाय तो करोड़ों पापों का नाश हो जाता है हे राजन् ? भूमि के ऊपर त्रिवेणी ही को अमृत कहना चाहिये ॥४८॥ माघमास में मुहूर्त्तमात्रके लिये भी उसकी प्राप्ति देवताओं तक को दुर्लभ है, ब्रह्मा, विष्णु,

महादेव, रुद्र, आदित्य, मरुद्गण, ॥ ४९ ॥ गन्धर्व, लोकपाल, यक्ष, किन्नर, सर्प, अणिमा आदि गुणों सहित सिद्ध-गण, एवं अन्यान्य तत्त्ववादी ॥ ५० ॥ ब्रह्मा, पार्वती, लक्ष्मी, इन्द्राणी मेना अदिति और दिति हे राजन् ! समस्त देव पत्नियें तथा नाग पत्नियें ॥ ५१ ॥ घृताची, मेनका, रंभा, उर्वशी, तिलोत्तमा इत्यादि अप्सराओं के समुदाय, और

यक्षकिन्नरपन्नगाः ॥ अणिमादिगुणैःसिद्धायेचान्येतत्त्ववादिनः ॥ ५० ॥ ब्रह्माणीपार्वती-लक्ष्मीःशचीमेनादितीर्दितिः ॥ सर्वास्ता देवपत्न्यश्चतथानागाङ्गनानृप ॥५१॥ घृताचीमेन-कारंभाउर्वशीचतिलोत्तमा ॥ गणाह्यप्सरसांसर्वेपितृणांचगणस्तथा ॥५२॥ स्नातुमायान्ति-वेसर्वेमाघेवेण्यांनराधिप ॥ कृतेयुगेस्वरूपेणकलौप्रच्छन्नरूपिणः ॥५३॥ प्रयागेमाघमासे-तुत्र्यहःस्नानस्य यत्फलम् ॥ नाश्वमेधसहस्रेणतत्फलंलभतेभुवि ॥ ५४ ॥ त्र्यहःस्नानफलं-प्राप्यपुराकांचनमालिनी ॥ राक्षसायददौभूपतेनमुक्तःसपापकृत् ॥५५॥ इति श्रीपद्मपुराणे-

पितृगण ॥ ५२ ॥ हे राजन् ! सतयुग में स्वरूप धारणकर और कलियुग में प्रच्छन्न रूपसे उक्त सब व्यक्ति माघ-मासमें त्रिवेणीमें स्नान करने को आते हैं ॥ ५३ ॥ माघमासमें केवल तीनही दिन स्नान करनेसे जिस फलकी प्राप्ति होती है, भूमिके ऊपर सहस्र अश्वमेध यज्ञ करनेसे भी वह फल उपलब्ध नहीं हो सकता है ॥ ५४ ॥ प्रथम

कांचनमालिनीने तीन दिनके स्नानजनित फलको पाकर राक्षसको दे दिया था, हे राजन् ! इसीसे उस पापीकी मुक्ति हुई थी ॥ ५५ ॥ इति श्रीमाघमास माहात्म्य भाषाटीकायांएकादशोऽध्यायः ॥ ११ ॥

कार्त्तवीर्य बोला—हे भगवन् ! वह राक्षस कौन था, वह कांचनमालिनी कौन थी, उसने अपना धर्म किस प्रकार प्रदान किया, और उस राक्षस की सद्गति किस विधिसे हुई थी ॥ १ ॥ हे अत्रिपुत्र ! हे भास्कर !! हे

उत्तरखंडे माघमासमाहात्म्ये प्रयागस्नानप्रशंसानामैकादशोऽध्यायः ॥ ११ ॥

कार्तवीर्य उवाच ॥ भगवन्राक्षसःकोसौसाकाकांचनमालिनी ॥ कथंसाप्रददौधर्मंकथं-वातस्यसद्गतिः ॥१॥ एतत्कथययोगीन्द्रअत्रिसंतानभास्कर ॥ यदित्वंमन्यसेश्राव्यंपरंकौतू-हलंहिमे ॥२॥ दत्तात्रेय उवाच ॥ शृणुराजन्विचित्रंत्वमितिहासंपुरातनम् ॥ यस्य स्मरण-मात्रेणवाजपेयफलंलभेत् ॥३॥ अप्सरारूपसंपन्नानाम्नाकांचनमालिनी ॥ प्रयागेमाघमासे-

योगीन्द्र !!! यदि आप सुनाना चाहते हैं तो यह सब वृत्तान्त मेरे प्रति वर्णन करिये क्योंकि मुझे इसके श्रवण करने का परम कौतूहल है ॥ २ ॥ दत्तात्रेयजी बोले—हे राजन् ! तुम प्राचीन विचित्र इतिहास को श्रवण करो, उसका केवल स्मरणमात्रही करनेसे वाजपेययज्ञके फलकी प्राप्ति होती है ॥ ३ ॥ कांचनमालिनी नाम एक परमरूपवती

अप्सरा माघमासमें प्रयागराजमें स्नान कर शिवमन्दिरको जारही थी ॥ ४ ॥ पर्वतके समान विस्तृत देहधारी एक वृद्ध राक्षस गिरिराजकी गुफा में बैठा था उसने उक्त आकाशचारिणी अप्सरा को अवलोकन किया ॥ ५ ॥ उस तेजस्विनी सुवर्ण कान्ति के समान, नितम्ब सुन्दर और नेत्र बड़े २ थे, उसका मुख चन्द्रमाके समान मनोहर, केश

सास्नात्वायातिहरालयम् ॥४॥ निकुंजेगिरिराजस्यतिष्ठितागिरिरूपिणा ॥ दृष्टागगनमारूढावेनवृद्धेनराक्षसा ॥ ५ ॥ तेजस्विनीसुहेमाभासुश्रोणीदीर्घलोचना ॥ चंद्राननसुकेशीचपीनोन्नतपयोधरा ॥६॥ तांदृष्ट्वारूपसंपन्नांमुवाचराक्षसस्तदा ॥ कात्वंकमलपत्राक्षिकुतआगम्यतेत्वया ॥७॥ सार्द्रंचवसनंकस्मात्सार्द्रांवेकबरीकुतः ॥ कुत्रआगम्यतेभीरुकुतस्तेखेचरीगतिः ॥ ८ ॥ केनपुण्येनवाभद्रेतवतेजोमयंवपुः ॥ अतीवरूपसंपन्नंसंभूतंचमनोहरम् ॥९॥

सुन्दर एवं उसके कुच पुष्ट तथा उन्नत थे ॥ ६ ॥ उस सुन्दर रूपवतीको देखकर वह राक्षस कहने लगा, हे कमल नयनि ! तुम कौन हो ? और कहाँ से आ रही हो ॥ ७ ॥ तुम्हारे वस्त्र और केशपाश गीले क्यों हैं ? हे भीरु ! तुम कहाँसे आ रही हो ? अथच तुम्हारे आकाशमार्गसे यात्रा करनेका प्रयोजन क्या है ॥८॥ हे सुभद्रे ! तुमने ऐसे किस पुण्यका आचरण किया कि जिसके प्रभावसे तुम्हारा देह तेजोमय हो गया, और तुम मनोहर रूपसंपन्न होगई हो॥९॥

हे सुनयनी ! तुम्हारे वस्त्रमेंसे एक विन्दु मेरे मस्तक के ऊपर निपतित हुआ उसीके प्रभावसे सदाका मेरा क्रूर मन क्षणभरमें शान्त होगया ॥ १० ॥ इस जल की महिमा वर्णन करनेकी किसीकी भी शक्ति नहीं है, तुम मुझे शीलवती प्रतीत होती हो, सुतराम् तुम्हारी आकृति निर्गुण नहीं हो सकती है ॥ ११ ॥ अप्सरा बोली—सुनो राक्षस ! मैं

त्वद्वस्त्रबिंदुपातेनममसूर्ध्निसुलोचने ॥ क्षणेनह्यगच्छांतिंक्रूरंमेमनसंसदा ॥ १० ॥ नोरस्य-महिमाकोयमेतद्व्याख्यातुमर्हसि ॥ त्वंमेशीलवतोभासिनाकृतिर्निर्गुणाभवेत् ॥११॥ अप्स-राउवाच ॥ श्रूयतामप्सराश्चाहंभोरक्षःकामरूपिणी ॥ प्रयागतश्चागताहंनाम्नाकांचनमा-लिनी ॥ १२ ॥ आर्द्रःपरिकरोमेऽतःसुस्नाताहंसितासिते ॥ गंतव्यंतुमयारक्षः:कैलासेतुन-गोत्तमे ॥ १३ ॥ तत्रास्तेपार्वतीनाथः सुरासुरसुपूजितः ॥ तेणोवारिप्रभावेण रक्षस्तेक्रूरता गता ॥ १४ ॥ जाताहंयेनपुण्येनगंधर्वस्यसुमेधसः ॥ कन्यकादिव्यरूपातुतत्सर्वंकथया-

कांचनमालिनी नाम अप्सरा हूँ मैं अपना चाहे जैसा रूप बना सकती हूँ, और इससमयमें प्रयागसे आरही हूं ॥ १२ ॥ हे राक्षस ! मैंने गंगायमुनाके संगममें स्नान किया है अतएव मेरा वस्त्र आर्द्र (गीला) है, और अब मैं उत्तम कैलास पर्वतके ऊपर जा रही हूँ ॥ १३ ॥ वहां देवताओं और दनुजों दोनोंही के द्वारा पूजित पार्वतीपति महादेवजी विराज-

मान हैं, हे राक्षस ! त्रिवेणीके जल के प्रभावसे तुम्हारी दुष्टता दूर होगई है ॥ १४ ॥ और जिस पुण्यके प्रभावसे मैं सुमेधा गन्धर्वकी सुन्दर रूपवती कन्या हुई हूँ वह भी सब तुम्हारेप्रति वर्णन करती हूँ ॥ १५ ॥ प्रथम मैं कलिंगाधिपति राजाको वेश्या थी, मैं रूप और लावण्यसे संपन्न थी अतएव मुझे अपने सौभाग्यके मदका अतीव गर्व था ॥ १६ ॥ विशेष क्या कहूँ, उस पुरमें तो मैं संपूर्ण ही युवतियों (स्त्रियों) की शिरोमणि थी, हे दैत्य ! उस जन्ममें मैंने अपनी

भिते ॥ १५ ॥ कालिंगाधिपतेराज्ञस्त्वहमासंविलासिनी ॥ रूपलावण्यसंपन्नासौभाग्यमदगर्विता ॥ १६ ॥ अन्यासांयुवतीनांचतत्पुरेहंशिरोमणिः ॥ तज्जन्मनिमयारक्षोभुक्त्वाभोगान्यथेच्छया ॥ १७ ॥ मोहितंतत्पुरंसर्वंमयायौवनसंपदा ॥ रत्नानिचविचित्राणिभूषणानिधनानिच ॥ १८ ॥ वासांसिचित्ररूपाणिकर्पूरागुरुचंदनम् ॥ एतच्चोपार्जितंसर्वंमयामोहनरूपया ॥ १९ ॥ नाहंजानामि हेम्नोतंस्वनिवासेनिशाचर ॥ संसेवन्तेयुवानो मेचरणौकामपीडिताः ॥ २० ॥ मयाते-

इच्छाके अनुसार खूबही भोग भोगे ॥ १७ ॥ विशेष क्या कहूँ, मैंने अपने रूपकी संपत्तिसे उस समस्त नगर भरहीको मोहित करलिया, विचित्र रत्न, आभूषण, धन ॥ १८ ॥ विचित्र रूपके वस्त्र, कपूर और गुरुचन्दन, मुझ मनोहर रूपवतीने ये सब वस्तुएँ भलीप्रकार उपार्जन करी ॥ १९ ॥ हे निशाचर ! मैं अपने निवासस्थानमें सुवर्णोंका अन्त नहीं देखती थी, कारण कि युवाव्यक्तिगण कामदेवसे पीडितहो मेरे चरणों की सेवा करते थे ॥ २० ॥ मैंने अपनी

मायाकरके उनका सर्वस्वही ठगलिया, अथच कोई २ कामीजन तो एक दूसरेकी स्पर्धासे मरगये ॥ २१ ॥ उस सुन्दर नगरमें इसप्रकार मेरी गति थी, पर जब मेरी वृद्धावस्था आई तब मैं अपने हृदयमें सोच करने लगी ॥ २२ ॥ न मैंने दान किया, मैंने हवन और जप भी नहीं किया, किसी व्रतका आचरण भी मुझसे नहीं बन पड़ा, धर्म,

वंचिताःसर्वेसर्वस्वेनतुमायया ॥ अन्योन्यस्पर्धाभावेन मृताःकेचित्तुकामिनः ॥ २१ ॥ इत्थंतन्नगरे रम्येसकलेमेगतिस्तदा ॥ प्राप्तेतुवार्द्धकेकालेशुशोचहृदयंमम ॥ २२ ॥ नदत्तंनहुतंजप्तंनव्रतंचरितंमया ॥ नाराधितोमयादेवश्चतुर्वर्गफलप्रदः ॥ २३ ॥ नमयापूजितादेवीदुर्गादुर्गार्तिनाशिनी ॥ सर्वपापहरोविष्णुर्नस्मृतोभोगलुब्धया ॥ २४ ॥ नचसंतर्पिताविप्रानकृतंप्राणिनांहितम् ॥ अणुमात्रमिदंपुण्यंनकृतंचप्रमादतः ॥ २५ ॥ पातकंतुकृतंभद्रत्वेनमेदह्यतेमनः ॥ नहुधैवंविलप्याहं

अर्थ, काम और मोक्षके देनेवाले भगवान्‌की मैंने आराधनाभी नहीं की ॥ २३ ॥ कठिन और घने क्लेशों का विनाश करनेवाली दुर्गादेवीको भी मैंने नहीं पूजा, नित्य भोगोंका उपभोग करनेके लोभसे मैंने सब पापोंका नाश करने वाले श्रीविष्णुभगवान् का स्मरणतक नहीं किया ॥ २४ ॥ ब्राह्मणोंका सन्तोष और प्राणियोंका कुछ भी हितसाधन नहीं किया, असावधानीमें पड़ी रह कर मैंने अणुमात्र भी पुण्य न किया ॥ २५ ॥ हे भद्र ! मैंने पातक तो बहुतसे किये थे

अतएव मेरा मन दग्ध होने लगा, इसविधिसे बहुत कुछ विलापकरके मैं ॥ २६ ॥ शुद्ध और चैतन्य ज्ञानसंपन्न, वेदज्ञ, उसी राजाके ब्राह्मण पुरोहित के निकट में गई, और हे राक्षस! इस पापसे निस्तार होकर मुझे सद्गति किसप्रकार हो सकती है? मैं बिचारी दीन अपनेही कर्मोंसे सन्तप्त हो रही हूँ ॥ २८ ॥ हे विप्र! मैं पापकी पंकमें निमग्न हो रही हूँ अतएव केश पकड़कर उसमें से मुझे उबारिये, अथच हे द्विज! हर्षकी दृष्टिसे करुणाका जल मेरे ऊपर बरसाइये ॥२९॥

ब्राह्मणंशरणंगता ॥ २६ ॥ ब्रह्मण्यंवेदविद्वांसंतस्यराज्ञःपुरोहितम् ॥ सहिपृष्टोमयारक्षःकथं-मेनिष्कृतिर्भवेत् ॥२७॥ पापस्यास्यद्विजश्रेष्ठकथंयास्यामिसद्गतिम् ॥ स्वेनैवकर्मणातप्तांव-राकींदीनमानसाम् ॥ २८ ॥ पापपङ्कनिमग्नांत्वंमामुद्धरकचग्रहैः ॥ मयिकारुण्यजंवारिवर्ष-हर्षदृशाद्विज ॥ २९ ॥ सज्जनेसाधवःसर्वेसाधुःसाधुरसज्जने ॥ इत्यसौमद्वचःश्रुत्वाचकारानु ग्रहंमयि ॥ ३० ॥ ऊचेप्रीतिकरंवाक्यंसर्वधर्ममयंद्विजः ॥॥ द्विजउवाच ॥ ॥ निषिद्धाचरणं

सज्जनों के लिये तो सभी सज्जन होते हैं, महात्मा लोग असज्जनोंके प्रतिभी दुष्टताका वर्त्ताव नहीं करते हैं, उसने मेरे ऐसे वचन सुन मेरे ऊपर अनुग्रह किया ॥ ३० ॥ सुतराम् वह द्विज सब धर्मों से व्याप्त प्रसन्न करनेवाले वाक्य कहने लगा, ब्राह्मण बोला—हे सुमुखि! मैं तेरे सम्पूर्ण निषिद्ध आचरणोंको जानता हूँ, तू मेरा कहना मानकर प्रजापतिके क्षेत्रमें जा ॥ ३१ ॥ वहां जाय स्नान करनेसे तुम्हारे पापोंका भी क्षय हो जायगा, क्योंकि—हमें तुम्हारे पाप

विनाशका और कोई भी उपाय नहीं सूझता है ॥ ३२ ॥ तीर्थ में स्नान करने को महर्षियोंने सर्वोत्तम प्रायश्चित्त वर्णन किया है, परन्तु हे भीरु ! तीर्थमें जायकर अशुभक्रियाओंका मनसे भी परित्याग करदेना चाहिये ॥ ३३ ॥ प्रयागमें स्नान करनेसे शुद्ध होकर तू अवश्य ही स्वर्गको चली जायगी, कारण कि, प्रयागराजमें स्नान करनेसे मनुष्योंको निश्चय

जानेसर्वंतेहंवरानने ॥ कुरुमेसत्वरंवाक्यंयाहिक्षेत्रंप्रजापतेः ॥ ३१॥ तत्रगत्वाकुरुस्नानंतेन-पापक्षयस्तव ॥ नाहमन्यत्प्रपश्यामियत्तेपापप्रणाशनम् ॥ ३२ ॥ प्रायश्चित्तंपरंतीर्थेस्नानंच-ऋषिभिःस्मृतम् ॥ किंतुतीर्थेत्यजेद्भीरुमनसाप्यशुभक्रियाम् ॥ ३३ ॥ प्रयागस्नानशुद्धात्वं-स्वर्गंयास्यसिनिश्चितम् ॥ प्रयागस्नानमात्रेणनृणांस्वर्गोनसंशयः॥३४॥ अन्यदेशकृतंपापं-तत्क्षणादेवभामिनि ॥ प्रयागेविलयंयातिपापंतीर्थकृतं विना ॥ ३५ ॥ शृणुभीरुपुराशक्रो-गौतमस्यमुनेर्वधूम् ॥ दृष्ट्वाकामवशंप्राप्तस्तांगतोगुप्तकामुकः ॥३६॥ उग्रेणतेनपापेनतदैव-

स्वर्गका लाभ होता है ॥ ३४ ॥ तीर्थस्थानको छोड़ अन्य स्थानमें किये हुए जितने पाप हैं वे सबही हे भामिनी ! प्रयागराजमें तत्कालही नष्ट हो जाते हैं ॥ ३५ ॥ सुनो भीरु ! पूर्व समय में इन्द्र महर्षि गौतमकी पत्नीको देख कामके वशीभूत होगया, और गुप्तरूपसे उस कामी ने उसके साथ गमन भी किया ॥ ३६ ॥ ऐसा उग्रपाप करनेसे उसी समय

ऋषिपत्नीगमनकर्त्ता इन्द्रको उसका फल प्राप्त हो गया ॥ ३७ ॥ उस स्त्रीके पतिने जब शाप दिया उसीके प्रभावसे इन्द्रका शरीर सहस्रभगसे चिह्नित कुरूप निन्दित अतएव लज्जाजनक होगया ॥ ३८ ॥ तब तो सुरराज नीचेको मुखकरके निकला, और वह तिरस्कृत एवं लज्जित होकर अपने किये कर्मकी निन्दा करने लगा ॥ ३९ ॥

जनितं फलम् ॥ ऋषिस्त्रीगंतुरिन्द्रस्यतस्याश्चपुरतस्तदा ॥ ३७ ॥ कुरूपंगर्हितंजातमिति-लज्जाकरंवपुः ॥ तद्भर्तुःशापमाहात्म्यात्सहस्रभगचिह्नितम् ॥ ३८ ॥ अधोमुखस्ततोभूत्वा-देवराजोविनिर्गतः॥ निनिंदस्वकृतंकर्मसोऽभिभूतः सलज्जितः॥३९॥मेरोःशिरसितोयाढ्येश-तयोजनविस्तृते ॥ तत्रगत्वाप्रविष्टस्तुहेमांभोरुहकोरके ॥ तत्रस्थोगर्हयन्नित्यमात्मानंमन्मथं तथा ॥ ४० ॥ येनैवनरकंयातिसर्वलोकविगर्हितः ॥ आयुष्कीर्तियशोधर्मध्वंसकारीसदा-

सुमेरुपर्वतके ऊपर जलसे लबालब भरेहुए, सौ योजनपर्य्यन्त विस्तृत एक सरोवरमें सुवर्णकमलकी कलिकामें प्रविष्ट हो अपनी और कामदेवकी निन्दा करने लगा ॥ ४० ॥ जिस कामना से मनुष्य समस्त लोकमें निन्दित हो नरक-गामी होता है, कामचेष्टाजनित वह पापवासना आयु कीर्त्ति यश और धर्मका सत्यानाश करनेवाली है ॥ ४१ ॥ दुरा-चारी आपत्तियोंके अचलस्थानस्वरूप और देहहीमें उपस्थित रहनेवाले विकट शत्रु कामदेवको धिक्कार है, यह दुष्ट

वशमें कभी नहीं होता और न इसे कभी सन्तोष ही होता है ॥ ४२ ॥ हे भीरु ! इधर जिससमय इन्द्र कमलमें बैठे २ गुप्तरूप से इस प्रकार कह रहेथे, उसी समय बिना इन्द्रके इन्द्रलोककी शोभाभी नष्ट होगई ॥ ४३ ॥ तब सब देवता, गन्धर्व, लोकपाल और किन्नर इन्द्राणी के साथ बृहस्पतिजीके पास आकर पूछने लगे ॥ ४४ ॥ हे भगवन् ! हमें

हिसः॥४१॥धिङ्मन्मथंदुराचारमापदांनियतंपदम्। देहस्थंदुर्दमंशत्रुमसंतुष्टंसदावशम्॥४२॥
इत्थंवादिनिप्रच्छन्नेवासवेपद्मसद्मनि ॥ आखंडलंविनाभीरुदेवलोकोनशोभते॥४३॥ ततो-
देवाःसगंधर्वालोकपालाःसकिंनराः ॥ शच्यासहसमागम्यपप्रच्छुस्तेबृहस्पतिम् ॥४४॥ भग-
वन्बलभिद्देवंनैवजानीमहेवयम्॥क्वतिष्ठतिगतःकुत्रकुत्रवामृगयामहे॥४५॥ननाकःशोभतेतेन-
विनादेवगणैःसह ॥ सुपुत्रेणविनायद्वत्कुलंश्रीमद्गुणान्वितम् ॥४६॥ उपायश्चिंत्यतांसद्यः

इन्द्रकी कुछ भी खबर नहीं है, कि—वे कहां गये, अब कहां है ? और हम उन्हें कहाँ ढूंढें ॥ ४५ ॥ जैसे सुपुत्रबिना, लक्ष्मी और गुणसंपन्न कुलकी शोभा नहीं होती, इसीप्रकार इन्द्रके बिना देवगणसहित भी देवलोककी शोभा नहीं होती ॥ ४६ ॥ हे नाथ ! ऐसा उपाय सोचना चाहिये कि, जिससे लक्ष्मी और स्वामीसे युक्त होकर स्वर्गलोक सुशोभित हो इसमें विलंब करना उचित नहीं है ॥ ४७ ॥ उनके ऐसे वाक्य श्रवण करके सुरगुरु बृहस्पतिजी बोले

मा.मा

१३१

कि इन्द्र अपने किये हुए अपराध की लज्जासे लज्जित होकर जहां स्थित है उसे मैं जानता हूँ ॥ ४८ ॥ इन्द्रने (बिना सोचे समझे) सहसा जो कार्य कर डाला, उसी के फल को भोग रहा है, जब मनुष्य नीति का परित्याग कर देते हैं, तब उन्हें बड़े २ भयंकर दुःख भोगने पड़ते हैं ॥ ४९ ॥ आश्चर्य की बात है कि—राज्यमद से उन्मत्त हो इसने कर्त्तव्य अकर्त्तव्य का कुछ भी विचार नहीं किया, किन्तु क्षय करनेवाले गुप्त और प्रगट

स्वर्लोकोयेनशोभते ॥ सनाथःसुश्रियायुक्तोनविलंबोऽत्रयुज्यते ॥४७॥ इतितेषांवचःश्रुत्वा-गुरुर्वचनमब्रवीत् ॥ जानेहंस्वापराधेनलज्जयायत्रतिष्ठति ॥४८॥ रभसालब्धकार्यस्यभुंक्तेसम-घवाफलम् ॥ नृणांनीतिपरित्यागाद्विपाकाःस्युर्भयंकराः ॥ ४९ ॥ अहोराज्यमदैर्मत्तःकृत्या-कृत्यमचिंतयन् ॥ कृतवान्निंद्यमानंहिदृष्टादृष्टक्षयंकरम् ॥५०॥ कुर्वंतिबालिशायत्रदैवोपहत-बुद्धयः ॥ अपराधाद्यथाजन्मस्यादिहामुत्रनिष्फलम् ॥५१॥ अधुनातत्रगच्छामोयत्रशक्रःसति-

अनेक निन्दित कर्म करता रहा ॥ ५० ॥ जैसे कि दैवके द्वारा जिनकी बुद्धि नष्ट हो गई है, ऐसे मूर्ख कर्म करते हैं, एवं जिस अपराधों के करने से इस लोक और परलोक दोनों स्थानों में जन्म निष्फल होता है ॥ ५१ ॥ अब वहाँ ही चलते हैं, जहाँ इन्द्र की स्थिति है, यों कहकर बृहस्पति जी आदि को ले सब देवता वहाँ से निकल चले ॥ ५२ ॥ विस्तृत सरोवर में सुवर्णा से शोभायमान कमलों के वन का अवलोकन

मा.टी

अ.१२

१३१

कर देवराज इन्द्र की इस प्रकार स्तुति करने लगे जिस से कि, उसे ज्ञान की प्राप्ति हो ॥ ५३ ॥ तब वो गुरुजी महाराजके ज्ञानोपदेशको पाय इन्द्र कमलकी कलीमें से प्रादुर्भूत हुआ, उस समय उसका मुख मलीन एवं रूप कुरूप हो रहा था, अथच लज्जा के मारे उसकी आँखें झँपि जाती थीं ॥ ५४ ॥ तब इन्द्रने अग्रजन्मा बृहस्पतिजी महाराज के

श्रुति ॥ इत्युक्त्वानिर्गताःसर्वेबृहस्पतिपुरोगमाः ॥ ५२ ॥ दृष्ट्वासरसिविस्तीर्णेस्वर्णपंकजकाननम् ॥ तुष्टुवुर्देवराजानंप्रबोधोयेनजायते ॥ ५३ ॥ ततोगुरोःप्रबोधेननिर्गतःपद्मकुड्मलात् ॥ दीनाननोविरूपस्तुव्रीडाकुंचितलोचनः ॥ ५४ ॥ जग्राहचरणारविन्दौगुरोस्तस्याग्रजन्मनः ॥ त्राहिमांनिष्कृतिंब्रूहिपापस्यास्यबृहस्पते ॥ ५५ ॥ देवराजवचः श्रुत्वाजगौविप्रोबृहस्पतिः ॥ शृणुदेवेन्द्रवक्ष्येहमुपायंपापनाशनम् ॥ ५६ ॥ प्रयागस्नानमात्रेणतत्क्षणादेवपातकात् ॥ मुच्यसेदेवराजत्वंतत्रयामः सहैवते ॥ ५७ ॥ अथपुरोधसासार्धमागत्यबलमर्दनः ॥ सस्नौसिता-

चरणोंका स्पर्श किया और कहा—हे बृहस्पते ! मेरी रक्षाकरिये, एवं इस पापसे उद्धार होने का उपाय बताइये ॥ ५५ ॥ देवराज इन्द्र के ऐसे वचन सुनकर द्विजोत्तम बृहस्पति जी बोले—सुनो देवेन्द्र ! हम पापविनाशी उपाय का वर्णन करते हैं ॥ ५६ ॥ हे देवराज ! तुम प्रयागराज में केवल स्नानमात्र करने से तत्काल ही पापों से मुक्त हो जाओगे,

मा.मा इसलिये हम तुम्हें साथ लेकर वहांही चलते हैं ॥ ५७ ॥ यह सुनतेही अपने पुरोहित बृहस्पति को साथ ले गंगायमुनाके संगममें इन्द्रने स्नान किया, और उसीसमय उसकी पापोंसे मुक्ति होगई ॥ ५८ ॥ तब देवगुरु बृहस्पतिजीने प्रसन्न होकर उसे वर दिया और कहा हे अनघ! तुमने प्रयागराजमें स्नान करके अपने पापोंका मा.टी.

१३३ अ.१२

सितेतीर्थेसद्योमुक्तोह्यघैस्ततः ॥ ५८ ॥ अथदेवगुरुस्तस्मैप्रसन्नस्तुवरंददौ ॥ प्रयागस्नान-मात्रेणक्षीणंपापंत्वयानघ ॥ ५९ ॥ क्षीणपापस्यतेशक्रमत्प्रसादेनसत्वरम् ॥ सहस्रमेतद्यो-नीनांसहस्रं याहृशांतव ॥६०॥ तद्देवद्विजवाक्येनशुशुभेचशचीपतिः ॥ लोचनानांसहस्रेण-पङ्कजैरिवमानसम् ॥ ६१ ॥ अथवृन्दारकैःसर्वैर्ऋषिभिश्चाभिपूजितः ॥ गंधर्वैःस्तूयमानस्तु-गतः शक्रोऽमरावतीम् ॥ ६२ ॥ इत्थंसद्योविपापोऽभूत्प्रयागेपाकशासनः ॥ याहित्वमपि-

नाश करदिया है ॥ ५९ ॥ हे इन्द्र, क्योंकि इससमय तुह्मारे पापोंका क्षय होगया है, अतएव हमारी कृपासे इसी समय इन सहस्रयोनियों के तुह्मारे सहस्रनेत्र हुए जाते हैं ॥ ६० ॥ ब्राह्मणके ऐसे वाक्य कहतेही सहस्रनेत्रोंसे इन्द्रकी ऐसी शोभा होने लगी जैसे कमलोंके द्वारा मानसरोवरकी शोभा होती है ॥ ६१ ॥ इसके पश्चात् सब देवताओं और ऋषियोंने इन्द्रकी पूजा करी तथा गन्धर्वों के द्वारा स्तुति किये जानेके अनन्तर देवराज अमरावतीको

गये ॥ ६२ ॥ इस प्रकार प्रयागमें स्नान करनेसे इन्द्रके पाप शीघ्र ही नष्ट होगये, अतएव हे कल्याणि ! तुमभी देवता-
ओंसे सेवित प्रयाग में जाओ ॥ ६३ ॥ वहां जानेसे शीघ्रही तुम्हारे पापोंका नाश होकर अचल स्वर्गकी प्राप्ति होगी,
जब उनके इतिहास और मंगलसहित ऐसे वचन सुने ॥ ६४ ॥ तब उसे अत्यन्त संभ्रमकी प्राप्ति हुई, और उसने

कल्याणिप्रयागंदेवसेवितम् ॥६३॥ सद्यःपापविनाशायतथास्वर्गतयेदृढम् ॥ इतितस्यवचः
श्रुत्वासेतिहासंसमंगलम् ॥६४॥ तदेवसंभ्रमापन्नानत्वापादौद्विजस्यतु ॥ त्यक्त्वाबंधुजनं-
सर्वंदासदासीगृहंतथा ॥६५॥ सकलान्विषयाञ्ज्ञात्वाविषग्रासानिवस्फुटम् ॥ वपुश्चक्षणविध्वं-
सिपश्यंतीनिर्गताह्यहम् ॥ ६६ ॥ नरकार्णवसंपातदारुणांतरवह्निना ॥ हृदयेकुणपव्याप्रत-
दातत्तप्यमानया ॥६७॥ प्रयागत्वाकृतंस्नानंमाघमासिसितासिते ॥ तस्यस्नानस्यमाहात्म्यं-
शृणुवृद्धनिशाचर ॥ ६८ ॥ त्र्यहात्पापक्षयोजातःसप्तविंशतिभिर्दिनैः ॥ शेषैर्मेयदभूत्पुण्यं

उक्त ब्राह्मणके चरणोंमें प्रणाम किया, एवं बन्धु बान्धवों, सम्पूर्ण दास दासियों और घर को छोड़ ॥ ६५ ॥ अथच
हे राक्षस ! समस्त विषयोंको विषके ग्रासोंके सदृश जान और शरीरको क्षणभंगुर समझके मैं घर से निकल
चली ॥ ६६ ॥ नरकमें गिरनेवाली चिन्ताकी दारुण अग्निसे मेरा हृदय उस समय सन्तप्त हो रहा था ॥ ६७ ॥
तब मैंने प्रयागमें जाय गंगा यमुनाके संगममें स्नान किया, हे वृद्ध निशाचर ! उसमें स्नान करनेके माहात्म्यको

सुनो ॥ ६८ ॥ तीन दिनमें तो मेरे सब पापोंका सत्यानाश हो गया, और शेष सत्ताईस दिन स्नान करनेसे जो पुण्य प्राप्त हुआ उसीसे देवयोनिका लाभ हुआ है ॥ ६९ ॥ सुतराम् मैं पार्वतीकी प्रियसखी होकर कैलास पर्वतके

तेनदेवत्वमागता ॥६९॥ रममाणातुकैलासेगिरिजायाःप्रियासखी ॥ जातिस्मरणतथाजाता प्रयागस्यप्रभावतः ॥७०॥ स्मृत्वाप्रयागमाहात्म्यंमाघेमाघेव्रजाम्यहम् ॥ ७१ ॥ इतिश्रीपद्म-पुराणेउत्तरखण्डे माघमाहात्म्ये वसिष्ठदिलीपसंवादे कांचनमालिनीरक्षःसंवादोनामद्वादशो-ऽध्यायः ॥ १२ ॥ कांचनमालिन्युवाच ॥ इतिराक्षसयत्पृष्टंत्वयाविस्मितचेतसा ॥ तन्मया-कथितंसर्वंचरितंप्रीतयेतव ॥ १ ॥

ऊपर क्रीड़ा करती हूँ, और प्रयागराजमें स्नान करनेके प्रभावसे मुझे अपनी जातिका स्मरण बना हुआ है ॥ ७० ॥ अथच प्रयागराजके माहात्म्यको स्मरण कर मैं प्रत्येक माघ में वहाँ जाती हूँ ॥ ७१ ॥ इति श्रीमाघमास माहात्म्य भाषाटीका द्वादशोऽध्यायः ॥ १२ ॥

कांचनमालिनी बोली—हे राक्षस तुमने अपने चित्त में विस्मित होकर जो कुछ पूछा वह समस्त चरित हमने तुम्हारी प्रसन्नताके लिये तुम्हें यह सुनाया ॥ १ ॥ अब हे राक्षस ! मेरी प्रसन्नताके लिये तुम अपना सब चरित्र मुझसे कहो, कि—किस कर्मके करनेसे तुम्हारा ऐसा भयानक कुरूप हो गया है । २ ॥ तुम्हारी बड़ी २

मत्प्रीतयेचरित्रंस्वंत्वंब्रूहिममराक्षस ॥ कर्मणाकेनजातोसिविरूपोतिभयंकरः ॥२॥
श्मश्रुलोदीर्घदंष्ट्रश्चकृष्यादोगिरिगह्वरे । राक्षसउवाच॥ इष्टंददातिगृह्णातिगुह्यंवदतिपृच्छति॥३॥
प्रीत्याहिसज्जनोभद्रेतच्चसर्वंत्वयिस्थितम् ॥ त्वयासंभावितोनूनंमन्येहंवामलोचने ॥ ४ ॥
भाविनीनिष्कृतिःसद्यस्त्वयास्यक्रूरकर्मणः ॥ अतोवक्ष्यामितेभद्रेदुष्कृतंयत्स्वयंकृतम् ॥५॥
निवेद्यसज्जनेदुःखं ततःसर्वंसुखीभवेत् ॥ शृणुसुश्रोण्यहंकाश्यांबह्वृचोवेदपारगः ॥ ६ ॥

डाढ़ी मूछे हैं एवं डाढ़ेंभी तुम्हारी बड़ी हैं, राक्षस बोला—प्रियवस्तु देना गुप्त विषयों का पूँछना और कहना ॥ ३ ॥ हे भद्रे ! सज्जन इन बातोंको प्रीतिपूर्वक पूँछा करते हैं, सो यह सब बातें तुममें विद्यमान हैं हे तिर्छीचितवनवाली०! तुमने मेरे ऊपर बड़ी कृपा की है ॥ ४ ॥ हे सुभद्रे ! हमारे क्रूरकर्मकी निवृत्ति तुम्हारे द्वारा होगी, अतएव मैं अपने कियेहुए कर्म तुम्हारे तुम्हारे प्रति वर्णन करताहूँ ॥ ५ ॥ क्योंकि सज्जनोंके प्रति दुःखका निवेदन करनेसे सुखकी

प्राप्ति होती है, सुनो सुन्दर नितम्बोंवाली ! मैं काशी में बहुतसी ऋचाओंका ज्ञाता और वेदपारगामी ब्राह्मण था ॥ ६ ॥ मेरा उत्तमकुल में जन्म हुआ था, अतएव मैं सब में उत्तम ब्राह्मण समझा जाता था, हे भीरु ! दुराचारी राजाओं शूद्रों और वैश्योंको ॥७॥ काशीजी में मैंने बहुतसो वार कुत्सित कर्म किये ॥८॥ यहाँ तक कि मैंने चाण्डा-

जातःपुराद्विजःश्रेष्ठःकुलेमहतिनिर्मले ॥ राज्ञांदुष्कृतिनांभीरुशूद्राणांचतथाविशाम् ॥ ७ ॥
वाराणस्यांकृतोघोरोमयादुष्टप्रतिग्रहः ॥ बहुधाबहुधावारंनिषिद्धःकुत्सितोबहु ॥ ८ ॥
चांडालस्यापिनत्यक्तोमयादुष्टप्रतिग्रहः ॥ अन्यच्चपातकंतत्रममाभून्मूढचेतसः ॥ ९ ॥ तन्ना-
स्तिदुष्कृतंकर्ममयायत्रनयत्कृतम् ॥ अन्यच्चश्रूयतांदोषःक्षेत्रस्यवरवर्णिनो ॥ १० ॥ अवि-
मुक्तेणुमात्रंयत्तदघंमेरुतांव्रजेत् ॥ नधर्मस्तुमयाकश्चित्संचितस्तत्रजन्मनि ॥ ११ ॥ ततोबहुति-

लोंका भी प्रतिग्रह ग्रहण किया, एवं वहाँ मुझ मूर्खने बहुत से पाप किये ॥ ९ ॥ ऐसा कोई भी पाप (अथवा निषिद्ध कर्म) नहीं था कि, जिसका आचरण मैंने न किया हो, और हे सुमुखि ! क्षेत्रके अन्य दोषोंका भी श्रवण करो ॥१०॥ अविमुक्त क्षेत्र में किया हुआ अणुमात्र भी पाप पर्वत के समान बृहत्काय होजाता है, और मैंने तो उस जन्म में किसी भी धर्म का संचय नहीं किया ॥ ११ ॥ इसके अनन्तर प्रभूत समय व्यतीत हो जाने पर वहां ही मेरी मृत्यु हो गई,

हे शोभने! अविमुक्त क्षेत्रके प्रभाव से मुझे नरक में जाना नहीं पड़ा ॥ १२ ॥ अविमुक्त क्षेत्र में चाहे जैसे मनुष्य का मरण हो पर उसे नरक में जाना नहीं होता, और उक्त क्षेत्रमें कियाहुआ पाप वज्रकी तुल्य दृढ़ हो जाता है ॥ १३ ॥ वज्रलेप पापके कारण इस हिमालय पर्वत के ऊपर भयानक अतिशय दुष्ट और पापशाल राक्षस योनि में मेरा जन्म

थेकालेमृतस्तत्रैवशोभने ॥ अविमुक्तप्रभावेणनचाहंनरकंगतः ॥ १२ ॥ अविमुक्तेमृतःकश्चि-न्नरकंनैवगच्छति ॥ अविमुक्तेकृतंकिंचित्पापंवज्रीभवेद्दृढम् ॥ १३ ॥ वज्रलेपेनपापेनतेनमे-जन्मराक्षसम् ॥ रौद्रंक्रूरतरंपापसंभूतंहिमपर्वते ॥१४॥ द्विर्जातोगृध्रयोनौभाक्त्रिर्व्याघ्रोद्विः सरीसृपः ॥ एकवारमुलूकस्तुविड्वराहस्ततःपरम् ॥ १५ ॥ इदंतुदशमंजन्मराक्षसंममभा-मिनि ॥ अतीतानिसहस्राणिवर्षाणिममजन्मनः ॥१६॥ नास्तिमेनिष्कृतिर्भद्रेएतस्माद्दुःख-सागरात् ॥ अत्रत्रियोजनंसुभ्रूनिर्जंतुहिमयाकृतम् ॥ १७ ॥ अनागसांचभूतानांबहूनांचकृतः

हुआ ॥ १४ ॥ इससे प्रथम दो वार गृध्र, तीन वार व्याघ्र, और दो वार सरीसृप (सर्प) एक वार उल्लू और नववीं वार नीच सूकर योनिमेंभी मेरा जन्म होचुका है ॥ १५ ॥ हे भामिनि! अब यह दशवीं वार यह राक्षस-योनि मुझे प्राप्त हुई है, मेरे जन्म के सहस्रों वर्ष व्यतीत होचुके ॥ १६ ॥ हे सुभद्रे! इस दुःखके सागरसे मेरा उद्धार

नहीं होता, हे सुन्दर भृकुटीवाली ! यहाँ के स्थानको मैंने तीन योजन पर्यन्त जीवहीन कर दिया है ॥ १७ ॥ हे सुन्दरि मैंने बहुत से निरपराधी जीवों का भी विनाश किया है, इन नीच कर्मों के कारण मेरा मन भस्मीभूत होता रहता है ॥१८॥ तुम्हारे दर्शनरूप अमृत के छिड़कावसे मेरे मनको शान्तिका लाभ हुआ है, तीर्थोंका फल तो समय पाकर मिलता है, पर सज्जन समागम तत्तकालही फल देता है ॥१६॥ हे सुभ्रु ! इसी लिये विद्वान् लोग सत्संगति

क्षयः ॥ कर्मणालेनमेसुभ्रुदह्यतेसततंमनः ॥ १८ ॥ त्वद्दर्शनसुधासिक्तंगतंशैत्यंमनोमम ॥ तीर्थंफलतिकालेनसद्यःसाधुसमागमः ॥१६॥ अतःसत्संगतिंसुभ्रुप्रशंसंतिमनीषिणः ॥ एत-देकथितंसर्वंस्वदुःखंहृद्गतंमया ॥ २० ॥ विरलःसज्जनःसुभ्रूरन्तरात्मायस्यनखिद्यते ॥ जाना-स्यत्रोचितंत्वंहिकिंचिन्नोवच्म्यतःपरम् ॥ २१ ॥ अस्यदुःखोदधेःपारंकथंयामीतिचिंतयन् ॥ सज्जनानांसमाभूतिःसर्वेषामुपजीवनम् ॥ २२ ॥ क्षीरार्णवःपयोदत्तेहंसायनबकायकिम् ॥

को प्रशंस किया करते हैं, यह मैंने अपना हार्दिक सब दुःख तुमसे वर्णन किया ॥ २० ॥ हे सुभ्रु ! ऐसा कोई विरलाही सज्जन होगा, जिसकी अन्तरात्मा को खेद न हो, इसके उचित कारण को तुम जानती हो अतएव मैं कुछ नहीं कहता ॥ २१ ॥ मैं सदैव यही विचार करता रहता हूँ कि, इस दुःखके सागर से किस प्रकार पार हो सकूँगा ! सज्जनों का समागम सबही का उपकार करता है ॥ २२ ॥ क्या क्षीरसागर केवल हंसोंही को दुग्धदान करता है,

वगलोंको नहीं, (नहीं २ सभीको करता है) दत्तात्रेयजी बोले—उसके ऐसे वचन सुन उसका चित्त दया से आर्द्र
हो गया ॥ २३ ॥ सुतराम् वह कांचनमालिनी धर्मप्रदान करने का निश्चय करके चली, गई, और अपने मनमें विचारने
लगी कि, इस राक्षस का मैं अवश्य उद्धार करूँगी ॥ २४ ॥ मैं तेरे उद्धार के लिये यत्न करूंगी, उस राक्षस से

दत्तात्रेयउवाच ॥ इतितस्यवचःश्रुत्वादयार्द्रीकृतमानसा ॥२३॥ धर्मदानेमतिंकृत्वाजगौ-
कांचनमालिनी ॥ करिष्येनिष्कृतिंरक्षइदानींखलुमाशुच ॥२४॥ प्रतिज्ञांतुदृढांकृत्वायतिष्ये-
तवमुक्तये ॥ बहवोहिकृतामाघेवर्षेवर्षेयथाविधि ॥२५॥ श्रद्धापूर्वंमयाभद्रब्रह्मक्षेत्रेसितासिते ॥
तांवदामितुसंख्यातिंतस्यधर्मस्यराक्षस ॥ २६ ॥ गूढोधर्मोहिकर्तव्यइत्यूचुर्विबुधाजनाः ॥
आर्तेदानंप्रशंसंतिमुनयोवेदवादिनः ॥ २७ ॥ सागरेवर्षतोभद्रकिंमेघस्यफलंभवेत् ॥ अनु-

ऐसी प्रतिज्ञा करके कहने लगी कि, मैंने प्रतिवर्ष अनेक माघों में यथाविधि स्नान किया है ॥ २५ ॥ हे सौम्य !
यह सब मैंने ब्रह्मक्षेत्र में गंगा यमुना के संगम में भक्तिभाव पूर्वक किया है, हे राक्षस उसकी संख्या और धर्मका
मैं वर्णन करती हूँ ॥ २६ ॥ विद्वान् लोग यों कहते हैं कि—धर्मका आचरण गुप्त करना चाहिये, और वेदवादी
मुनिजन दुःखीको दान देने की प्रशंसा करते हैं ॥ २७ ॥ हे सौम्य ! भला समुद्र में वर्षा होने से क्या फल हो सकता

है ? हे राक्षस ! उस पुण्यके फलका मैंने स्वयं अनुभव किया है ॥ २८ ॥ हे मित्र ! तत्काल पापोंका नाश करने वाले उस पुण्यफलको मैं तुम्हें देदूंगी, यों कहकर उसने वस्त्र निचोड़के उसके जलको कमलसदृश सुन्दर हाथों में लेकर ॥ २६ ॥ माघस्नानका फल वृद्ध राक्षसको देदिया, हे राजन् ! माघस्नानके विचित्र धर्मको सुनो ॥ ३० ॥

भूतंमयारक्षःस्वयंतत्पुण्यजंफलम् ॥ २८ ॥ तत्तुदास्यामितेमित्रसद्यःपापविनाशनम् ॥
निष्पीड्याथततोवस्त्रंजलंकृत्वाकरांबुजे ॥ २६ ॥ ददौसामाघजंपुण्यंतस्मैवृद्धायरक्षसे ॥
शृणुराजन्विचित्रंहिप्रभावंमाघधर्मजम् ॥ ३० ॥ तदैवंप्राप्यतत्पुण्यंविमुक्ताराक्षसीतनुः ॥
संभूतोदेवताकारस्तेजोभास्करविग्रहः ॥ ३१ ॥ देवयानंसमारूढःसहर्षोत्फुल्ललोचनः ॥
द्योतमानस्तदाव्योम्निभासयन्प्रभयादिशः ॥ ३२ ॥ दिव्यरूपधरोरेजेद्वितीयइवभास्करः ॥
ततोनिन्दयामाससतांकांचनमालिनीम् ॥ ३३ ॥ भद्रेवेत्तीश्वरोदेवःकर्मणांयःफलप्रदः ॥

उस पुण्यके पातेही उसने राक्षसी देहका परित्याग कर देवशरीरको धारण करलिया, अतएव उसका तेज सूर्यके समान हो गया ॥ ३१ ॥ सुतराम् आनन्दसे उसके नेत्र प्रफुल्ल होगये, जभी वह विमानमें आरूढ़ हुआ तभी आकाश में उसका तेज व्याप्त होगया और उसकी प्रभासे दिशाएँ प्रदीप्त हो गईं ॥ ३२ ॥ वह राक्षस दिव्यदेह धारण करके

दूसरे सूर्यके समान विराजमान होने लगा, और उस कांचनमालिनीकी प्रशंसा करने लगा ॥ ३३ ॥ हे सुभद्रे ! समस्त कर्मोंके फलको देनेवाला ईश्वर इस बातको जानता है कि—जिससे कभी उद्धार नहीं हो सकता था उसी पापसे तुमने मेरा निस्तार किया है ॥ ३४ ॥ हे देवि ! अभी और कृपाका प्रसाद मुझे दीजिये, अर्थात् समस्त नीतिसे पूर्ण ऐसी शुभ शिक्षा मुझे दीजिये ॥ ३५ ॥ वह तुम्हारी शिक्षा सब धर्मोंका आचरण करनेवाली होनी

तत्त्वयापकृतंसर्वंयत्रमेनास्तिनिष्कृतिः ॥ ३४ ॥ इदानीमपिकारुण्यात्प्रसीदानुग्रहंकुरु ॥
शिक्षांविधेहिमेदेविसर्वनीतिमयींशुभाम्॥३५॥सर्वधर्मकरींनूनंनकुर्वेपातकंयथा॥ तांश्रुत्वा-
त्वदनुज्ञातःपश्चाद्यामिसुरालयम् ॥३६॥ एतंनिशम्यतेनोक्तं विप्रंधर्ममयंवचः ॥ अतिप्रीत्या-
ब्रवीद्धर्मंराजन्कांचनमालिनी ॥३७॥ धर्मंभजस्वसततंत्यजभूतहिंसांसेवस्वसाधुपुरुषान्जहि-
कामशत्रुम् ॥ अन्यस्यदोषगुणकीर्तनमाशुहित्वासत्यंवदार्चयगिरिशं भजवासुदेवम् ॥ ३८॥

चहिये, जिससे कि मैं फिर पापका आचरण न करूँ, उसे सुन फिर तुम्हारी आज्ञा पाय सुरलोकको चलाजाऊँगा ॥ ३६ ॥ हे राजन् ! उसके ऐसे वचन सुन प्रीतिपूर्वक कांचनमालिनी धर्मका उपदेश करने लगी ॥ ३७ ॥ धर्मका भजन करो, प्राणियोंकी हिंसाको छोड़कर निरन्तर साधु महात्माओंकी सेवा और कामदेवरूप शत्रुका विजय करो, दूसरोंके गुण दोषोंकी चर्चा छोड़कर सत्यसंभाषण, महादेवजीकी पूजा और वासुदेव भगवान्‌का भजन

करना कर्त्तव्य है ॥ ३८ ॥ अस्थि, मांस और रुधिर से व्याप्त देहमें बुद्धिको मत लगाओ स्त्री पुत्रादिकों में ममता कभी न करनी चाहिये, इस संसार को सदा क्षणभङ्गुर समझो, और योग में अपनी निष्ठा को लगाकर तुम्हें वैराग्य भाव में रसिक होना चाहिये ॥ ३९ ॥ मैंने यह धर्मका मार्ग प्रीति पूर्वक तुम्हारे प्रति वर्णन किया है शीलयुक्त होकर अपने चित्त में इसको अवश्य धारण करो, और अब राक्षसी देह का परित्याग कर देवदेह धारण करके प्रकाश,

देहेऽस्थिमांसरुधिरेस्वमतिंत्यजत्वंजायासुतादिषुसदाममतांविमुंच॥ पश्यानिशंजगदिदंक्षण-भंगुरंहिवैराग्यभावरसिकोभवयोगनिष्ठः ॥ ३९ ॥ प्रीत्यामयानिगदितंतवधर्ममार्गंचित्तेनिधे-हिसकलंभवशीलयुक्तः। संत्यज्यराक्षसतनुंधृतदेवदेहोज्योतिर्मयोव्रजयथासुखमाशुनाकम्॥४०। श्रुत्वाधर्मंततोहृष्टःसंतुष्टोराक्षसोऽब्रवीत्। भद्रंप्रमुदितानित्यंसर्वदाशिवमस्तुते ॥४१॥ आचंद्रार्कमस्वत्वंकैलासेशिवसन्निधौ ॥ उमयाऽखंडितंप्रेमतवास्तुवरवर्णिनी ॥ ४२ ॥ धर्मनिष्ठात-

स्वरूप हो शीघ्रही सुखपूर्वक स्वर्ग को चले जाओ ॥ ४० ॥ इस धर्मोपदेशको सुन प्रसन्न हो सन्तोष पूर्वक वह राक्षस बोला—तुम्हारा सदा कल्याण हो और तुम नित्य प्रसन्न रहो ॥ ४१ ॥ हे सुमुखी! जबतक सूर्य चन्द्रमा विद्यामन हैं तबतक तुम कैलास पर्वत के ऊपर महादेवजी के निकट रमण करती रहो, और पार्वती के साथ तुम्हारा अखण्ड प्रेम होगा ॥ ४२ ॥ हे माता! तुम्हारी धर्म और तपश्चर्या में नित्य निष्ठा बनी रहे, शरीर में तुम्हारा ममत्व कभी न

हो, और दुखियों के क्लेश को तुम सदा हरती रहो ॥ ४३ ॥ वह राक्षस यों कहकर कांचनमालिनी को प्रणाम करके स्वर्ग को चला गया और बहुत से गन्धर्व उस समय उसकी स्तुति करने लगे ॥ ४४ ॥ तब देवकन्या वहाँ आकर हर्ष से व्याप्त होके उस कांचन मालिनी के ऊपर पुष्पोंकी वर्षा करने लगीं ॥४५॥ और देवकन्याएँ उसका आलिङ्गन

पोनिष्ठामातस्त्वंभवसर्वदा ॥ मास्तुलोभःशरीरेतेआपन्नार्तिसदाहर ॥४३॥ इत्युक्त्वातुप्रण-म्याथसतांकांचनमालिनीम् ॥ जगामराक्षसःस्वर्गंगंधर्वैर्बहुभिःस्तुतः ॥४४॥ देवकन्यास्त-दागत्यववर्षुःपुष्पवृष्टिभिः ॥ यस्याःकांचनमालिन्यामूर्ध्निहर्षसमाकुलाः ॥ ४५ ॥ तामा-लिंग्यततःप्रोचुःकन्यकास्तुप्रियंवचः ॥ कृतंभद्रेत्वयाचित्रंराक्षसस्यविमोक्षणम् ॥ ४६ ॥ दुष्टस्यास्यभयात्कश्चिद्विशत्यस्मिन्नकानने ॥ अधुनानिर्भयाह्यत्रविचरामोयथासुखम् ॥४७॥ श्रुत्वातद्वचनंराजंस्तासांकांचनमालिनी ॥ हृष्टातेनैवदानेनकृतकृत्यातदासती॥४८॥ तंराक्ष-

करके ये प्रिय वचन कहने लगीं कि, हे सुभद्रे ! तूने राक्षस की विचित्र मुक्ति करी ॥ ४६ ॥ इस दुष्टके भयके मारे कोई भीःइस वन में नहीं आ सकता था अब हम सुख पूर्वक यहाँ विचरेंगी ॥ ४७ ॥ हे राजन् जब कांचन मालिनी ने उनके ये वचन सुने, तब वह इस दान से सन्तुष्ट होकर कृतार्थ हो गई ॥ ४८ ॥ वह कांचन मालिनी गन्धर्व

कन्या उस राक्षस को मुक्त करके क्रीडा करती करती शिवलोक को चली गई और परोपकार करने से उसे अतिशय प्रीतिकी प्राप्ति हुई ॥ ४९ ॥ जो मनुष्य कन्यकाओं के इस उत्तम संवादका श्रवण करता है, वह राक्षसों के द्वारा कदापि बाधित नहीं होता और उसकी सदैव धर्म में मति होती है ॥ ५० ॥ इति भाषाटीकायां माघमासमाहात्म्ये त्रयोदशोऽध्यायः ॥ १३ ॥

तंकांचनमालिनीवरागन्धर्वकन्यापरिमोच्यसत्वरम् ॥ क्रीडन्त्यसूभिःप्रययौहरालयंप्रीत्यासम्पूर्णाचपरोपकारया ॥ ४९॥ संवादमेनंवरकन्यकेरितंभक्त्यापरंयःशृणुयाच्चमानवः ॥ नवाध्यतेजातुसदासराक्षसैर्धर्मेमतिस्तस्यभृशंहिजायते ॥ ५० ॥ इति श्री प० उ० माघमा० दिलीप० राक्षसमोचोनामत्रयोदशोऽध्यायः ॥ १३ ॥

वसिष्ठउवाच ॥ कथितंमाघमाहात्म्यंदत्तात्रेयेणभाषितम् ॥ अधुनाहंप्रवक्ष्यामिमाघस्नानस्ययत्फलम् ॥ १ ॥ सर्वक्रतुवरिष्ठंतुसर्वदानफलप्रदम् ॥ सर्वव्रततपस्तुल्यंमाघस्नानंपरं

वशिष्ठजी बोले—दत्तात्रेय के द्वारा वर्णन किया हुआ माघमास माहात्म्य हमने तुम्हारे प्रति वर्णन किया, अब मैं माघस्नान के फलका वर्णन करता हूँ ॥ १ ॥ माघस्नान समस्त ही यज्ञोंकी अपेक्षा उत्कृष्ट है, जितने प्रकार के दान हैं उन सबही के देनेसे जो फल मिलता है, माघस्नान करने से भी उसी फलकी प्राप्ति होती है, माघस्नान समस्त व्रतों

एवं तपस्याओं के समान पुण्यदायक है ॥ २ ॥ हे परन्तप ! महाराज ! ! दिलीप ! ! ! माघस्नान करनेवाले व्यक्ति अपने पितरों को स्वर्गलोक में प्रतिष्ठित करके इच्छाचारी सुन्दर २ विमानों में आरूढ हो स्वयं स्वर्गको चले जाते हैं, और उनके मुखों की कान्ति निर्मल हो जाती है ॥ ३ ॥ जो मनुष्य सदैव पापी, दुराचारी और कुमार्गगामी होते

तप ॥ २ ॥ स्नानेनमाघस्यदिलीपमानवःपितॄन्दिविस्थाप्यकुलद्वयस्यवै ॥ स्वर्गंप्रयांति-स्वयमुज्ज्वलाननावरैर्विमानैरुचिरैश्चकामगैः ॥ ३ ॥ येमानवाःपापकृतोपिसर्वदासदादुरा-चाररताविमार्गगाः ॥ स्नात्वाहिमाघेहरिमर्चयन्तियेमुंचंतितेपीहमहाघसंचयम् ॥४॥ सत्येन-हीनाःपितृमातृदुःखदाह्यनाश्रमस्थाःकुलधर्मवर्जिताः ॥ येदांभिकास्तेपिनराःसतांगतिंस्नानैः प्रयांत्यत्रहिमाघसंभवैः ॥ ५ ॥ पुण्येषुतीर्थेषुचमाघमज्जनंस्नानंनराणामतिदुर्लभंभुवि ॥ तस्माद्यतोब्रह्मविदांगतिंवरांसम्प्राप्यतेनात्रविचारणामम।६।माघेतपोदानजपःप्रसेवनंस्थानंहरेः

हैं, वे भी यदि माघ में स्नान करके हरि की अर्चा (पूजा) करें तो उनके प्रभूत पापोंका संचय नष्ट होजाता है ॥ ४ ॥ जिन्होंने कभी सत्य नहीं बोला, जो अपने माता पिताओंको दुःख देते हैं, जिनकी स्थिति किसीभी आश्रममें नहीं है, जिन्होंने अपने कुलधर्म का परित्याग कर दिया है और जो दम्भी (पाखंडी) हैं वे भी यदि माघमास में स्नान करें तो उन्हें सद्गति की प्राप्ती होती है ॥ ५ ॥ भूमिके ऊपर यह बात अत्यन्त ही दुर्लभ है कि—माघके महीनेमें कोई तीर्थ-

स्थान करने को प्राप्त हो जाय, सुतराम् इस विषय में हम लोगों को कोई भी विचार न करना चाहिये कि, माघ स्नान करनेवालों को ब्रह्मज्ञानियों के समान सद्गति मिलती है ॥६॥ हे राजन् ! माघ मास में तप, दान, जप, हरिमन्दिर का सेवन और हरिका पूजन करना ये सब कार्य अक्षय होते हैं, इस लिये मनुष्यों को सर्वथा यत्न पूर्वक माघमास में स्नान करके वस्त्र, अग्नि (अँगीठी आदि) और सुवर्ण का दान करना कर्तव्य है ॥ ७ ॥ जो मनुष्य माघमास में

पूजनमक्षयंनृप ॥ तस्माद्यथाशक्तिनरैःप्रयत्नतःस्नात्वाप्रदेयंवसनाग्निकांचनम्॥ ६॥ माघेऽन्नदाताऽमृतपःसुरालयेहेमप्रदाताबलभित्समीपगः॥ दीपाग्निवासांसिददन्नरःसदासूर्यस्यलोकेवसतिप्रभामयः ॥ ८ ॥ यज्ञैःसुदानैःसुतपोभिरुज्ज्वलैःसुब्रह्मचर्यैर्वरयोगसेवया ॥ शुद्धाभवंतीहतथानपापिनःस्नानैर्यथातीर्थभवैश्चमाघजैः ॥ ९ ॥ दुःखौघसंतप्तिमसह्ययातनांयाम्यांनतेयांत्यपिपापकारिणः ॥ येमाघमासेवरतीर्थमज्जनंकुर्वंतिचार्धोदितसूर्यमंडले ॥१०॥ स्नात्वा-

अन्नका दान करता है उसे देवलोक में अमृतपान करने को मिलता है, सुवर्णदान करनेवालेको इन्द्र के निकट स्थिति प्राप्त होती है, और जो व्यक्ति दीपक अग्नि एवं वस्त्रोंका दान करता है वह तेजस्वी होकर नित्य ही सूर्य लोकमें निवास करता है ॥ ८ ॥ यज्ञ उत्तमोत्तम दान उग्र तथा उज्ज्वल तप, ब्रह्मचर्य धारण और शुभयोग सेवा करने से मनुष्य इतने शुद्ध नहीं होते जैसे कि माघमास में तीर्थों के जल द्वारा स्नान करने से शुद्ध होते हैं ॥ ९ ॥ जो पापी

व्यक्ति माघमास में अर्ध सूर्योदय होने के समय श्रेष्ठ तीर्थों में स्नान करते हैं, उन्हें अनेक दुःखों का सन्ताप और असह्य यमयातना भोगनी नहीं पड़ती ॥ १० ॥ जो पुरुष माघमें स्नान कर हरि भगवान् की अर्चना करते हैं, उनकी जब स्वर्ग से च्युति होती है तब वे भूमण्डल के ऊपर कल्याणमूर्ति, सुन्दर रूपवान् अतएव मनोहर प्रिय संभाषण करनेवाले धर्मात्मा प्रभृत धनशाली और शतायुराजा होते हैं ॥ ११ ॥ प्रदीप्त अग्नि में निक्षिप्त हुआ काष्ठसमूह जैसे

चमाघेहरिमर्चयंतियेस्वर्गच्च्युताभूपतयोभवंति ॥ भव्याःसुरूपाःसुभगाःप्रियंवदाधर्मान्विता-
भूरिधनाः शतायुषः ॥ ११ ॥ दीप्तेऽनलेकाष्ठचयोयथाहुतोभस्मावशेषोभवतीहतत्क्षणात् ॥
स्नानेनमाघस्यतथाविलीयतेक्षुद्रोपिपापौघमहाघसंचयः ॥१२॥ कायेनवाचामनसापिपातकं-
ज्ञातंयदज्ञातमलंकृतंनरैः ॥ स्नानंचमाघेवरतीर्थमज्जनंसर्वंदहेद्विष्णुरिवासुरंद्रुतम् ॥ १३ ॥
संभुज्यमानासफलंहिपार्थिवप्रमादतोपीहनृणांकदाचन ॥स्नानंतुमाघस्ययदिप्रसज्जतेतदैवतत्सं

तत्काल भस्म होजाता है इसी प्रकार माघस्नान करने से छोटे बड़े पाप सब क्षय होजाते हैं ॥ १२ ॥ मनुष्योंने मन वचन काया से जो पाप ज्ञान अथवा अज्ञान से किया हो उसका नाश माघस्नान इस प्रकार करदेता है जैसे भगवान् शीघ्रही असुरों का सत्यानाश करदेते हैं ॥ १३ ॥ हे भूपाल ! यदि कोई मनुष्य अपने किये पापों का उपभोग कररहा हो और उसी समय उससे माघस्नान बन पड़े तो तत्काल ही उसके पापों का क्षय होजाता है इसमें कोई भी सन्देह

नहीं है ॥ १४ ॥ हे भूमिपाल ! गन्धर्वों की कन्याएँ शापजनित पाप के कठिन फलका उपभोग कर रहीं थी, जब उन्हें लोमशजी ने उपदेश किया तब वे माघ स्नान करके पाप से मुक्त हो गईं ॥ १५ ॥ इति भाषाटीकायां माघ-माहात्म्ये चतुर्दशोऽध्यायः ॥ १४ ॥

चयमेतिनिश्चितम् ॥ १४ ॥ गंधर्वकन्याःपृथिवीशशापजंसंभुज्यमानाघफलंदुरत्ययम् ॥ स्नानाद्विमुक्ताःखलुमाघमासजाद्वाक्यात्पुरालोमशजातमद्भुतम् ॥ १५ ॥ इति श्रीपद्म-पुराणे उत्तरखंडे माघमासमाहात्म्ये वसिष्ठदिलीपसंवादे चतुर्दशोऽध्यायः ॥ १४ ॥

सूतउवाच ॥ श्रुत्वैतत्पार्थिवःप्रीत्यानत्वातत्पादपंकजम् ॥ श्रद्धयापरयानम्रस्तंपप्रच्छ-पुरोधसम् ॥ १ ॥ भगवन्ब्रूहिकन्याभिःशापोह्यभिगतःकुतः ॥ कस्यापत्यानितास्तासांनाम-किंकीदृशंवयः ॥ २ ॥ कथंलोमशवाक्येनविपाकाच्छापसंभवात् ॥ विमुक्ताःकुत्रताःसस्नुर्मा-

सूतजी बोले—जब राजाने उसके ऐसे वाक्य सुने तब उसने प्रीति पूर्वक उनके चरणों में प्रणाम किया और नम्र होकर परम श्रद्धा पूर्वक राजा ! पुरोहितजी से प्रश्न करने लगा ॥ १ ॥ हे भगवन् ! आप मुझे यह बताइये कि कन्याओं को शापकी प्राप्ति कैसे हुई वे किसकी सन्तान थीं, और उनके नाम एवं अवस्थायें क्या थीं ॥ २ ॥ लोम-

शजी के वाक्य से उनके शापका अन्त किस प्रकार हुआ उन्होंने माघ में कहां स्नान किया था, अथच वे संख्या में कितनी थीं ? ॥ ३ ॥ वशिष्ठजी बोले सुनिये राजशार्दूल ! हम धर्मपूर्ण कथा वर्णन करते हैं जैसे अरणीमें अग्नि व्याप्त रहती है, धर्म और अग्निको उत्पन्न करनेवाली के समान ॥ ४ ॥ सुखसंगीती गन्धर्व की प्रमोदिनी कन्या थी, सुशील

घंयाःकतिसंख्यया ॥ ३ ॥ वसिष्ठउवाच ॥ श्रूयतांराजशार्दूलधर्मगर्भांकथांपराम् ॥ यथा-रणिर्वह्निगर्भाधर्मसूर्वह्निसूरिव ॥४॥ गंधर्वःसुखसंगीतिस्तस्यकन्याप्रमोदिनी ॥ सुशीलस्यसु-शीलाचसुस्वरास्वरवेदिनः ॥५॥ सुताराचंद्रकांतस्यचंद्रिकासुप्रभस्यच ॥ इमानिवरनामानिता-सामप्सरसानृप ॥६॥ कुमार्यःपंचसर्वास्तावयसासुसमाः पुनः ॥ चंद्राद्विविनिष्क्रांताश्चंद्रि-केवसमुज्ज्वलाः ॥ ७ ॥ चंद्राननाःसुकेशिन्यश्चंद्रामृतरसाधराः ॥ नेत्रेष्वानंदकारिण्यः कौमुदीकुमुदेष्विव ॥८॥ लावण्यपिंडसंभूताश्चारुरूपामनोहराः ॥ उद्भिन्नकुचकुंभिन्यःपद्मिन्य-

की सुशीला स्वरवेदी की सुस्वरा ॥ ५ ॥ चन्द्रकान्तकी सुतारा, सुप्रभ की चन्द्रिका थी, हे राजन् ! उन श्रेष्ठ अप्सरा-ओंके येही नाम हैं ॥ ६ ॥ ये पाचों कन्याएँ कुमारी थीं, और सबकी अवस्था भी समान ही थी, और वे सब ऐसी सुन्दरी थीं जैसे चन्द्रमा में से उज्ज्वल चाँदनी का प्रकाश होता है ॥ ७ ॥ उनका मुख चन्द्रमाके समान, केश सुन्दर

मा.मा. १५१

और उनके ओंठोंका रस चन्द्रमा के अमृत के समान था, जैसे चन्द्रमा की चाँदनी बबूलोंमें प्रफुल्लता का संचार करती है ऐसे ही उनके दर्शन से नेत्रोंमें आनन्दका संचार होता था ॥ ८ ॥ मानों उनका प्रादुर्भाव सुन्दरता के खिण्डहीमें से हुआ था, अतएव उनका रूप सुन्दर और मनोहर था, उनके कुच कुम्भ के समान उभरे हुए थे, सुतराम् जो वैशाख मासमें कमलिनी के समान प्रतीत होती थीं ॥ ९ ॥ जैसे नवीन पल्लवों से वनकी बेलीकी नवीनता प्रगट होती

इवमाधवे ॥ ९ ॥ उन्मील्ययौवनंकांतंवल्लीवनपल्लवैः ॥ हेमगौराश्चहेमाभाहेमालंकार-भूषिताः ॥१०॥ हेमचंपकमालिन्योहेमच्छविसुवाससः ॥ स्वरग्रामावलीहासुविविधामूर्छना-सुच॥११॥ तालदाननविनोदेषुवेणुवीणाप्रवादने ॥ मृदंगनादसंभिन्नंलास्यमार्गलवेषुच।१२। चित्रादिषुविनोदेषुकलासुचविशारदाः ॥ एवंभूतास्तुताःकन्यामुमुहुःक्रीडनेवने ॥ १३ ॥ पितृभिर्लालिताःसत्यश्चेरुश्चधनदालये ॥ कौतुकादेकपादंचमिलित्वामासिमाधवे ॥ कन्या-

है इसी प्रकार उनमें भी नवीन यौवन भरा हुआ था, उनका वर्ण सुवर्ण के समान था, अतएव उनकी प्रभा भी सुवर्ण के समान थी, उन्होंने आभूषण भी सुवर्णही के धारण कर रक्खे थे ॥ १० ॥ वे सुवर्ण निर्मित चम्पाकी माला को धारण किये हुए थीं, उन्होंने सुवर्ण जैसे चमकीले वस्त्रोंका परिधान किया था, एवंच स्वरग्राम हावभाव कटाच और मूर्च्छना ॥ ११ ॥ ताल देनेका विनोद, वेणु तथा वीणाका बजाना, मृदंग का बजाना, नृत्य ॥ १२ ॥ चित्र विचित्र

मा.ग्रे. अ.१५ १५१

विनोद अथच सब भाँतिकी कलाओं में वे सबही चतुर थीं। ऐसी वे कन्याएँ वनमें क्रीडा करतीं २ मोहको प्राप्त होगईं ॥ १३ ॥ वे कन्याएँ पिताओंके द्वारा पालित होकर कुबेरके भवनमें विचरती थीं। एक समय कौतुकहीसे वे सब वैशाखमें एक वनसे दूसरे वनमें जाकर पारिजात (कल्पवृक्ष) के पुष्पोंका संचायन करने लगीं ॥ १४ ॥ एक

मंदारपुष्पाणिविचिन्वंत्योवनाद्वनम् ॥ १४ ॥ गौरींसमाराधयितुंवरांगनाःकदाचिदच्छोदसरोवरंययुः ॥ हेमांबुजानिप्रवराणिताःपुनस्तस्मादुपादायवरोत्पलैःसह ॥ १५ ॥ वैडूर्यशुद्धस्फटिकाच्छविद्रुमेस्नात्वातडागेपरिधायचांबरम्॥ मौनेनचस्थंडिलपिंडिकामयींस्वर्णस्यसिक्ताभिरुमांविनिर्ममुः ॥ १६ ॥ समर्चितांचंदनचंद्रकुंकुमैरभ्यर्च्यगौरींवरपंकजादिभिः ॥ नानोपचारेश्चसुभक्तिभावितास्तालप्रयोगैर्ननृतुःकुमारिकाः ॥ १७ ॥ गांधारमाश्रित्यवरंस्वरंततो-

समय वे शोभनांगी कन्याएँ गौरीकी आराधना करनेके लिये किसी स्वच्छ सरोवर में पहुँची, और उन्होंने उनमेंसे उत्तमोत्तम कमलों को तोड़ा ॥ १५ ॥ वैडूर्य और शुद्ध स्फटिककी सदृश स्वच्छ जलवाले मूँगोंसे जटित सरोवरमें स्नान करके उन्होंने वस्त्रोंका परिधान किया, और फिर वे मौन धारण पूर्वक स्वर्णमयी बालुकाकी पार्वती बनाने लगीं ॥ १६ ॥ चन्दन कुंकुम और कमल आदि से गौरी की पूजाकर और भक्तिभाव पूर्वक अनेक उपचारों के द्वारा

पूजन करके वे कुमारिकाएँ गौरी के पुरस्सर नृत्य करने लगीं ॥ ७ ॥ मृगनयनी उन कन्याओं ने गान्धार स्वर का उत्थान करके उच्चस्वर से सुन्दर गान का प्रारम्भ किया, उस समय उनके गानका वाक्य विन्यास स्वर और प्रवन्ध अत्यन्त ही उत्तम था ॥ १८ ॥ इस विधिसे जिस समय वे कन्यायें उस रसके बरसानेवाला अतएव आल्हाद जनक गान करने में मत्त होरही थीं, उसी समय निर्मल तीर्थ स्नान करने के लिये महामुनि वेदनिधि के पुत्र अग्निप ऋषि

गेयंसुतारध्वनिभिःसुमूर्छितम् ॥ एणीदृशःस्ताःप्रजगुःकलाक्षरंचारुप्रबंधंगतिभिस्तुसुस्वरम् ॥१८॥ तस्मिन्रसुनादेरसवर्षहर्षदेकन्यास्वलंनिर्भरनृत्यवृत्तिषु ॥ अच्छोदतीर्थप्रवरेतदागतः स्नातुंमुनेर्वेदनिधेःसुतोऽग्निपः ॥१९॥ रूपेणनिःसीमतरोवराननःसरोजपत्रायतलोचनोयुवा ॥ विशालवक्षाःसुभुजोतिसुंदरःश्यामच्छविःकामइवापरोहिसः ॥२०॥ सब्रह्मचारीसशिखोविराजतेदंडेनयुक्तोधनुषेवमन्मथः॥एणाजिनप्रावरणःसुसूत्रधृग्धेमाभमौंजीकटिसूत्रमेखलः ॥२१॥

आनकर उपस्थित हुए ॥ १९ ॥ उसके रूपने मानों सीमाका उल्लंघन करडाला था, उसका मुख अत्यन्त सुन्दर था उस युवाके नेत्र कमल पत्रके समान विस्तृत थे, उसकी भुजायें लम्बी २ और वक्षस्थल विशाल था, उसकी छवि श्याम थी अतएव वह अत्यन्त सुन्दर था, विशेष क्या कहैं वह दूसरे कामदेव के समान प्रतीत होता था ॥ २० ॥ उस ब्रह्मचारी के, शिरपर शिखा थी, दण्ड और धनुष से भी वह कामदेव ही सा प्रतीत होता था, उसने मृगचर्म का

वस्त्र धारण कर रक्खा था, उत्तम यज्ञोपवित और सुवर्ण जैसे चमकीले मूंजकी कटिमेखला को भी उसने धारण किया था ॥ २१ ॥ जब उन बालिकाओं ने सरोवर के तटपर उक्त ब्राह्मण के दर्शन किये तब कौतुक से व्यास होकर वे अत्यन्त प्रसन्न हुईं और शोचने लगीं कि, हमारे नेत्रों के अतिथि यह महाशय कौन हैं ॥ २२ ॥ नृत्य और गान का परित्याग कर वे कन्यकाएँ उसीही के दर्शन करने में निरत होगईं, जैसे अहेरी ने हरिणियों को आविद्ध कर

तंदृष्ट्वाब्राह्मणंबालास्तास्तत्रसरसस्तटे ॥ जहर्षुःकौतुकाविष्टाःकोयंनोनयनातिथिः ॥२२॥ संत्यक्तनृत्यगीतास्तास्तस्यालोकनतत्पराः ॥ हरिण्योलुब्धकेनेवविद्धाःकामेनसायकैः ॥२३॥ पश्यपश्येति जल्पंत्योमुग्धाःपंचसुसंभ्रमम् ॥ तस्मिन्विप्रवरेयूनिकामदेवभ्रमंययुः॥२४॥ पुनः पुनस्तमभ्यर्च्यनयनैःपंकजैरिव ॥ पश्चाद्विचारयामासुस्ताश्चकन्याःपरस्परम् ॥ २५ ॥ यद्ययं कामदेवोहिरतिहीनः कथंव्रजेत् ॥ अथायमश्विनौदेवौतौनूनंयुग्मचारिणौ ॥ २६ ॥ गंधर्वः

लेता है इसी प्रकार वे भी सब कामबाणों से पीडित होगईं ॥ २३ ॥ उन पांचों को उक्त युवा ब्राह्मण में कामदेव की भ्रान्ति होगई, अतएव वे संभ्रम पूर्वक परस्पर देखो २ कहने लगीं ॥ २४ ॥ प्रथम तो कमल जैसे नेत्रों से उसकी बार २ अर्चना करके पीछे से वे कन्याएँ परस्पर विचार करने लगीं ॥ २५ ॥ कि यदि यह कामदेव है तो रति रहित होकर क्यों विचर रहे हैं ? और यदि इन्हें अश्विनी कुमार समझा जाय तो वे दोनों साथही रहते हैं ॥ २६ ॥

अथवा किसी गन्धर्व, किन्नर किंवा सिद्ध ने कामरूप धारण किया है, अथवा यह कोई ऋषि कुमार हैं वा कोई पुरुषोत्तम ही हैं ॥ २७ ॥ यह चाहें कोई भी क्यों न हों, किन्तु विधाता ने इन्हें हमारे हीतही निर्माण किया है जिस प्रकार सौभाग्यशालियों को अपने पूर्व कर्मानुसार अर्थ निधि (खजाने) की प्राप्ति होती है ॥ २८ ॥ इसी प्रकार करुणा के जलकी तरङ्गों से जिसका चित्त आर्द्र होगया है, ऐसी पार्वतीजी ने हम कुमारिकाओं के लिये यह उत्तम वर

किंनरोवाथसिद्धोवाकामरूपधृक् ॥ ऋषिपुत्रोथवाकश्चित्कश्चिद्वामानुषोत्तमः ॥ २७ ॥
अस्तुवाकश्चिद्देवायंधात्रासृष्टोहिनःकृते ॥ याथभाग्यवतामर्थेनिधानंपूर्वकर्मभिः ॥ २८ ॥
तथास्माकंकुमारीणां गौर्यानीतोवरोत्तमः ॥ करुणाजलकल्लोलप्लवार्द्रीकृतचित्तया ॥ २९ ॥
मयावृतस्त्वयाचायंत्वयावृतस्तथामया ॥ एवंपंचसुकन्यासुवदंतीषुनृपोत्तम ॥३०॥ श्रुत्वा-
तद्वचनंतत्रकृत्वामाध्याह्निकीःक्रियाः ॥ आलोच्यहृदयेसोपिविघ्नमेतदुपस्थितम् ॥ ३१ ॥

भेजा है ॥ २९ ॥ हे नृपसत्तम ! जिस समय वे पाचों कन्याएँ परस्पर यों कह रहीं थीं कि इसको मैंने वरा, तूने वरा, हम तुम दोनोंही ने इसको वरण किया ॥ ३० ॥ तब महर्षि कुमारने मध्याह्न की क्रिया से निवृत्त हो उनके वाक्योंको सुनकर अपने हृदय में यह विचार किया कि, यह बड़ा भारी विघ्न उपस्थित हो गया ॥ ३१ ॥ ब्रह्मा विष्णु महादेव आदि जितने देवता हैं वे सब एवं योग बलशाली प्राचिन सिद्ध और मुनीश्वर गणभी स्त्रियों से अपनी अद्भुत लीला

ओं के द्वारा मोहित किये जा चुके हैं ॥ ३२ ॥ जब कामदेव धनुषधारी स्त्रियों के नेत्ररूप तीक्ष्णबाणों को भृकुटीरूप दृढ धनुष से परित्याग करता है तब भला किसका मन रूप मृग निपतित नहीं हो जाता ॥ ३३ ॥ नीति और धीरज तभीतक दृढ़ रह सकता है तभी तक मनुष्यों को भय बना है, तभी तक चित्तभी दृढ़ है, और तभी तक कुलकी गणना है ॥३३॥

ब्रह्मविष्णुगिरिशादयःसुरायेचसिद्धमुनयःपुरातनाः ॥ तेपियोगबलिनोविमोहिता लीलयात-दबलाभिरद्भुतम् ॥३२॥ योषितांनयनतीक्ष्णसायकैर्भ्रूलताखुदृढचापनिर्गतैः ॥ धन्विनाम-करकेतुनाहतःकस्यनोपततिहामनोमृगः ॥ ३३ ॥ तावदेवनयधीर्विराजतेतावदेवजनताभयं-भजेत् ॥ तावदेवदृढचित्तताभृशंतावदेवगणनाकुलस्यच ॥ ३४ ॥ तावदेवतपसःप्रगल्भता-तावदेवयमधारणंनृणाम् ॥ यावदेववनितेक्षणबाणैर्नो हयंत्युरुमदैर्नमानुषाः ॥ ३५ ॥ मोहयं-तुमदयंतुरागिणायोषितःसुललितैर्मनोहरैः ॥ मोहयंतिमदयंतिमामिमांधर्मरक्षणपरंहिके-

तप की धृष्टताभी उसी समयतक है, मनुष्य यमनियमों को भी तभीतक धारण कर सकते हैं कि, जबतक स्त्रियोंकी दृष्टिके तीव्र बाण पुरुषों को मोहित नहीं करते हैं ॥ ३५ ॥ विषयी जीवों के मन स्त्रियों के द्वारा मोहित हो जाते हैं, सुतराम् ये मुझे भी मोहित कर लेंगी तब भला कौन से गुणोंसे धर्मकी रक्षा हो सकेगी ॥ ३६ ॥ मांस वीर्य मज्ज

मूत्र से निर्मित हुए, अपवित्र अतएव घिननौने स्त्रियोंके शरीरमें सुन्दरताकी कल्पना करके मूर्ख कामियों को उनमें रमण नहीं करना चाहिये ॥ ३७ ॥ निर्मल बुद्धिवाले महात्माओं ने स्त्रियों के संसर्ग ही को बड़ा दारुण कहा है, अतएव ये जबतक मेरे निकट न आवें तभीतक मैं घरको चला जाऊँ ॥ ३८ ॥ वे स्त्रियें जबतक उन महात्माके

र्गुणौः ॥ ३६ ॥ मांसशुक्रमलमूत्रनिर्मितेयोषितांवपुषिनिर्घृणेशुचौ ॥ कामिनश्चपरिकल्प्यचारुतामारमंतुसुविमूढचेतसः ॥ ३७॥ दारुणोहिपरिकीर्तितोंगनासन्निधिर्विमलबुद्धिभिर्बुधैः ॥ यावदत्रनसमीपगाइमास्तावदेवहिगृहंव्रजाम्यहम् ॥ ३८ ॥ समीपंतस्ययावद्धिनागच्छंतिवरांगनाः ॥ वैष्णवेनप्रभावेणतावदंतर्दधेद्विजः ॥३६॥तस्य योगबलाद्भूपगतस्यादर्शनंतदा ॥ दृष्ट्वातदद्भुतंकर्मऋषिपुत्रस्य धीमतः ॥४०॥ वित्रस्तनयनाबालाःकुरंग्यइवकातराःसंभ्रांतनयनाःशून्यादद्दृशुस्तादिशोदश ॥४१॥इंद्रजालंस्फुटंवेत्तिमायाजानातिवापुनः॥दृष्टोप्यदृष्टरू-

निकट न आने पाईं इतनेमें वे स्वयंही वैष्णव प्रभावसे अन्तर्धान हो गये ॥ ३६ ॥ हे राजन् ! योगके बलसे अदर्शन को प्राप्त हुए ऋषिकुमार के इस अद्भुत कर्मका अवलोकन करके ॥ ४० ॥ वे अबलाएँ मृगीकी भाँती व्याकुल हो गईं अतएव उनके नेत्रोंकी चपलतासे भी भय प्रतीत होने लगा, उनके ठगेसे नेत्रोंको दिशोंदिशायें सूनी प्रतीत

होती थीं ॥ ४१ ॥ वे परस्पर यों कहने लगीं कि—वह व्यक्ति यातो इन्द्रजाल जानता है, अथवा उसे कोई माया विदित है, जिससे कि, वह दीखता २ ही अदृष्ट होगया ॥ ४२ ॥ उनका हृदय वियोग की अग्निसे इसप्रकार सदैव व्याप्त रहने लगा, जैसे प्रचण्ड दावानल घने बनको व्याप्त कर लेती है ॥ ४३ ॥ हे कान्त ! ऐन्द्रजालिक मायाको छोड़कर

पोभूदित्यूचुश्चपरस्परम् ॥४२॥ व्याप्तंतुहृदयंतासांसदैवविरहाग्निना॥ज्वलद्दावानलेनेवसुस्निग्धंसांद्रकाननम् ॥४३॥ त्यक्त्वेंद्रजालिकींविद्यांकांतदर्शयसत्वरम्॥स्वात्मानंनोमनोयुक्तंप्राग्ग्रासेमक्षिकोपमम् ॥४४॥ हाकष्टंदर्शितःकस्माद्धात्रात्वंघटितःपुनः ॥ज्ञातंमहानुसंतापहेतोर्नस्त्वंविनिर्मितः ॥४५॥ कच्चित्तेनिर्दयंचेतःकच्चिदस्मासुनोमनः ॥ कच्चिद्धूर्तोसिहेकांतकच्चिन्मुष्णासिनोमनः॥४६॥ कच्चिन्नप्रत्ययोस्मासुकच्चिदस्मान्परीक्षसे॥ कच्चिन्नर्मकलाशीलःकच्चिन्मायावि

हमारे अभीष्ट अपने दर्शन हमें दीजिये, प्रथम ग्रासहीमें मक्खीके समान पृथक् होजाना ठीक नहीं ॥ ४४ ॥ हाय !!! बड़े दुःखकी बात है कि, विधाताने तुम सुघड़के हमें दर्शनही क्यों कराये, हाँ, समझगई हमारे सन्तापही के लिये ईश्वरनें तुम्हें निर्माण किया है ॥ ४५ ॥ क्या तुम्हारे चित्तमें दया नहीं है, अथवा हमारे ऊपर तुम्हारी तबियत नहीं है ? क्या तुम धूर्त्त हो ? वा हमारे मनहीको ठगते हो ॥४६॥ क्या हमारा आपको विश्वास नहीं है, या आप हमारी

परीक्षा कर रहे हैं, अथवा तुम कलाओंके ज्ञाता वा मायावी हो ॥ ४७ ॥ अथवा यह बात है कि– आप विज्ञानमें प्रवेश करना तो जानते हैं और उसमें से निकलनेका उपाय आपको विदित नहीं है ॥ ४८ ॥ अथवा विनाही अपराध आप हमारे ऊपर क्रोधित होगये हैं ? अथवा यह हो सकता है कि, आप दूसरोंको धोखा देकर उनको दुःख देनाही

शारदः ॥४७॥ कच्चिच्चित्ते प्रवेष्टुं च वेत्सि विज्ञानलाघवम् ॥ कच्चिन्निष्क्रमणोपायं न जानासि कुतः पुनः ॥ ४८ ॥ कच्चिद्विनापराधं तु त्वमस्मासु प्रकुप्यसे ॥ कच्चिद् दुःखं विजानासि परेषां विप्रलंभनम् ॥४९॥ त्वद्दर्शनं विना नूनं हृदयेश्वर सांप्रतम् ॥ न जीवामोथ जीवामः पुनस्त्वद्दर्शनाशया ॥५०॥ अस्मांश्च नीयतां तत्र यत्र शीघ्रं गतो भवान् ॥ त्वद्दर्शनहरो धाता न्यदधादंकुरच्छिदम् ॥५१॥ सर्वथा दर्शनं देहि कारुण्यं भज सर्वथा ॥ पर्यंतं न प्रपश्यंति सर्वथा सज्जना जनाः ॥५२॥ इत्थं विलप्यता

जानते हैं ॥४९॥ हे हृदयेश ! संप्रति आपके दर्शन पाये विना हम जीवित नहीं रह सकतीं, और यदि जीवित रहीं भी तो आपके दर्शनोंकी आशाही से रहेंगी ॥ ५० ॥ जहाँ आप हैं, हमें भी शीघ्रही वहाँ ले चलिये, विधाताने आपके दर्शन हरकर हमें बड़ा दुःख दिया है ॥ ५१ ॥ जैसे बनै तैसे हमारे ऊपर दया करके हमें दर्शन दीजिये, क्योंकि सज्जन जन अन्तावस्थाका अवलोकन नहीं करते हैं ॥ ५२ ॥ इस प्रकार रोदन करती २ ये कन्याएँ बहुत देरतक तो वहाँ बाट

देखती रहीं, फिर पिताके भयसे शीघ्रही घरको चल दीं ॥ ५३ ॥ प्रेमकी बेड़ियोंसे जकड़ी हुई, विरहकी वेदनासे अत्यन्त व्याकुल जैसे तैसे धीरज धरकर वे अबलाएँ अपने घरको चली आईं ॥ ५४ ॥ सब आतेही जलयन्त्र (फुहारे) के निकट गिर पड़ीं तब उनकी माताओंने पूछा कि, यह क्या हुआ ? और तुम्हें इतना विलम्ब क्यों होगया ॥ ५५ ॥ इति श्रीमाघमास माहात्म्य भाषाटीकायां पंचदशोऽध्यायः ॥ १५ ॥

कन्या प्रतोद्यचबहुक्षणम् ॥ पितुर्भियागृहंगंतुंशीघ्रमारेभिरेगतिम् ॥ ५३ ॥ तत्प्रेमनिगडै-र्बद्धाभृशंविरहविक्लवाः ॥ कथंचिद्धैर्यमालंब्यताःस्वंस्वंगृहमागताः ॥५४॥ आगत्यपतिताः सर्वाजलयंत्रसमीपतः ॥ किमेतन्मातृभिःपृष्टाःकुतःकालात्ययोभवत् ॥५५॥ इति श्रीपद्मपुराणे-उत्तरखंडेमाघमाहात्म्येदिलीपवसिष्ठसंवादेगंधर्वकन्याविरहप्राप्तिर्नामपंचदशोऽध्यायः ॥१५॥

कन्याऊचुः ॥ क्रीडंत्यःकिंनरीभिस्तुसार्धंसंगीतकंमुदा ॥ संस्थितास्तेननज्ञातंदिव-सादिसरोवरे ॥ १ ॥ पाथःश्रांतावयंमातःसंतापस्तेननस्तनौ ॥ मोहेनमहतांवक्तुंनक्षेना

कन्याएँ बोलीं—किन्नरीगणोंके साथ सरोवरपर संगीतकी क्रीड़ा करते २ हमें समयका कुछ बोध न हुआ ॥१॥ और हे माता ! मार्गमें हम सब थक गईं, इसलिये हमारे स्तनोंमें कंप हो रहा है, और मोह विशेष होने के कारण

हम कुछभी वर्णन नहीं कर सकती हैं ॥ २ ॥ यों कहकर वे कुमारियें मणिभूमि में लोटने लगीं, और वे मुग्धाएं अपने आकार को छिपाकर माताओं से संभाषण करने लगीं ॥ ३ ॥ कोई प्रसन्न हो क्रीड़ामयूर को नहीं नचाती थीं और कोई पींजरे में पड़े हुए तोते को कौतूहल से नहीं पढ़ाती थीं ॥ ४ ॥ न कोई नकुल का लालन करती और न कोई

प्युत्सहामहे ॥ २ ॥ इत्युक्त्वालुलुठुस्तत्रमणिभूमौकुमारिकाः ॥ आकारंगोपयंत्यस्तामुग्धा-जल्पंतिमातृभिः ॥ ३ ॥ काचिन्नर्तयतिक्रीडामयूरंनमुदातदा ॥ नपाठयतितंकीरंपंजरेऽन्या-कुतूहलात् ॥ ४ ॥ लालयन्नकुलंनान्यानोल्लासयतिसारिकाम् ॥ अपरातीवसंमुग्धानैवक्री-डतिसारसैः ॥ ५ ॥ भेजिरेनविनोदास्तारेमिरेनैवमंदिरे ॥ ऊचिरेबांधवैर्नालंवीणावाद्यंन-चक्रिरे ॥ ६ ॥ कल्पद्रुमप्रसूनंयद्रसवत्तुसुधोपमम् ॥ मंदारकुसुमामोदिनपपुर्मधुरंमधु ॥ ७ ॥ योगिन्यइवताःकन्यानासाग्रन्यस्तलोचनाः ॥ अलक्ष्यध्यानसंतानाःपुरुषोत्तममानसाः ॥ ८ ॥

सारिका (मैंना) ही को खिलाती थीं, और अत्यन्त मुग्ध होने के कारण न कोई हंसों ही के साथ क्रीड़ा करती थीं ॥ ५ ॥ न विनोद करें और न मन्दिर में रमण ही करती थीं, न बन्धु बान्धवों से यथेष्ठ संभाषण करें और न वीणाही बजाती थीं ॥६॥ सुधा (अमृत) की समान सुन्दर रससे परिपूर्ण कल्पवृक्षके पुष्पों और और मन्दारके पुष्पोंके गन्धिसे महकते हुए मधुर मधुको भी वे नहीं पीती थीं ॥ ७ ॥ उन कन्याओं ने योगिनियों के समान अपनी नासि-

काके अग्रभाग में नेत्र लगा रक्खे थे, वे अदृष्ट व्यक्तिका ध्यान करती और उनके मनमें पुरुषोत्तम भगवान् की उपस्थिति थी ॥ ८ ॥ कभी तो वे झरोखों में छिनभर बैठकर जलयन्त्रका निरीक्षण करती थीं, उनके झरोखों के सन्मुख जलविन्दु बरसते थे और उनके आँगन में चन्द्रकान्त मणियें जड़ रही थीं ॥ ९ ॥ कभी सरोवर में उत्पन्न हुए कमलदलोंसे शय्या निर्माण करती थीं, और कभी सखियें शीतल कदलीके दलों से उनका व्यार करती थीं ॥ १० ॥ उन

चंद्रकांतमणिच्छन्नेस्वद्वारिकणद्रवे ॥ क्षणंवातायनेस्थित्वाजलयंत्रेणंक्षणात् ॥ ९ ॥ रचयंतिक्षणंशय्यादीर्घिकांभोजिनीदलैः ॥ वीज्यमानाःसखीभिस्ताःशीतलैःकदलीदलैः ॥ १० ॥ इत्थंयुगसमांरात्रिमन्वानास्तावरस्त्रियः कथंचिद्धीरतांकृत्वाविह्वलासज्वराइव ॥ ११ ॥ प्रातर्व्योममणिंदृष्ट्वामन्यमानाः स्वजीवितम् ॥ विज्ञाप्यमातःस्वांस्वांगौरींपूजयितुंगताः ॥ १२ ॥ स्नात्वातेनविधानेनपुष्पैर्धूपैर्यथातथा ॥ विधायपूजनंदेव्यागायंत्यस्तत्रताःस्थिताः ॥ १३ ॥

वरांगनाओं को इस प्रकार वह रात्रि युग के समान प्रतीत हुई, अतएव ज्वर से पीड़ित हुई सी उन अबलाओं ने विह्वल होते २ भी ज्योंत्योंकरके धीरज धरा ॥ ११ ॥ जब प्रभात हुआ तब सूर्यनारायण के दर्शन करने से उन्हें अपने २ जीवनकी आशा हुई, तब अपनी २ माताओं से निवेदन करके गौरीका पूजा करने को गईं ॥ १२ ॥ उन्होंने उसी विधिसे स्नान करके धूपदीप से देवी का पूजन किया और फिर वे गान करतीं २ वहाँ ही बैठगईं ॥ १३ ॥ उसी समय

वह ब्राह्मण भी अपने पिता के आश्रम से अच्छोद सरोवरमें स्नान करने को आया ॥ १४ ॥ अपने परममित्र उक्त ब्रह्मचारी का अवलोकनकर उन कन्याओंके नेत्र ऐसे प्रफुल्ल होगये, जैसे रात्रिके अन्तमें कमलानियें खिल जाती हैं ॥१५॥ उसी समय उन कन्याओं ने ब्रह्मचारी के समीप जाय हाथमें हाथ बाँधकर चारों ओर से उसको घेर लिया ॥ १६ ॥

एतस्मिन्नंतरेविप्रःस्नातुंसोपिसमागतः ॥ पित्राश्रमपदात्तस्मादच्छोदेचसरोवरे ॥१४॥ मित्रं-दृष्ट्वैवरात्र्यंतेनालिन्यइवकन्यकाः॥उत्फुल्लनयनाजातास्तंदृष्ट्वाब्रह्मचारिणम्॥ १५॥ गत्वात-देवताःकन्याःसमीपंब्रह्मचारिणः ॥ सव्यापसव्यबंधेनभुजपाशंचचक्रिरे ॥१६॥ गतोसिधूर्त-पूर्वेद्युर्गंतुमद्यनशक्यसे ॥ वृतस्त्वंनूनमस्माभिर्नात्रतेस्तुविचारणा ॥ १७ ॥ इत्युक्तोब्राह्मणः प्राहप्रहसन्बाहुपाशगः ॥ शुभ्माभिरुच्यतेभद्रमनुकूलंप्रियंवचः ॥ १८ ॥ प्रथमाश्रमनिष्ठस्य-किंतुनाद्यापिमेव्रतम् ॥ वेदाभ्यसनशीलस्यपारंयातिगुरोःकुले ॥ १९ ॥ आश्रमेयत्रयोधर्मो-

हे धूर्त ! कल तुम चले गये थे, पर आज नहीं जा सकते कारण कि, अब हमने तुम्हें घेर लिया है अतएव तुम्हें इसमें कुछ भी विचार न करना चाहिये ॥ १७ ॥ उक्त ब्राह्मण से जब इस प्रकार उन्होंने कहा तब उनकी भुजाओं के जाल में फँसेहुए उस विप्रने कहा कि, तुम शुभ अनुकूल और प्रियवचन कह रही हो ॥ १८ ॥ परन्तु मैं सबसे पहिले

ब्रह्मचर्य्याश्रम में उपस्थित रहकर गुरुकुल में वेदका अभ्यास कर रहा हूँ, और अभी वह मेरा व्रत समाप्त नहीं हुआ ॥ १६ ॥ जिस आश्रम का जो धर्म है, पण्डितों को उसकी रक्षा करनी चाहिये, सुतराम् हे कन्याओं! इससमय विवाह करना धर्म नहीं है ॥ २० ॥ उसके ऐसे वचन सुन सब मनोहर ध्वनिसे इस प्रकार कहने लगीं। जैसे वैशाख में कोकिला बोलती हैं ॥ २१ ॥ विद्वान् लोग कहते हैं कि-धर्म से अर्थ, अर्थसे काम और कामसे धर्म फलका उदय

रक्षणीयःसपंडितैः विवाहोयमतोमन्येनधर्मइतिकन्यकाः ॥ २० ॥ आकर्ण्यतस्यवाक्यानि-तमूचुस्तावचस्ततः ॥ सकलध्वनिसोत्कण्ठाःकोकिलाइवमाधवे ॥ २१ ॥ धर्मादर्थोथंतःका-माःकामाद्धर्मफलोदयः ॥ इत्येवंनिश्चितंशास्त्रं वर्णयंतिविपश्चितः ॥२२॥ सकामोधर्मबाहु-ल्यात्पुरस्तेसमुपागतः ॥ सेव्यतांविविधैर्भोगैःस्वर्गभूमिरियंततः ॥ २३ ॥ श्रुत्वातद्वचनंता-सांप्राहगंभीरयागिरा ॥ तथ्यंवोवचनंकिंतुसमाप्येहस्वकंव्रतम् ॥ २४ ॥ प्राप्यानुज्ञांगुरोःसर्व-

होता है, शास्त्रों का येही निश्चय है ॥ २२ ॥ धर्म अधिकता के कारण वोही काम तुम्हारे संमुख उपस्थित हो रहा है, अतएव विविधभोगों सहित उसका उपभोग करना चाहिये, तब यह भूमि स्वर्ग के समान प्रतीत होगी ॥२३॥ उनके ऐसे वचन सुन वह गंभीर वाणीसे बोला कि, यद्यपि तुम्हारा कथन सत्य है, तथापि मैं अपने व्रतको समाप्तकर गुरुमहाशय की आज्ञा पाय विवाह करूँगा अन्यथा नहीं, इस प्रकार कहनेपर वे फिर बोलीं कि हे सुन्दर! सचमुच

तुम मूर्ख हो ॥ २४ ॥ २५ ॥ दिव्य औषधि, दिव्य रसायन, निधिकी सिद्धि उत्तम कलाएँ, सुन्दरी स्त्रियें, मन्त्र और धर्म की सिद्धि, ये जब प्राप्त हों तब किसीको इनका निषेध करना न चाहिये ॥ २६ ॥ दैववशात यदि कार्य्य-सिद्धिको प्राप्त हो तो नितीज्ञ व्यक्तिको चाहिये कि, उसमें उपेक्षा न करे, कारण कि, उपेक्षा करने से फिर फलका

वैवाहंकर्मनान्यथा ॥ इत्युक्ताःपुनरूचुस्ताःस्फुटंमूढोसिसुन्दर ॥ २५ ॥ दिव्यौषधंब्रह्मरसा-यनंचसिद्धिर्निधेःसाधुकलावरांगनाः ॥ मंत्रस्तथासिद्धिरसश्चधर्मतोनेमानिषेध्याःसुधियासमागताः ॥२६॥ कार्यंहिदैवाद्यदिसिद्धमागतंतस्मिन्नुपेक्षान चयातिनीतिगः ॥ यस्मादुपेक्षा-नपुनःफलप्रदातस्मान्नदीर्घीकरणंप्रशस्यते ॥२७॥ सांद्रानुरागाःकुलजन्मनिर्मलाःस्नेहार्द्र-चित्ताःसुगिरःस्वयंवराः ॥ कन्यासुरूपाखलुचारुयौवनाधन्यालभंतेत्रनरास्तुनेतरे ॥२८॥

लाभ नहीं होता, अतएव आलस्य (अथवा टालवाल) करना अच्छा नहीं समझा जाता ॥ २७ ॥ गाढ़ अनुराग करनेवाली, निर्म्मलकुल में प्रादुर्भूत हुई, स्नेह से जिसका चित्त आर्द्र है, जिनका संभाषण उत्तम है, जोअपने आप वरनेकी इच्छा करती हों सुन्दरी और उत्तम यौवनशाली कन्याएँ अहोभाग्य पुरुषोंही को मिलती हैं, अन्य प्राणियों को नहीं ॥ २८ कहां तो हम उत्तम सुन्दरियें, और कहां यह वटुक तपस्वी ? अर्थात्—इस में और हम में परस्पर

बड़ा अन्तर है, यह बात सच मालूम होती है कि, दुर्घटका विधान करने में विधाता बड़ा चतुर है ॥ २९ ॥ इस हेतु संप्रति आप हमें स्वीकार करें तभी कल्याण हो सकता है, अन्यथा यदि आप हमारे साथ गान्धर्व विवाह न करेंगे तो हम जीवित नहीं रह सकतीं ॥ ३० ॥ जब उस धर्मज्ञ ब्राह्मण ने ऐसे वाक्य सुने तब वह कहने लगा कि, हे

क्वयंवरसुंदर्यः क्वायंतापसोवटुः ॥ दुर्घटस्यविधानेहिमन्येधातातिपंडितः ॥२९॥ तस्मा-
दस्मानिदानींतुस्वीकुर्यान्मंगलंभवान् ॥ गांधर्वेणविवाहेनह्यन्यथानोनजीवितम् ॥ ३० ॥
श्रुतवाक्यस्ततःप्राहब्राह्मणोधर्मवित्तमः ॥ भोमृगाक्ष्यःकथंत्याज्योधर्मोधर्मधनैर्नरैः ॥ ३१ ॥
धर्मश्चार्थकामश्चमोक्षश्चैतच्चतुष्टयम् ॥ यथोक्तंसफलंज्ञेयंविपरीतंतुनिष्फलम् ॥ ३२ ॥ नाका-
लेहंव्रतीकुर्यामतोदारपरिग्रहम् ॥ नक्रियाफलमाप्नोतिक्रियाकालंनवेत्तियः ॥ ३३ ॥ यतोधर्म-

मृगनयनियों ! जो मनुष्य धर्महीको अपना धन समझते हैं वे धर्मका परित्याग कैसे कर सकते हैं ॥ ३१ ॥ धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष इन चारोंको यदि यथोक्त विधिसे सेवन किया जाय तबही सफल हो सकते हैं, अन्यथा निष्फल समझना चाहिये ॥ ३२ ॥ मैंने व्रत धारण कर रक्खा है, अतएव मैं कुसमय स्त्रीका पाणिग्रहण नहीं कर सकता क्योंकि—जो मनुष्य क्रिया के समय को नहीं जानता उसकी क्रिया सफल नहीं हो सकती ॥ ३३ ॥ सुनो कन्यकाओं !

हमारा मन धर्मका विचार करने में निरत है, अतएव तुम्हें वरने की इच्छा नहीं करते ॥ ३४ ॥ उस ब्रा॰ के का ऐसा आशय जान हाथ जोड़े को छोड़ वे स्त्रियें परस्पर एक दूसरी की ओर अवलोकन करने लगीं, और प्रमोदनी ने उसके चरणोंको पकड़ लिया ॥ ३५ ॥ एवं सुशीला और सुस्वराने उसकी दोनों भुजा पकड़ली, इस प्रकार वे आलिंगन और

विचारेस्मिन्प्रसक्तंममममानसम् ॥ तस्माच्छृणुतहेकन्यानसमीहेस्वयंवरम् ॥ ३४ ॥ एवंज्ञात्वा-शयंतस्यसमीक्ष्यैताःपरस्परम् ॥ करात्करंविमुच्याथजग्राहांघ्रीप्रमोदिनी ॥३५॥ भुजौजगृ-हतुस्तस्यसुशीलासुस्वरातथा ॥ आलिलिंगसुताराचचुचुम्बेचन्द्रिकामुखम् ॥ ३६ ॥ तथा-पिनिर्विकारोसौप्रलयानलसन्निभः ॥ शशापब्रह्मचारीताःक्रोधेनात्यंतमूर्छितः ॥३७॥ पिशा-च्यइवमांलग्नास्ततपिशाच्योभविष्यथ ॥ एवंतेनाशुशप्तास्तास्तंसंत्यज्यपुरास्थिताः ॥ ३८ ॥ किमेतच्चेष्टितंपापह्यनागसिजनेत्वया ॥ प्रियंकृत्येऽप्रियंकृत्वाधिक्त्वांधर्मज्ञतांतव ॥३९॥अनु-

उसके चन्द्रवदन का चुंवन करने लगीं ॥ ३६ ॥ यद्यपि यह सब कुछ हुआ तथापि प्रलयकाल की अग्नि के समान उस ब्राह्मणमें किसी प्रकारका विकार नहीं हुआ, और उस ब्रह्मचारीने क्रोधसे मूर्छित हो उन सबको शाप दे दिया ॥३७॥ चूंकि पिशाचिनियों के समान तुम मुझे चिपट गई हो अतएव तुम पिशाचिनी ही हो जाओ, इस प्रकार उससे शापित होकर वे स्त्रियें उसका परित्याग कर उसके अगाड़ी खड़ी हो गईं ॥ ३८ ॥ अरे पापी ! हम निरपराधोंके प्रति तूने यह

क्या किया ? प्रियकार्य्य के परिवर्त्तनमें अप्रिय आचरण किया तुम्हारे इस धर्मज्ञान को धिक्कार है ॥ ३९ ॥ जो मनुष्य अपने अनुरागी भक्त और मित्रों के प्रतिद्रोहका आचरण करते हैं, हमने सुना है उन पुरुषों का दोनों लोक में सुख नष्ट हो जाता है ॥ ४० ॥ अतएव हमारे शाप से तूभी शीघ्रही पिशाच हो जा, यों कहने के अनन्तर वे अबलाएँ

रक्तेषुभक्तेषुमित्रेषुद्रोहकारिणः ॥ पुंसोलोकद्वयेसौख्यंनाशंयातीतिनःश्रुतम् ॥ ४० ॥ तस्मा-
त्त्वमपिनःशापात्पिशाचोभवसत्वरम् । इत्युक्त्वोपरताबालानिःश्वसंत्यःक्षुधाकुलाः ॥ ४१ ॥
तदाचान्योन्यसंरंभात्तस्मिन्सरसिपार्थिव । ताःकन्याब्रह्मचारी सःसर्वेपैशाचमागताः ॥४२॥
पिशाच्यःसपिशाचश्चक्रंदमानाः सुदारुणम् । क्षपयंतिविपाकंतंपूर्वोपात्तस्यकर्मणः ॥४३॥
स्वकालेतुफलंत्येवपूर्वोपात्तंशुभाशुभम् ॥ स्वच्छयाइवदुर्वारंदेवानामपिपार्थिव ॥४४॥क्रंदंति-

लम्बी २ साँस लेने लगीं, एवं मारे भूखके व्याकुल हो गईं ॥ ४१ ॥ हे राजन् ! तब परस्पर शाप देने के कारण उसी सरोवर में वे स्त्रियें ब्रह्मचारी और पिशाचनी पिशाच होगये ॥ ४२ ॥ पिशाच और पिशाचनियें, पूर्वकर्म के दारुणकर्म को रोदन कर २ के दिन व्यतीत करते थे ॥४३॥ हे राजन् ! पूर्वजन्मार्जित शुभाशुभ अपनी छाया के समान निवारण नहीं किया जा सकता, अतएव वह समय पाकर अवश्य ही फल प्रदान करता है ॥ ४४ ॥ उनके माता

पिता जहाँ तहाँ रोदन करते फिरते थे, उन अबलाओं को प्रमाद नहीं था, किन्तु प्रारब्धों का भोग अमिट होता है ॥ ४५ ॥ इसके अनन्तर वे पिशाच दुःखित हो भोजन के लिये सरोवर के तटपर इधर उधर विचरने लगे ॥ ४६ ॥ इस प्रकार जब बहुतसा समय व्यतीत होगया, तब मुनिसत्तम लोमशजी पौषमास की चतुर्दशी के दिन अच्छोदमें स्नान

पितरस्तासांमातरस्तत्रतस्थच ॥ अप्रमादश्चबालानांदैवंहिदुरतिक्रमम् ॥४५॥ ततऊर्ध्वंपिशाचास्तेआहारार्थेसुदुःखिताः ॥ इतस्ततश्चधावंतोवसंतिसरसस्तटे ॥४६॥ एवंबहुतिथेकालेलोमशोमुनिसत्तमः ॥ पौषेमासिचतुर्दश्यामच्छोदेस्नातुमागतः ॥४७॥ दृष्ट्वातंब्राह्मणंसर्वेपिशाचाःक्षुत्समाकुलाः॥ धावंतोहंतुकामास्तेमिलित्वायूथवर्तिनः ॥४८॥ दह्यमानासुतीव्रेणतेजसालोमशस्यच॥ असमर्थाःपुरःस्थातुंसर्वेतेदूरतःस्थिताः ॥ ४९ ॥ तत्रवेदनिधिर्विप्रस्तदैवहिसमागतः ॥ समीक्ष्यलोमशंराजन्साष्टांगंप्रणिपत्यसः ॥५०॥ उवाचसूनृतांवाचंबद्ध्वा-

करने को आये ॥ ४७ ॥ क्षुधा से व्याकुल हुए उन पिशाचों ने जब उस ब्राह्मण को देखा तब उसका वध करने की कामना से सब जुड़ मिलकर दौड़े ॥ ४८ ॥ परन्तु जब लोमशजी के तीव्र तेजसे वे सब भस्म होने लगे तब उनके संमुख खड़े होनेकी शक्ति न हुई किन्तु दूर जाकर खड़े होगये ॥ ४९ ॥ इतनेही में वहाँ वेदनिधि ब्राह्मण आया,

और हे राजन् ! उसने लोमशजी के दर्शन करते ही उनके चरणों में प्रणाम करके ॥ ५० ॥ हाथ जोड़के शिरनवाय वह मनोहर वाणी बोला कि—हे विप्र ! जब बड़े भाग्यका उदय होता है तभी साधुसमागम होता है ॥ ५१ ॥ जो मनुष्य गंगाआदि सब तीर्थों में नित्य स्नान करता है, और जो साधुसमागम करता है, उन दोनोंका संग करना बहुत उत्तम समझा जाता है ॥ ५२ ॥ हे विप्र ! गुरु (महात्मा) ओंका समागम दृष्ट और अदृष्ट फल प्रदान करता

शिरसिचांजलिम् ॥ महाभाग्योदयेविप्रसाधूनांसंगतिर्भवेत् ॥५१॥ गंगादिसर्वतीर्थेषुयोनरः स्नातिसर्वदा ॥ यःकरोतिसतांसंगंतयोःसत्संगतिर्वरा ॥५२॥ गुरूणांसंगमोविप्रदृष्टादृष्टफलो- भुवि ॥ स्वर्गदोरोगहारीचकिंतुसोपद्रवोमतः ॥५३॥ इत्युक्त्वाकथयामासपूर्ववृत्तांतमद्भुतम् ॥ इमागंधर्वकन्यास्ताबटुःसोयंममात्मजः ॥५४॥सर्वेपिशाचरूपेणमिथःशापविमोहिताः ॥दीना- ननास्तुतिष्ठंतितवाग्रेमुनिसत्तम ॥५५॥ त्वद्दर्शनेनबालानांनिस्तारोऽद्यभविष्यति॥सूर्योदयेत-

है, स्वर्ग प्रदान करने और रोगोंका हरनेवाला भी है किन्तु—इसमें उपद्रव बहुत हैं ॥ ५३ ॥ यों कहकर उक्त महात्माने पहिले अद्भुत वृत्तान्तको कह सुनाया कि, ये सब गन्धर्व कन्याएँ, हैं यह बटुक हमारा पुत्र है ॥ ५४ ॥ ये सब परस्पर एक दूसरे के शापसे मोहित हो पिशाचयोनि को प्राप्त होगये हैं, सो हे मुनिसत्तम ! ये सब अपने मुखकी आकृति को दीन बनाके तुम्हारे अगाड़ी खड़े हैं ॥ ५५ ॥ अब आपका दर्शन करने से बालाओं का उद्धार हो जायगा, सूर्योदय

होनेपर क्या अन्धकार गुफाओं में नहीं जा छिपता है ॥ ५६ ॥ हे राजन् ! यह सुन लोमशजी का चित्त दयासे आर्द्र हो गया, अतएव वे पुत्रके दुःखसे दुःखित हुए उक्त मुनिके प्रति बोले ॥ ५७ ॥ हमारी कृपासे शीघ्रही इन बालकोंको

मस्तोमः किंनलीयेतगह्वरे ॥५६॥ श्रुत्वातल्लोमशोराजन्कृपार्द्रीकृतमानसः ॥ प्रत्युवाचमहातेजास्तंमुनिंपुत्रदुःखितम् ॥५७॥ मत्प्रसादाच्चबालानांस्मृतिःसपदिजायताम् ॥ धर्मंचवच्मितंयेनमिथःशापोलयंव्रजेत् ॥५८॥ इति श्रीपद्मपुराणे उत्तरखंडे माघमाहात्म्ये वसिष्ठदिलीपसंवादे गंधर्वकन्याशापप्रदानंनामषोडशोऽध्यायः ॥ १६ ॥

स्मृति होगी, और अब हम उस धर्म का वर्णन करते हैं जिससे परस्परका शाप नष्ट होगा ॥ ५८ ॥ इति श्रीमाघमास माहात्म्य भाषाटीकायां षोडशोऽध्यायः ॥ १६ ॥

वेदनिधि बोला—हे महर्षे ! उस धर्म को शीघ्र बतलाइये जिसके करने से बालकों की मुक्ति हो, अब यह विलंब करने का समय नहीं है, क्योंकि शापकी अग्नि बड़ी प्रबल है ॥ १ ॥ लोमशजी बोले—ये लोग हमारे साथ विधिपूर्वक माघस्नान करें तब माघ के अन्त में इनकी शाप से मुक्ति हो जायगी, अन्यथा इनका उद्धार नहीं हो सकता ॥ २ ॥

वेदनिधिरुवाच ॥ महर्षेकथ्यतांधर्मोमुच्यंतेयेनबालकाः ॥ नायंकालोविलंबस्यशापाग्निर्दारुणोयतः ॥१॥ लोमशउवाच ॥ मयासार्धंप्रकुर्वंतुमाघस्नानंविधानतः ॥ शापान्मुच्यंतिमाघांतेनान्यथानिष्कृतिर्भवेत् ॥ २ ॥ शापःपापफलंविप्रपाप नाशोभवेन्नृणाम् ॥ माघस्नानेनतीर्थेचइतिमेनिश्चितामतिः॥३॥ सप्तजन्मकृतंपापंवर्तमानंचपातकम् ॥ माघस्नानंदहेत्सर्वंपुण्य तीर्थेविशेषतः ॥४॥ प्रायश्चित्तंनपश्यंतियस्मिन्पापेमुनीश्वराः ॥ पातकंपुण्यतीर्थेषुनश्येत्तदपिमाघतः ॥ ५ ॥ ज्ञानकृन्मानसेमाघस्तस्मान्मोक्षफलप्रदः ॥ हिमवत्पृष्ठतीर्थेषुसर्व-

हे विप्र ! शाप और पापका फल तीर्थ में माघस्नान करने से नष्ट होजाता है, हमारी समझमें यह निश्चय बात है ॥३॥ पहिले सात जन्मका किया हुआ और वर्तमान पाप माघस्नान एवं विशेषकर पुण्य तीर्थ में माघस्नान करने से नष्ट होजाता है ॥ ४ ॥ मुनीश्वरोंको जिस पापका कोई प्रायश्चित्त नहीं दीखता, पुण्यतीर्थ में माघस्नान करने से वह पापभी

नष्ट होजाता है ॥ ५ ॥ ज्ञानकृत पापभी माघस्नान से दूर होजाते हैं, और हिमालय के ऊपर तीर्थोंमें स्नान करने से सब पापों का नाश हो जाता है ॥ ६ ॥ वेदवादी महात्माओं ने माघस्नान अच्छोद में करने से इन्द्रलोक प्रदान करने वाला, और सब पापों का हरनेवाला कीर्त्तन किया है, एवं बदरिकाश्रम में माघस्नान करने से मोक्ष की प्राप्ति होती है ॥ ७ ॥ यदि नर्मदामें माघस्नान किया जाय तो सब पाप और दुःखोंका नाश; समस्त कामनाओं के फलकी

पापप्रणाशनः ॥६॥ इंद्रलोकप्रदोच्छोदेनिर्दिष्टोवेदवादिभिः ॥ सर्वपापहरोमाघोमोक्षदोबदरी-वने ॥७॥ पापहादुःखहारीचसर्वकामफलप्रदः ॥ रुद्रलोकप्रदोमाघोनार्मदेपापनाशनः ॥८॥ यामुनःसूर्यलोकायभवेत्कल्मषनाशनः ॥ सारस्वतोघविध्वंसीब्रह्मलोकफलप्रदः ॥९॥ विशाल फलदोमाघोविशालायांद्विजोत्तम ॥ पातकेंधनदावाग्निर्गर्भहेतुक्रियापहः ॥१०॥ विष्णुलोका-यमोक्षायजाह्नवःपरिकीर्तितः ॥ सरयूगंडकीसिंधुश्चंद्रभागाचकौशिकी ॥११॥ तापीगोदावरी-

प्राप्ति, अथच रुद्रलोक का लाभ होता है ॥ ८ ॥ यमुना में माघस्नान करने से सूर्यलोक की प्राप्ति और पापों का नाश होता है, और सरस्वती में माघस्नान करने से पापों का नाश होकर ब्रह्मलोक की प्राप्ति होती है ॥ ९ ॥ हे द्विजराज ! विशाला में माघस्नान करने से प्रभूत फलोंका लाभ होता है, जिस प्रकार दावाग्नि बनको भस्म कर देती है, इसी प्रकार माघस्नान पापों और गर्भवास को नष्ट करता है अर्थात्–माघस्नान करने से मोक्षकी प्राप्ति हो जाती है ॥ १० ॥

गंगाजी में माघ स्नान करने से विष्णुलोक अथवा मुक्ति की प्राप्ति होती है, सरयू, गंडकी सिन्धु, चन्द्रभागा और कौशिकी ॥ ११ ॥ तापी, गोदावरी, पायोष्णी, कृष्णवेणिका, कावेरी और तुङ्गभद्रा अथवा अन्य जो सामुद्र गामिनी नदियें हैं ॥ १२ ॥ उनमें स्नान करने से मनुष्य शीघ्रही निष्पाप हो स्वर्गलोक को चला जाता है नैमिषारण्य में स्नान करने से विष्णुभगवान् का सायुज्य और पुष्कर में माघस्नान करने से ब्रह्म का सामीप्य प्राप्त होता है ॥ १३ ॥

भीमापयोष्णीकृष्णवेणिका ॥ कावेरीतुंगभद्राचअन्यायाश्चसमुद्रगाः ॥१२॥ आशुमाघीनरोयातिस्वर्गलोकंविकल्मषः ॥ नैमिषेविष्णुसायुज्यंपुष्करेब्रह्मणोंतिकम् ॥१३॥ आखंडलस्यलोकोहिकुरुक्षेत्रेतुमाघतः ॥ माघोदेवह्रदेविप्रयोगसिद्धिफलप्रदः ॥ १४ ॥ प्रभासेमकरादित्येस्नानाद्रुद्रगणोभवेत् ॥ देवक्यांदेवतादेहोनरोभवतिमाघतः ॥१५॥ माघस्नानेनभोविप्रगोमत्यांनपुनर्भवः ॥ हेमकूटेमहाकालेओंकारेअमरेश्वरे ॥ १६ ॥ नीलकंठेर्बुदेमाघाद्रुद्रलोके-

कुरुक्षेत्र में माघस्नान करने से इन्द्रलोक मिलता है, देवसरोवर में माघस्नान करने से हे विप्र ! योगसिद्धि के फलकी प्राप्ति होती है ॥ १४ ॥ मकरके सूर्य अर्थात् माघमास में प्रभास क्षेत्रमें स्नान करने से रुद्रगण हो जाता है एवं देवकी में माघस्नान करने से मनुष्यको देवदेहका लाभ होता है ॥ १५ ॥ हे विप्र ! माघमें गोमती में स्नान करने से पुनर्जन्म नहीं होता, हेमकूट, महाकाल, ओंकार, अमरेश्वर, ॥ १६ ॥ नीलकंठ अर्बुदमें माघस्नान करनेसे रुद्रलोक में ऐश्वर्योंका

उपभोग करना होता है, मकरके सूर्य्यमें मनुष्य चाहे जिस नदी में स्नान करे ॥ १७ ॥ उसको समस्त कामनाओं के फलकी प्राप्ति होती है हे द्विजराज ! जिनको प्रयाग में माघस्नान करने को मिलजाय उनके अहोभाग्य हैं, क्योंकि गंगा यमुना के जल में स्नान करने से फिर जन्म नहीं होता ॥ १८ ॥ स्वर्गलोक में स्थित हुए देवता नित्य यह गान करते हैं कि, प्रयाग में माघस्नान बहुत दुर्लभ है, क्योंकि वहाँ माघस्नान करने से गर्भवेदना नहीं भोगनी पड़ती,

महीयते ॥ सर्वासांसरितांविप्रसंगमेमकरेरवौ ॥ १७॥ स्नानेनसर्वकामानामवाप्तिर्जायतेनृ-
णाम् ॥ माघस्तुप्राप्यतेधन्यैःप्रयागेद्विजसत्तमे ॥ अपुनर्भवदंतत्रसितासित जलंयतः ॥ १८॥
गायंतिदेवाःसततंदिविस्थामाघःप्रयागेकिलनोभविष्यति ॥ स्नानान्नरायत्रनगर्भवेदनांपश्यं-
तितिष्ठंतिचविष्णुसन्निधौ ॥ १९ ॥ मज्जंतियेपित्र्यहमत्रमानवास्तीर्थप्रयागेबहुपापकंचुकाः ॥
व्रजंतितेनोनिरयेषुधर्मिणः स्वर्गेशुभेचारुचरंतिदेववत् ॥ २० ॥ तीर्थैर्व्रतैर्दानतपोभिरध्वरैः

किन्तु विष्णुभगवान्के समीप स्थितिका लाभ होजाता है ॥ १९ ॥ अतिशय पापका आचरण करनेवाले भी यदि केवल तीनही दिन प्रयागमें माघस्नान करें तो उन्हें भी नरकमें जाना नहीं होता, किन्तु वे देवताओं के समान स्वर्गमें विचरते हैं ॥ २० ॥ पूर्वकालमें ब्रह्माजीने तीर्थव्रतदान, तप और यज्ञोंके साथ प्रयाग के माघस्नानको तुलामें

धारण किया तो माघस्नानही भारी उतरा अतएव उसीको सबसे अधिक समझना चाहिये ॥ २१ ॥ पवन, जल अथवा पत्तोंका भोजन कर देहको सुखाके चिरकाल संचित उग्र तपस्याओंका आचरण करने और योगाभ्यास करने से भी मनुष्योंको उस गति का लाभ नहीं होता, कि–जो गति माघस्नान करने से मिलती है ॥ २२ ॥ जो मनुष्य

सार्धंविधात्रातुलयाधृतंपुरा॥ माघेप्रयागस्यतयोर्द्वयोरभून्माघोगरीयानतएवसोधिकः ॥२१॥ वातांबुपर्णाशनदेहशोषणैस्तपोभिरुग्रैश्चिरकालसंचितैः॥ योगैश्चसंयांतिनरानतांगतिंस्नानेन-माघस्यहियांतियांगतिम् ॥ २२ ॥ स्नाताश्चयेमकरभास्करोदयेतीर्थेप्रयागेसुरसिंधुसंगमे ॥ तेषांगृहद्वारमलंकरोतिकिंभृङ्गावलिःकुंजरकर्णताडिता ॥ २३ ॥ योराजसूयाद्धयमेधयज्ञतः स्नानात्फलंसंप्रददातिचाधिकम्॥पापानिसर्वाणिविलोप्यलीलयानूनंप्रयागःसकथंनसेव्यते २४

मकरके सूर्यमें प्रभातसमय प्रयागराजमें गंगायमुनाके संगममें स्नान करते हैं, उनके द्वारपगहस्तिकर्ण ताडिका भ्रम-रावली क्या करेगी अर्थात् वे असमान्य धनाढ्य होंगे ॥ २३ ॥ जिस प्रयागराजमें माघस्नान करने से राजसूय अथवा अश्वमेध यज्ञ से भी अधिक फलकी प्राप्ति होती है, और जो तनिक देर में पापों का लोप कर देता है, उस प्रयागका सेवन क्यों न किया जाय ॥ २४ ॥ प्राचीनकालमें अवन्ति में वीरसेन नाम एक राजा हुआ था, उसने

नर्मदाके तटपर आकर राजसूय यज्ञ किया था ॥ २५ ॥ उसमें सोलह अश्वमेध यज्ञ किये उनके मार्ग सुवर्णसे सुशोभित थे, एवं सुवर्णके आभूषणोंसे वह शोभायमान थे ॥ २६ ॥ उस राजाने पर्वतके समान अन्नकी राशयें ब्राह्मणों को दान करके दीं, वह दाता देवताओंका भक्त गौ और सुवर्ण का दानी था ॥ २७ ॥ भद्रक नाम एक ब्राह्मण

अवंतिविषयेराजावीरसेनोऽभवत्पुरा ॥ नर्मदातीरमागत्यराजसूयंचकारसः ॥ २५ ॥ षोडशैरश्वमेधैश्चस्वर्णवाटविराजितैः ॥ स्वर्णभूषणयूपाढ्यैरोजेसोपियथाविधि ॥२६॥ प्रददौधान्यराशींश्चद्विजेभ्यःपर्वतोपमान्॥वदान्योदेवताभक्तोगोप्रदःससुवर्णदः।२७॥ब्राह्मणोभद्रकोनाम मूर्खोहीनकुलस्तथा ॥ कृषीवलोदुराचारःसर्वधर्मबहिष्कृतः ॥ २८ ॥ कृषिकर्मसमुद्विग्नोबंधुभिश्चाप्यसंस्कृतः ॥ इतस्ततःपरिभ्रम्यनिर्गतःक्षुत्प्रपीडितः॥२९॥ दैवज्ञैःसार्धमावेश्यप्रयागंससमाहितः ॥ महामाघीपुरस्कृत्यसस्नौतत्रदिनत्रयम् ॥ ३० ॥ अनघः स्नानमात्रेणभूत्वेह-

मूर्ख और हीनकुलका था, वह दुराचारी खेती करता और अन्य सब धर्मोंसे बहिष्कृत था ॥ २८ ॥ वह कृषिकर्मसे उद्विग्न होगया तब उसके बन्धुबान्धवोंने भी उसे निकाल दिया, अतएव वह इधर उधर घूमता २ क्षुधासे पीड़ित हो निकल चला ॥ २९ ॥ और ज्योतिषियों के साथ प्रयागराजको चला आया, और माघकी एकादशीसे तीन दिन-

तक उसने स्नान किया ॥ ३० ॥ प्रयागमें स्नानमात्र करनेसे वह निष्पाप हो सब ब्राह्मणोंमें उत्तम हो गया, तब प्रयागसे चलकर फिर वहाँही आया जहाँसे गया था ॥ ३१ ॥ वह राजा और वह ब्राह्मण दोनोंही एकसाथ मृतक होगये, मैंने इन्द्रके निकट उन दोनोंकी गति देखी ॥ ३२ ॥ तेज, रूप, बल, स्त्रियें, विमान, आभूषण, कल्पवृक्षके पुष्पोंकी माला, नृत्य और गीत ये सब सामग्री उन दोनोंकी समानही थी ॥ ३३ ॥ प्रयागक्षेत्रका यह माहात्म्य

सद्विजोत्तमः ॥ प्रयागाच्चलितस्तत्रपुनर्यस्मात्समागतः ॥ ३१ ॥ सराजासोपिविप्रश्चविपन्नावेकदातदा ॥ तयोर्गतिःसमादृष्टामयाशक्रस्यसन्निधौ ॥३२॥ तेजोरूपंबलंस्त्रैणंदेवयानंविभूषणम् ॥ पारिजातमयीमालानृत्यगीतंतयोःसमम् ॥ ३३ ॥ इतिदृष्टंहिमाहात्म्यंक्षेत्रस्यकथमुच्यते ॥ माघःसितासितेविप्रराजसूयैःसमोमतः ॥ ३४ ॥ धनुस्त्रिशतविस्तीर्णेसितनीलांबुसंगमे ॥ अपुनरावृत्तिर्माघीराजसूयोपुनर्भवत् ॥ ३५ ॥ माघमासीयवातोपिसितासित-

हमने देखा कि, जिसका वर्णन नहीं किया जा सकता है, सुतराम् हे विप्र ! गंगायमुनाके संगममें माघस्नान करनेसे राजसूययज्ञ के समान फलका लाभ होता है ॥ ३४ ॥ जिसके विस्तारका प्रमाण तीन सौ धनुषका है, ऐसे गंगायमुनाके संगम में जो मनुष्य माघस्नान करता है उसका पुनर्जन्म नहीं होता, बल्कि राजसूययज्ञ करनेवालेका पुनर्जन्म भी होता है ॥ ३५ ॥ माघमासकी वायु गंगायमुनाके जलका स्पर्श कर जिसके अगमें लगती है, अवश्यही

अधर्म उसके शरीरका स्पर्श नहीं कर सकते क्योंकि—यह वायु महापातकोंका भी नाश करनेवाली है ॥ ३६ ॥ हे द्विज ! विशेष कहनेसे क्या प्रयोजन निश्चित बात सुनो अन्य तीर्थोंमें कियेहुये पापोंका फल भी माघस्नान नष्ट कर देता है ॥ ३७ ॥ इस विषयमें पिशाचमोचन नाम प्राचिन इतिहास तुम्हारेप्रति वर्णन करते हैं, तुम सावधान हो

जलंस्पृशेत् ॥ अधर्म्यंनस्पृशेन्नूनंमहापातकहाहिसः ॥३६॥ किमत्रबहुनोक्तेनश्रूयतांद्विजनि-श्चितम् ॥ समुद्भूतफलंपापंतीर्थेमाघःप्रणाशयेत् ॥ ३७ ॥ अत्रतेकथयिष्यामिसावधानमतिः-शृणु॥पिशाचमोचनंनामइतिहासंपुरातनम्॥ ३८॥शृण्वंत्यप्सरसोबालाःशृणोतुत्वत्सुतस्तथा ॥ मत्प्रसादात्स्मृतिर्लब्ध्वापैशाच्यान्मुक्तिभागिनः ॥३९॥ पुरादेवद्युतिर्विप्रोवैष्णवोवेदपारगः ॥ पिशाचंमोचयामासकरुणानीरसागरः ॥ ४० ॥

इति श्रीपद्मपुराणे उत्तरखंडे माघमाहात्म्ये वशिष्ठदिलीपसंवादे सप्तदशोऽध्यायः ॥ १७ ॥

श्रवण करो ॥ ३८ ॥ अप्सराओंकी कन्या तथा तुम्हारा पुत्र ये सब श्रवण करैं, हमारी कृपासे स्मृतिका लाभ कर पिचाशयोनिसे मुक्तिलाभ करेंगे ॥ ३९ ॥ पूर्वकालमें दयासागर देवद्युति नाम वैष्णवने पिशाचोंको मुक्त किया था ॥ ४० ॥ इति श्रीमाघ० माहात्म्य भाषाटीकायां सप्तदशोऽध्यायः ॥ १७ ॥

वेदनिधि बोला—देवद्युति कहाँ रहता था, वह किसका पुत्र था, उसका नियम और जप क्या था ? वह वैष्णव कैसे हुआ और उसने किस पिशाच को मुक्त किया था ॥ १ ॥ हे महामुनि ! यह सब वृत्तान्त विस्तार पूर्वक हमारे प्रति वर्णन करिये, आपकी कृपासे अतीव पुण्यदायक इस कौतूहलको हम सुनलेंगे ॥ २ ॥ लोमशजी बोले-सदके

वेदनिधिरुवाच ॥ कुत्रस्थितः कस्यपुत्रोनियमःकोस्यत्राजपः ॥ केनवावैष्णवोवृत्तः कःपिशाचःसुमोचितः ॥ १ ॥ एतद्विस्तरतःसर्वंकीर्तयस्वमहामुने ॥ कौतूहलंमहापुण्यंशृणुमस्त्वत्प्रसादतः ॥ २ ॥ लोमशउवाच ॥ प्लक्षप्रस्रवणेपुण्येसरस्वत्यास्तटेशुभे ॥ तत्राश्रमपदंतस्यशैलमाश्रित्यशोभने ॥ ३ ॥ शालैस्तालैस्तमालैश्चबिल्वैर्बकुलपाटलैः ॥ तिंतिडीचिरबिल्वैश्चचूतचंपककाननैः ॥ ४ ॥ करंजैःकोविदारैश्चकेसरैःकुंजराशनैः ॥ तिलकैःकर्णिकारैश्चकुंभैःखदिरतिंदुकैः ॥ ५ ॥ वानीरैःसाल्वजंबीरैर्वृंहदुंबरवेतसैः ॥ साकोटैरटरूपैश्चकर-

पवित्र स्रोत सरस्वतीके शुभ तटपर पर्वतके ऊपर उसका सुन्दर निवासस्थान था ॥ ३ ॥ शाल, ताल, तमाल, बिल्व (बेल), बकुल, पाटल, तिंतड़ी (इमली), चिरबिल्व (नखमाल,) आम और चंपेके वृक्ष ॥ ४ ॥ करंज (कंजुए) कोविदार (बिजौरा), केसर, तिलक, कर्णिकार (कनेर), कुम्भ, खदिर (खैर) और तेंदू ॥ ५ ॥ वानीर,

साल्व, जंबीर (जँभीरीनींबू), गुलर, बेत, आखोट आड़ू करहाट, और वटवृक्ष ॥ ६ ॥ कुटज, पालाश, अकाश, जामुन, नीम, कदम्ब, दूधिया करमर्दक ॥ ७ ॥ बिजौरा नारंगी और केलेकी श्रेणी, बढ़ल और सदा फलनेवाले नारियल ॥ ८ ॥ सप्तच्छद, त्रिपत्र, सिरस, उत्तम आँवले, कर्कन्धु, लकुच, पारिभद्र और वचादिक ॥ ९ ॥ केतकी,

हाटैर्वटद्रुमैः ॥ ६ ॥ घोंटाकुटजपालाशैरशोकैःशोकहारकैः ॥ जंबूनिंबकदंबैश्चक्षीरिका-करमर्दकैः ॥७॥ बीजपूरैःसनारिंगैरंभाराजिविराजितैः ॥ पनसैरसवद्भिश्चनारिकेलैःसदा-फलैः ॥ ८ ॥ सप्तच्छदैस्त्रिपत्रैश्चशिरीषामलकैः शुभैः ॥ कर्कंधूलकुचैरक्तैःपारिभद्रैर्वचा-दिभिः ॥ ९ ॥ केतकैः शिशुमारैश्चतगरैः कुंदमल्लिकैः ॥ पद्मेंदीवरकह्लारमालतीयूथिका-दिभिः ॥ १० ॥ मालतीमोगरैश्चैवजातीफलविराजितैः ॥ पुन्नागैःकिंशुकैश्चैवबर्बरीतुलसी-द्रुमैः ॥ ११ ॥ आश्रमोरमणीयःसद्रुमैर्नानाविधैर्द्विज ॥ वनमध्येनदीयातिपुण्यतोयासर-

शिशुमार, तगर कुंदमल्लिका, कमल, नीलकमल, कल्हार, मालती, और यूथिका आदि ॥ १० ॥ मालतीमोगर, जातीफल (जायफल), पुन्नाग (नागकेसर), किंशुक (सुआटेसू), बर्बरी, और तुलसी के वृक्ष ॥ ११ ॥ इत्यादि अनेक वृक्षोंसे वह आश्रम खूबही रमणीय हो रहा था और उसी वनके बीचमें पवित्र जलवाली सरस्वती नदी

बहरही थी ॥ १२ ॥ मदमाती कोमलध्वनिसे सारस वहां नित्यही कूजते रहते थे, कोयलें कूकती और भौंरे गुंजारते रहते थे ॥ १३ ॥ हे विप्र ! तोतेमैनाओंके शब्दसे उस वनमें बड़ा कोलाहल होता रहता था, अथच उस उत्तम वनमें भांति २ के जंगली जीव विचरते रहते थे ॥ १४ ॥ वहांके वृक्ष सदाही फूले फले रहते थे, अथच वह वन रजके कणोंसे

स्वती ॥ १२ ॥ कूजंतिसारसास्तत्रमदस्निग्धकलंसदा ॥ नदंतिकोकिलाःशब्दंगुंजंतिचमधुव्रताः ॥ १३ ॥ बहुकोलाहलंविप्रतद्वनंशुकसारिभिः ॥ चरंतिश्वापदास्तत्रविविधाःकाननोत्तमे ॥ १४ ॥ सदाफलंसदापुष्पंपरागकणधूसरम् ॥ आच्छन्नंकाननंसर्वंमधुवृक्षैःसमंततः ॥ १५ ॥ नवपल्लवसंजातमञ्जरीभरवल्लिभिः ॥ आश्लिष्टमभितोरम्यंप्रियाभिरिववल्लभः ॥ १६ ॥ तस्यशापभयात्त्रस्तोवातोवातिसमंततः ॥ नवर्षत्यश्मभिर्मेघानशोषयतिभास्करः ॥ १७ ॥ वननोवद्रवंतद्धिसदासिद्धनिषेवितम् ॥ आह्लादजनकंनित्यंवनंचैत्ररथंयथा ॥ १८ ॥ तस्मिन्व-

सदैव धुंधला रहता था ॥ १५ ॥ जिनमें नई मंजरी और नवपल्लव उगे हैं ऐसी बेलियें वृक्षोंसे इसप्रकार लिपटी रहतीथीं, जैसे अपने पतिको स्त्रियें आलिंगन करती हैं ॥ १६ ॥ उनके शापसे भयभीत हो, चारों ओर वायु चलती रहती थी, पाषाणवृष्टि कभी नहीं होती थी, और सूर्यनारायण शुष्क नहीं करते थे ॥ १७ ॥ उस वनमें कोई भी उपद्रव नहीं था,

भा.भा. १८२

किन्तु—वहाँ नित्यही सिद्ध निवास करते थे, विशेष क्या कहैं, वह वन चैत्ररथ वनकी समान आनन्द जनक था ॥१८॥ उसी वनमें द्विजोत्तम धर्मात्मा देवद्युति निवास करता था, यह सुमित्रविप्रका पुत्र था, और उसे लक्ष्मीपति भगवानसे वरका लाभ हुआ था ॥१९॥ सदैव आत्मनिग्रह करनेवाले उस महात्माका नियम सुनो, ग्रीष्म ऋतुमें वह सूर्य्यमें दृष्टि लगाकर पंचाग्नितपा करता था ॥ २० ॥ मेघमाला जिस समय वर्षा करती थी उस समय मैदानमें बैठकर तप करता

सतिधर्मात्मादेवद्युतिद्विजोत्तमः ॥ पुत्रःसुमित्रोविप्रस्यलब्धोलक्ष्मीपतेर्वरः ॥ १९ ॥ नियमः श्रूयतांतस्यसर्वदानियतात्मनः ॥ ग्रीष्मेपञ्चतपानित्यंसूर्यन्यस्तविलोचनः ॥२०॥ वर्षत्काद-बिनीजालेवर्षास्वभ्रावकाशगः ॥ वातेप्रवातेनिष्कंपोद्धुःसहोहिमवानिव ॥ २१ ॥ वसत्यप्सु-सहेमंतेहदेसारस्वतेद्विज ॥ उपस्पृशतिकालेसत्रिवारंवारिनिर्मलम् ॥२२॥ पितॄन्देवानृषीन्नित्यं संतर्पयतिश्रद्धया ॥ ब्रह्मयज्ञपरोनित्यंसत्यवादीजितेंद्रियः ॥२३॥ भूमौविश्राम्यविश्रांतःप्रद-

था और पवन चलने से हिमालयके समान अचल रहता था ॥ २१ ॥ हे द्विज ! हेमन्तऋतु (पौष—माघ) में सारस्वत सरोवरमें बैठके तप करता था, और तीनों समय निर्मल जलका स्पर्श करता था, ॥ २२ ॥ वह सत्यवादी और नित्य जितेन्द्रिय ब्रह्मयज्ञमें तत्पर रहकर सदैव पितरों देवताओं और ऋषियोंको सन्तुष्ट किया करता था ॥ २३ ॥ भूमिके ऊपर विश्राम लेकर वह भगवान्की प्रार्थना किया करता था, वनकी वस्तुओंसे अग्निहोत्र करता और श्रद्धा-

भा.टी. अ.१८ १८२

पूर्वक अतिथियोंकी पूजा किया करता था ॥ २४ ॥ वह महात्मा नित्यही चान्द्रायण व्रतकी विधिसे अपने समयको व्यतीत किया करता था, और अपने आप पतित हुए फल तथा पत्तोंका भक्षण किया करता था ॥ २५ ॥ उद्वेग परित्याग पूर्वक वह वेद वेदांगपारगामी तपश्चर्यामें निमग्न रहता था, उसके शरीरमें नसें और अस्थियेंही शेष रह गई

ध्योप्रार्थयन्हरिम् ॥ वन्यैर्जुहोत्यग्निहोत्रंश्रद्धयातिथिपूजकः ॥२४॥ चांद्रायणविधानेनकालं नयतिसर्वदा ॥ स्वयंविगलितैःपत्रैःफलैर्वृत्तिंसमीहते ॥ २५ ॥ अनुद्विग्नस्तपोनिष्ठोवेदवेदांग-पारगः ॥ धमनीविकरालोसावस्थिमात्रकलेवरः ॥ २६ ॥ इत्थंजगामवर्षाणांसहस्रंतस्यका-नने ॥ तदाजज्वालशैलोऽसौतपसस्तस्यतेजसा ॥ २७ ॥ सोढुंनशक्यतेभूतैस्तेजस्तस्य-महात्मनः ॥ वैश्वानरइवाभातिप्रज्वलंस्तपसाद्विज ॥ २८ ॥ गतवैराणिभूतानिसमजायं-तत्तद्वने ॥ मृगव्याघ्राखुमार्जारामिथःक्रीडंतिनिर्भयाः २९ ॥ अन्योपिनियमस्तस्यश्रूयता-

थीं ॥ २६ ॥ उस वनमें इस प्रकार तप करते २ उसको सहस्र वर्ष व्यतीत होगये, तब उस तपसीके तपके तेजसे पर्वत प्रदीप्त हो गया ॥२७॥ सुतराम् उस महात्माके तेजको किसी प्राणीमें सहन करनेकी शक्ति नहीं रही, हे द्विज ! उस समय वह तपके द्वारा अग्निके समान प्रदीप्त हो रहा था ॥ २८ ॥ उस वनमें प्राणियोंने परस्पर वैर त्याग दिया था, सिंह और मृग, बिलाव और मूसे निर्भय हो साथ २ क्रीड़ा करते थे ॥ २९ ॥ उसके अत्यन्त दुर्लभ एक और

भी नियम था, उसे सुनो ! वह नित्य तीनों समय श्रीमन्नारायणका पूजन किया करता था ॥३०॥ श्रीविष्णुभगवान्‌के ध्यानमें निरत हो महकतेहुए अछूते सहस्र पुष्पोंसे वेदसूक्तकी विधिके अनुसार भगवान्‌को पूजता था ॥ ३१ ॥ विशेष क्या कहैं विष्णुभगवान्‌को प्रसन्न करनेके लिये वह ब्राह्मणसे भी उपाय करता था, और दधीचिके वरदानसे वह

मतिदुर्लभः ॥ नारायणंत्रिकालंससंपूजयतिनित्यशः ॥ ३० ॥ पुष्पाणांतुसहस्रेणविकचेन-सुगंधिना ॥ वेदसूक्तविधानेनविष्णुध्यानपरायणः ॥३१॥ विष्णोःसंप्रीतयेविप्रःकुरुतेकर्मचा-खिलम् ॥ दधीचेर्वरदानात्ससंजातोवरवैष्णवः ॥३२॥ एकदामासिवैशाखेएकादश्यांमुदा-न्वितः ॥ पूजांकृत्वाहरेरम्यांविचित्रामकरोत्स्तुतिम् ॥ ३३ ॥ तदैवखगमारुह्यदेवदेवोहरिः स्वयम् ॥ आजगामपुरस्तस्यतयास्तुत्याऽतिहर्षितः ॥ ३४ ॥ तंदृष्ट्वागरुडारूढंप्रत्यक्षंजल-दच्छविम् ॥ चतुर्बाहुंविशालाक्षंसर्वालंकारभूषितम् ॥ ३५ ॥ उद्भूतपुलकोविप्रःसानंदजल-

उत्तम वैष्णव भक्त होगया ॥ ३२ ॥ एकबार वैशाखकी एकादशीके दिन आनन्दमें मग्न हो हरिभगवान्‌को पूजाकर वह विचित्र स्तुति करने लगा ॥ ३३ ॥ तब उसकी स्तुतिसे प्रसन्न हो देवाधिदेव श्रीविष्णुभगवान् गरुडजीके ऊपर आरूढ हो स्वयं उसके समक्ष आके उपस्थित हुए ॥ ३४ ॥ जब उस ब्राह्मणने गरुडके ऊपर आरूढ, मेघके समान

नीली छविवाले चतुर्भुज और बड़े २ नेत्रोंवाले, समस्त आभूषणोंसे अलंकृत भगवान्‌को प्रत्यक्ष देखा, ॥ ३५ ॥ तब उसके शरीरमें पुलक होगया नेत्रोंमें आनन्दके आँसु भर आये, अतएव वह अपने आपको कृतकृत्यमानके भूमिके ऊपर शिर रखकर प्रणाम करने लगा ॥ ३६ ॥ ब्रह्मांडभरमें उसके हर्ष की सीमा न रही, और वह साक्षात् ब्रह्म-स्वरूपही होगया, अतएव उसे देहकी भी सुधि न रही ॥ ३७ ॥ तब भगवान् वैष्णवमुनिसे प्रेमपूर्वक कहने लगे कि,

लोचनः ॥ जगामशिरसाभूमौकृतकृत्यमनास्तदा ॥ ३६ ॥ नममौतेनहर्षेणसब्रह्मांडोदरेपिहि ॥ नसस्मारनिजंदेहंब्रह्मीभूतइवाभवत् ॥ ३७ ॥ ततःसभाषितःप्रीत्याहरिणावैष्णवोमुनिः ॥ देवद्युतेविजानामिमद्भक्तस्त्वंमदाश्रयः ॥ ३८ ॥ संन्यस्ताखिलकर्मासिमद्भावोमन्मनाःसदा वरंब्रूहिप्रसन्नोस्मिस्तोत्रेणानेनचानघ ॥ ३९ ॥ इतिश्रुत्वाहरेर्वाक्यंप्रत्युवाचसतापसः ॥ देव-देवारविंदाक्षस्वमायाधृतविग्रह । ४० ॥ त्वद्दर्शनात्सदादेवदुर्लभोनापरोवरः ॥ ब्रह्मादयःसुराः

हे देवद्युति ! मैं जानता हूँ तुम हमारे भक्त अतएव हमारे ही आश्रित हो ॥ ३८ ॥ तुमने अखिलकर्मोंका परित्याग कर दिया है, तुम्हारे सब भाव मेरेही विषे हैं, तुम्हारा मन सदैव मेरे विषैही लगा रहता है, हम तुम्हारे इस स्तोत्रसे प्रसन्न हैं अतएव हे निष्पाप ! तुम हमसे वर माँगो ॥ ३९ ॥ हरिके ऐसे वाक्य सुन वह तपस्वी कहने लगा, हे देवाधिदेव ! हे कमलनयन ! आपने अपनी मायासे देह धारण किया है ॥ ४० ॥ आपके दर्शन से अधिक

और कुछ भी वर दुर्लभ नहीं है, ब्रह्मादिक देवता, सनकादिक योगी, एवं कपिलादिक सिद्धमहात्मा ये सबही आपके दर्शन करने की अभिलाषा करते हैं ॥ ४१ ॥ मैं अथवा हम इत्यादि ममत्वकी फाँसी, शुभाशुभ कर्म-बन्धन ये सब अपने २ साधनों सहित आपके दर्शन होतेही दग्ध हो जाते हैं ॥ ४२ ॥ सो जन्म कर्म और बुद्धिका

सर्वेयोगिनःसनकादयः ॥ त्वांसाक्षात्कर्त्तुमिच्छन्तिसिद्धाश्चकपिलादयः ॥४१॥ अहंममेति-पाशायेमोहलोभाःशुभाशुभाः ॥ सहेतुकाश्चदह्यंतेदृष्टेत्वयिपरावरे ॥ ४२ ॥ जन्मनःकर्मणो-बुद्धेराविर्भूतंफलंमम ॥ यदृष्टोसिजगन्नाथवांछितंकिमतःपरम् ॥४३॥ नवरार्थंहिदेवशत्व-त्पादपंकजंहृदि ॥ चिंतयामिसदाभक्त्यात्वद्गतेनांतरात्मना ॥४४॥ इममेववरंयाचेत्वद्भक्ति-रचलामम ॥ अस्तुवैकमलानाथप्रार्थयेनापरंवरम् ॥ ४५ ॥ इतिश्रुत्वावचस्तस्यप्रसन्नवदनो-हरिः ॥ प्रत्युवाचप्रसन्नात्माएवमस्तुद्विजोत्तम ॥ ४६ ॥ अन्यस्तेतपसःकश्चित्प्रत्यूहोनभवि-

फल हमें प्राप्त होगया कि—आपके दर्शन मिल गये, हे जगन्नाथ ! इससे अधिक और क्या माँगू ॥ ४३ ॥ मेरे हृदयमें आपके चरणकमल उपस्थित हैं अतएव अन्य वरकी योग्यताही नहीं है, केवल यह अभिलाषा है कि, आपके प्रति मन लगाय सदैव भक्तिसे आपहीका ध्यान करता रहूँ ॥ ४४ ॥ हे लक्ष्मीकान्त ! मैं केवल यही वर माँगता हूँ कि आपकी अचलभक्ति हो, बस और कुछ भी मैं नहीं चाहता ॥ ४५ ॥ उसके ऐसे वचन सुन भगवान् प्रसन्न हो बोले

कि–हे द्विजराज ! ऐसाही होगा ॥४६॥ और तुम्हारे तपमें विघ्न भी कोई किसी प्रकारका उपस्थित न होगा ॥ ४७ ॥ और तुम्हारे निर्माण किये इस स्तोत्रको जो मनुष्य पढ़ेंगे, उनके हृदयमें हमारी दृढनिश्चल भक्ति होगी ॥४८॥ और उनके संपूर्ण धर्मकृत्य भी अंगोंसहित परिपूर्ण हो जायँगे, और ज्ञानमें उनकी निश्चल निष्ठा होगी ॥ ४९ ॥ यों कहकर

ष्यति ॥ ४७ ॥ एतच्चत्वत्कृतंस्तोत्रंयेपठिष्यंतिमानवाः ॥ तेषांमद्विषयाभक्तिर्निश्चलाचभविष्यति ॥ ४८ ॥ धर्मकार्यंचयत्किंचित्सांगंसर्वंभविष्यति ॥ ज्ञानेचपरमानिष्ठातेषांस्थास्यतिनिश्चला ॥ ४९ ॥ इत्युक्त्वांतर्हितस्तत्रदेवदेवोजनार्दनः ॥ देवद्युतिस्तदारभ्यनारायणपरोऽभवत् ॥ ५० ॥ इति श्रीपद्मपुराणे उत्तरखंडे माघमाहात्म्ये वसिष्ठदिलीप संवादे देवद्युति वरप्रदानंनामाष्टादशोऽध्यायः ॥ १८ ॥

देवाधिदेव श्रीजनार्दनभगवान् वहाँही अन्तर्धान होगये, उसी दिनसे देवद्युति भी नारायणकी भक्तिमें तत्पर होगया॥५०॥ इति श्रीमाघमास माहात्म्य भाषाटीकायां अष्टादशोऽध्यायः ॥ १८ ॥

वेदनिधि बोला—हे महर्षि ! आपने आज मुझे गंगाजीके समान इस विष्णु संगतिसे कृपा पूर्वक पवित्र कर दिया ॥ १ ॥ उस निष्पाप ब्राह्मणके द्वारा किया हुआ वह कौनसा स्तोत्र है, जिससे श्रीविष्णुभगवान् प्रसन्न हुए थे, यह मुझे सुनाइये, कारण कि, मुझे अतीव कौतूहल है ॥ २ ॥ मैं समझता हूँ आपकी कृपासे मेरा मनोरथ पूर्ण हो

॥ वेदनिधिरुवाच ॥ महर्षेऽनुगृहीतोस्मिकथयापावनीकृतः ॥ अनयाविष्णुसंगत्या-गंगयेवाहमद्यवै ॥ १ ॥ किंतत्स्तोत्रंसमाख्याहिप्रसन्नोयेनमाधवः ॥ तस्यानघस्यविप्रस्यमह-त्कौतूहलंमम ॥ २ ॥ त्वत्प्रसादादहंविप्रमन्येप्राप्तंमनोरथम् ॥ महतांसंगतिःकस्यमहत्त्वायन-कल्पते ॥ ३ ॥ कथयस्वप्रसादेनविष्णोः स्तोत्रमनुत्तमम् ॥ येनतुष्टःसभगवान्ददौतस्यच-दर्शनम् ॥ ४ ॥ लोमशउवाच ॥ कथयामिरहस्यंतेयज्जाप्यंस्तोत्रमुत्तमम् ॥ प्राग्गृहीतं-सुपर्णेनगरुडान्मर्यिचागतम् ॥ ५ ॥ अध्यात्मगर्भसारंतन्महोदयकरंशुभम् ॥ सर्वपापहरंविप्र-

जायगा, भला बड़ोंकी संगति किसको बड़ा नहीं बना देती है ॥ ३ ॥ अब आप कृपाकरके विष्णुभगवान्का सर्वोत्तम वह स्तोत्र सुनाइये जिससे सन्तुष्ट होकर नारायणने उस महात्माको दर्शन दिये ॥ ४ ॥ लोमशजी बोले—अब हम गुप्तभेद वर्णन करते हैं, जप करनेके योग्य उस उत्तम स्तोत्रको प्रथम तो गरुड़जी ने प्राप्त किया और उनसे मुझे

उपलब्ध हुआ ॥ ५ ॥ वह स्तोत्र वेदान्तके गूढ़तत्त्वोंका सार है, अथच वह शुभ और प्रभूत उदयका करनेवाला है, उससे सब पाप नष्ट हो जाते हैं। हे विप्र! तथा उससे परम आत्मज्ञानका भी लाभ होता है ॥ ६ ॥ हे वासुदेव! आप विश्वस्वरूप और चक्रधारी हैं, हे कृष्ण! आपको भक्ति प्यारी है, आप जगत्के स्वामी और धनुषधारी हैं सुतराम् हम आपको नमस्कार करते हैं ॥ ७ ॥ आप सर्व साधारणरूपसे स्तुति करनेवाले, सर्व साधारणके द्वारा

ह्यात्मज्ञानकरंपरम् ॥ ६ ॥ ॐनमोवासुदेवायनमोविश्वायचक्रिणे ॥ भक्तिप्रियायकृष्णाय-जगन्नाथायशार्ङ्गिणे ॥ ७ ॥ स्तोतास्तुत्यःस्तुति सर्वंजगद्विष्णुमयंयदा ॥ तदाकःस्तूयते-केनभक्तिर्मोदकरीनृणाम् ॥ ८ ॥ यस्यदेवस्यनिःश्वासोवेदाःसांगाः ससूत्रकाः ॥ कास्तुतिः प्रमुदेतस्यभक्त्याहंमुखरोभवम् ॥ ९ ॥ वेदोनवक्तियंसाक्षान्नचवाग्वेत्तिनोमनः ॥ मद्विधस्तं कथंस्तौतिर्भक्तिमान्वानकिंवदेत् ॥ १० ॥ ब्रह्मादिब्रह्मविष्णुस्त्वंत्वमेवसकलाश्रयः ॥ स्रष्टा-

स्तुति किये जानेके योग्य, अथच स्वयंही स्तुति स्वरूप हैं, जब समस्त जगतही साक्षात् विष्णुस्वरूप है तब कौन किसकी स्तुति करे, केवल भक्तिही मनुष्योंको आनन्द करनेवाली है ॥ ८ ॥ जिन परमेश्वरके श्वाससे अङ्गों और सूत्रों सहित वेदोंका प्रादुर्भाव हुआ है, एक छोटीसी स्तुति भला उन्हें क्या प्रसन्न कर सकती है, केवल भक्तिके कारण मैंने वाचालता स्वीकार करी है ॥ ९ ॥ साक्षात् वेदही जिसका वर्णन नहीं कर सकते, वाणी और मन जिसको जानते

नहीं है, मेरे जैसा मनुष्य उनके विषय में क्या कह सकता है, अथवा भक्त क्या कुछ नहीं कह सका ॥ १० ॥ ब्रह्मा के आदि तथा ब्रह्म और विष्णु स्वरूप भी आपही हैं, आपही सबको आश्रय देनेवाले हैं, सबको रचनेवाले ब्रह्माजी को भी उत्पन्न करनेवाले एवं शुद्ध ब्रह्मस्वरूप भी आपही हैं ॥ ११ ॥ हे सर्वव्यापक ! आपका यह कार्य्य क्या है ? जो देहधारी को भेदकर स्पर्श करता है, काया संबन्धी दोष आपको सूँघतक भी नहीं गये हैं, ऐसे आप योगी को

ब्रह्मनिदानंचशुद्धंब्रह्मत्वमेवच ॥ ११ ॥ कोयंकार्यस्तवविभोभित्वास्पृशतिकायिनम् ॥ कायदोषैर्नचाघ्रातस्तस्मैनमोस्तुयोगिने ॥१२॥ देवभावेनजागर्तिननिद्रातिनिजात्मनि ॥ सुखसंदोहबुद्धिर्यासात्वंविष्णोनसंशयः ॥ १३ ॥ महदादयोमहाभावास्तथावैकारिकागुणाः ॥ त्वमेवनाथतत्सर्वंनानात्वंमूढकल्पना ॥ १४ ॥ केशकेशवरूपाभिःकल्पनातिसृभिस्तथा ॥ त्वमेवकल्पसेब्रह्मपुमानिवसुतादिभिः ॥ १५ ॥ विदोषंविगुणंचैकंकंचिन्मूर्तिरखिलंजगत ॥

नमस्कार है ॥ १२ ॥ आप देवभावसे सदैव जागते रहते हैं, निज आत्मा में कभी निद्रा नहीं लेते हैं, हे विष्णो ! सुख उत्पन्न करनेवाली जो बुद्धि है वह निस्सन्देह साक्षात् आपही हैं ॥ १३ ॥ महत् आदि महाभाव, तथा (पंचभूतों के विकार जनित गुण हे नाथ ! ये सब आपही हैं, नाना प्रकार की कल्पना करना तो केवल मूढकल्पना है ॥ १४ ॥ केश केशवरूप तीन कल्पनाओं से हे ब्रह्मन् ! आपही सबको इसप्रकार उत्पन्न करते हैं, जैसे मनुष्य

आ.मा. १६२

पुत्रादिकों को उत्पन्न किया करते हैं ॥ १५ ॥ जिसमें कोई दोष नहीं है, जिसमें मायाजनित गुण नहीं हैं, जो अद्वितीय है, जो समस्त जगत्में व्यापक है और चैतन्य स्वरूप है, और जो कविश्वरों को जो तत्त्वस्वरूप प्रतीत होता है, ऐसे निर्मल विष्णुभगवान् को मैं स्तुति करता हूँ ॥ १६ ॥ जिसका ज्ञान होनेसे श्रुतिप्रोक्त कर्म किए जाते हैं ऐसे शुद्ध ब्रह्मको हम नमस्कार करते हैं ॥१७॥ जो चैतन्य स्वरूप है, और जिसकी उपासना ज्ञानके द्वारा होती है अथच समस्त

कवीनांभातियत्तत्वंतंविष्णुंनौमिनिर्मलम् ॥ १६ ॥ यस्यज्ञानेनकुर्वंतिकर्मापिश्रुतिभाषितम् ॥
निरीषणाजगन्मित्राःशुद्धब्रह्मनमामितम् ॥ १७ ॥ ध्वस्तेतरत्वसन्मात्रंयत्प्रबोधादुपासते ॥
योगिनः सर्वभूतेषुसद्रूपंनौमितंहरिम् ॥ १८ ॥ ब्रह्माहमितिगायंतियंज्ञात्वैकंवराद्विजाः ॥
पश्यंतोहित्वयातुल्यंदेहंतेनौमितंहरिम् ॥ १९ ॥ माययामोहवैचित्र्यंतथाहंममतांनृणाम् ॥
योनाशयतिपापौघान्नमस्तस्मैचिदात्मने ॥ २० ॥ प्रयाणेवाप्रयाणेचयन्नामस्मरतांनृणाम् ॥

प्राणियों में योगी जिसकी उपासना कर सकते हैं सत्यस्वरूप ऐसे हरिको प्रणाम करते हैं ॥१७। श्रेष्ठज्ञानीपुरुष जिनको जानकर अपने आपको ब्रह्म प्रतिपादन करते हैं, अतएव अपने आपको आपके समान अवलोकन करते हैं उन्हीं हरिभगवान् को मेरा नमस्कार है ॥ १९ ॥ जो माया जनित अज्ञानकी विचित्रता तथा मनुष्यों के अहं आदि ममत्व को नाश कर देते हैं, एवं जो पापराशि का भी विनाश कर देते हैं, उन्हीं सच्चिदानन्द को प्रणाम है ॥ २० ॥ यात्रा

म अ.९९ १६२

अथवा स्थिति के समय ही जिनके नाम का स्मरण करनेसे मनुष्यों के पापपुंज विनष्ट होते हैं, उन्हीं चिदात्मा को नमस्कार है ॥ २१ ॥ मोहरूप अग्निकी ज्वाला संसारमें चारों ओर प्रदीप्त है, परन्तु जो मनुष्य आपके चरणकमल की छाया में प्रविष्ट होते हैं, उन्हें उस ज्वाला में भस्म होना नहीं होता ॥ २२ ॥ जिनका स्मरण करनेसे अज्ञान

सद्योनश्यंतिपापौघानमस्तस्मैचिदात्मने ॥२१॥ मोहानलल्लसज्ज्वालाज्ज्वलल्लोकेषुसर्वदा ॥ यत्पादांभोरुहच्छायांप्रविष्टश्चनदह्यते ॥ २२ ॥ यस्यस्मरणमात्रेणनमोहोनैवदुर्गतिः ॥ नश्रमोनैवदुःखानितमनंतंनमाम्यहम् ॥ २३ ॥ कामयंतेप्रजानैवधिषणाभ्यः समुत्थिताः ॥ लोकमात्मैवपश्यंतियंबुद्ध्वैकचरानराः ॥ २४ ॥ शब्दार्थःसंविदर्थश्चविष्णोर्नामप-रोयदि ॥ सत्येनतेनसंसारोमासंस्पर्शतुमाधव ॥ २५ ॥ नारायणोजगद्व्यापीयदिवेदादि-

और दुर्गति नहीं होती, श्रम और दुःख भी नहीं होते उन्हीं अनन्त भगवान् को हम प्रणाम करते हैं ॥ २३ ॥ जिनको ज्ञान होजानेपर फिर किसी वस्तुकी इच्छा नहीं रहती, किन्तु मनुष्य चराचर को अपना स्वरूप ही देखने लगते हैं ॥ २४ ॥ शब्दार्थ अथवा ज्ञान के अर्थ में विष्णु नाम हो तो हे माधव ! संसार उसे अवश्य ही स्पर्श नहीं कर सकता है ॥ २५ ॥ यदि जगत्में सर्वव्यापक विष्णुभगवान् वेद आदिके द्वारा संमत हैं तो विघ्नरहित विष्णुभक्ति

मुझे प्राप्त हो ॥ २६ ॥ जो बीज अथवा अबीज नहीं है, और जो बीज भावित बीजस्वरूप हैं, वेही विष्णुभगवान् हमारे सांसारिक बीजको ज्ञान के खड्ग से छेदन करें ॥ २७ ॥ जो प्रभु इस संसार के निर्माण पालन और संहार करने के निमित्त नटकी समान तीन रूप धारण करते हैं, और जो गुणोंके द्वारा कार्य्यों में प्रतीत होते हैं, वे हरि

संभृतः ॥ सत्येनतेननिर्विघ्नाविष्णुभक्तिर्ममास्तुवै ॥२६॥ योनबीजंनचाबीजबीजंयोबीजभावितम् ॥ सविष्णुर्भवबीजंमेसितविद्यासिनाद्यतु ॥ २७ ॥ त्रितनुर्नटवद्यस्तुसृष्टिस्थितिलयेषुच ॥ गुणैर्भवतिकार्येषुसप्रसीदतुमेहरिः ॥ २८ ॥ दशधेहावतीर्णोयोधर्मत्राणायकेवलम् ॥ अभ्यर्थितःसुरैस्सर्वैःसप्रसीदतुमेहरिः ॥ २९ ॥ ब्रह्मादिस्तंबपर्यंतप्राणोहृन्मंदिरेमलः ॥ एकोवसतियोदेवःसप्रसीदतुमेहरिः ॥ ३० ॥ इच्छांचक्रेसदेवाग्र एकश्चैवबहुस्तथा ॥ प्रविष्टोदेवताःस्रष्टासप्रसीदतुमेहरिः ॥३१॥ हृत्खगःखसमःखादिःखातीतःखक्रियःखगः ॥ खंब्रह्मा-

हमारे ऊपर प्रसन्न हों ॥ २८ ॥ जब सब देवताओंने प्रार्थना करी तब धर्मकी रक्षा करने के लिये जिन्हों ने दश अवतार धारण किये थे वेही हरि हमारे ऊपर प्रसन्न हों ॥ २९ ॥ ब्रह्मा से लेके स्तम्ब पर्य्यन्त जितने प्राणी हैं उनके हृदयमन्दिर में जो निर्मल एक देव निवास करते हैं वेही नारायण हमारे ऊपर प्रसन्न हों ॥ ३० ॥ जिन्होंने

पहले यह इच्छा करी कि, मैं एक हूँ तथापि बहुत सा रूप धारण करूँ, तब देवताओं को निर्माण कर उनमें जो प्रविष्ट हुए वे हरि हमारे ऊपर प्रसन्न हों ॥ ३१ ॥ जो हृदयाकाश में व्याप्त हैं, सो आकाश के समान सूक्ष्म हैं, आकाश से भी प्रथम जिनकी सत्ता विद्यमान थी, जिन्होंने आकाश को अतिक्रमण कर लिया है, आकाश में जो क्रिया करते और जो आकाश ही में विचरते हैं, जो खं ब्रह्मस्वरूप और आकाश की समान ही शून्य मूर्तिधारी हैं,

खादिभूस्त्वंतेखमूर्तिस्त्वंमखाशनः ॥ ३२ ॥ यद्भासयन्मुदायस्यमाययासृज्यतेजगत् ॥
जाड्यं दुःखमसत्यंचसभवान्नेवतन्मयः ॥ ३३ ॥ त्वत्सृष्टंमोदतेविश्वंत्वत्यक्तमशुचिर्भवेत् ॥
तत्संगतोप्यसंगस्त्वंविकारस्तेननेनहि ॥३४॥ भूतयोगजचैतन्यंचार्वाकायमुपासते ॥ सौग-
तान्ब्रुवतेतर्कैस्त्वांबुद्धिंक्षणभंगुरम् ॥ ३५ ॥ शरीरपरिमाणंत्वांमन्यंतेनिजदेवताः ॥ ध्यायं-

और जो यज्ञीयभाग का भोजन करते हैं ॥ ३२ ॥ जिसके प्रकाश और प्रमोद से माया जगत् की सृष्टि करती है, और जिनकी माया से जड़ता और असत्यता दुःख देती है, ऐसे आप हमारी रक्षा करें ॥ ३३ ॥ आपका रचा जगत् आनन्द मानता और आपके त्यागते ही अशुद्ध होजाता है, उसके संग रहकर भी आप संग और विकार रहित हैं, चार्वाक लोग पंचभूतों के योग से उत्पन्न हुए जिन चैतन्यप्रभु की उपासना करते हैं, और सौगत तर्कद्वारा क्षणभंगुर बुद्धि मानते हैं ॥ ३४-३५ ॥ जिन देवताको पूजनेवाले शरीर का परिणाम स्वरूप मानते हैं, और

सांख्य योगवाले आपही को प्रकृति से परे पुरुष मानते हैं ॥ ३६ ॥ जो प्रथम ही से जन्म आदि रहित, और आनन्द स्वरूप हैं उन्हीं आपको उपनिषद्वाले ब्रह्मनाम से विचार करते हैं ॥ ३७ ॥ आकाशादि पंचभूत देह मन बुद्धि इन्द्रियें, विद्या अथवा अविद्या जो कुछ हो, सब तुम तुमही हो, तुम्हारे अतिरिक्त और कुछ नहीं है ॥३८॥ आपही

तिपुरुषंसांख्यास्त्वामेवप्रकृतेःपरम् ॥ ३६ ॥ जन्मादिरहितःपूर्वंयस्मादानंदलक्षणम् ॥
त्वामेवोपनिषद्ब्रह्मचिंतयंतिपरस्परम् ॥ ३७ ॥ खादिभूतानिदेहश्चमनोबुद्धींद्रियाणिच ॥
विद्याविद्येत्वमेवान्नवान्यत्त्वत्तोस्तिकिंचन ॥ ३८ ॥ त्वंधातासर्वभूतानांत्वमेवशरणंमम ॥
त्वमग्निस्त्वंहविः शक्रोहोतामंत्रःक्रियाफलम् ॥३९॥ त्वमस्तिनास्तिवैकुंठत्वामहंशरणंगतः॥
त्वमर्कःफलदाताचदीक्षितानांक्रियाफलम् ॥ ४० ॥ त्वंहेतुःसर्वभूतानांत्वमेवशरणंमम ॥

सब प्राणियों के धारण और पोषण करनेवाले हैं, मुझे शरण देनेवाले भी आपही हैं, अग्नि, हवनकी वस्तु, इन्द्र, होता (होम करने वाले) मन्त्र और क्रिया का फल ये सब कुछ आपही हैं ॥ ३९ ॥ हे विष्णो ! आपही अस्ति और नास्ति स्वरूप हैं, अतः मैं आपकी शरण में प्राप्त हुआ हूँ, आप सूर्य हैं, दीक्षितों के क्रिया का फल और उसके देनेवाले भी आपही हैं ॥ ४० ॥ समस्त प्राणियों के कारण आपही सुतराम् मुझे शरण देनेवाले भी आपही

हैं, जिस प्रकार युवापुरुषोंका चित्त युवतियोंमें और युवतियोंका युवापुरुषोंमें ॥ ४१ ॥ रमण करता है, इसी प्रकार मेरी प्रीति भी तुम्हारे विषे रमण करे, हे हरे ! आपकी शरणमें आया हुआ मनुष्य चाहे जैसा पापी और दुराचारी हो तथापि उसको यमराजके दूत इसप्रकार नहीं देख सकते जैसे उलूकोंको सूर्यके दर्शन नहीं होते, दैहिक दैविक और भौतिक तीनों प्रकारके ताप और अन्य पाप तभीतक मनुष्यको पीड़ा देते हैं ॥ ४२ ॥ ४३ ॥ हे नाथ !

युवतीनांयथायूनियूनांचयुवतौतथा ॥ ४१ ॥ मनोभिरमतेतद्वत्प्रीतिर्मेरमतांत्वयि ॥ अपिपापंदुराचारंनरंत्वत्प्रणतंहरे ॥ ४२ ॥ नेक्षंतेकिंकरायाम्याउलूकास्तपनंयथा ॥ तापत्रयमघौघश्चतावत्पीडयतेजनम् ॥ ४३ ॥ यावत्स्मरतिनोनाथभक्त्यात्वत्पादपंकजम् ॥ ४४ ॥ यंनस्पृशंतिगुणजातिशरीरधर्मायंनस्पृशंतिगतयस्त्वखिलेंद्रियाणाम् ॥ येचस्पृशंतिमुनयोगतसंगमोहास्तस्मैनमोभगवतेहरयेप्रतीचे ॥ ४५ ॥ स्थूलंविलाप्यकरणेकरणंनिदानेतत्कारणं

जबतक वह भक्तिसे आपके चरणकमलका स्मरण नहीं करता ॥ ४४ ॥ गुण और जाति आदि शरीरके धर्म जिसका स्पर्श नहीं करते, अखिल इन्द्रियोंकी गति भी जिनका स्पर्श नहीं करती, एवं संग और मोह (अज्ञान) रहित मुनीश्वर जिनका स्पर्श करते हैं, उन्हीं हरिभगवान्‌को हम नमस्कार करते हैं ॥ ४५ ॥ स्थूलको उसके करणमें कारणको उसके निदानमें और उसके भी कारणको करण तथा कारणसे रहितमें लय करके मुनीश्वर लोग जिसमें

प्रवेश करते हैं उन्हीं ज्ञानस्वरूप हरिको नमस्कार करते हैं ॥ ४६ ॥ जिनका ध्यान करनेसे अन्तःकरण वशमें की हुई, जिनके ऐश्वर्यरूप उत्तम गुण हैं, ऐसा आत्मसुख और मोक्षकी लक्ष्मीका आलिंगन करके आत्मसुखका उपभोग करनेवाले महात्मालोग शयन करते हैं, मुनिश्वरोंके द्वारा सेवन किए हुए उन्हीं हरिको नमस्कार है ॥ ४७ ॥ जिनका स्वभाव जन्ममरण आदि भावोंके विकारसे शून्य है, काम क्रोध लोभ मोह मद मत्सर यह छः वर्ग जिनमें पहुँचकर

करणकारणवर्जितेच॥इत्थंविलाप्यमुनयःप्रविशंतितत्रतंत्वांहरिंविशतिबोधतनुंनमामि ।४६।
यद्ध्यानसंवहनघूर्णवशीकृतांतामैश्वर्यचारुगुणिनींसुखमोक्षलक्ष्मीम् ॥ आलिंग्यशेरतइहात्म-
सुखैकभाजस्तस्मैनमोस्तुहरयेमुनिसेविताय ॥ ४७ ॥ जन्मादिभावविकृतेर्विरहस्वभावोय-
स्मिन्नयंपरिचिनोतिषडूर्मिवर्गः॥ यंतापयंतिनसदामदनादिदोषास्तंवासुदेवममलंप्रणतोस्मिहा-
र्दम् ॥४८॥ यद्भावनागतमलंविजहात्यविद्यांयद्ध्यानुवह्निपतितंजगदेतिनाशम्॥ यद्भावमूल-

शान्त हो जाते हैं, काम आदि दोष जिन्हें सता नहीं सकते उन्हीं निर्मल वासुदेव भगवान्‌को हम नित्य हार्दिक प्रणाम करते हैं ॥ ४८ ॥ ४६ ॥ जिनका भाव उदय होनेसे अविद्याका नाश हो जाता है, और जिनके ध्यानरूप अग्निके निपतित होतेही जगत्‌का नाश हो जाता है और जिसके भावकी खड्ग संदेहरूप शत्रु का विनाश कर देती है, ऐसे स्वच्छ ज्ञान स्वरूप हरि भगवान्‌को हम नमस्कार करते हैं। चर अचर स्वरूप प्राणी ईश्वरका ही शरीर है, सुतराम्

सत्यस्वरूपसे हरिभगवान् मेरे समक्ष उपस्थित हों ॥ ५० ॥ जैसे नारायणही का स्वरूप समस्त स्थावर और जंगम है, केशव भगवान् उसी सत्यस्वरूपके दर्शन मुझे दें ॥ ५१ ॥ उसकी ऐसी २ सत्यशपथोंके द्वारा उसकी भक्तिका विचार करके भगवान्ने प्रसन्न हो अपने दर्शन किये ॥ ६२ ॥ स्तुति करके ब्राह्मणके द्वारा सन्तुष्ट हुए, भगवान्

सदसिद्यतिसंशयारिंत्वांहरिंविशदबोधघनंनमामि ॥ ४९ ॥ चराचराणिभूतानिसर्वाणिचहरेर्वपुः ॥ यथात्रतेनसत्येनपुरस्तिष्ठतुमेहरिः ॥ ५० ॥ यथानारायणःसर्वंजगत्स्थावरजङ्गमम् ॥ तेनसत्येनमेरूपंप्रदर्शयतु केशवः ॥५१॥ तस्यैवंशपथैःसत्यै र्भक्तिंतस्यानुचिंतयन् ॥ दर्शयामासचात्मानंसप्रीतःपुरुषोत्तमः ॥ ५२ ॥ ततोदत्वावरंतस्यापूरयित्वामनोरथम् ॥ जगामकमलाकांतःस्तुत्याविप्रेणतोषितः ॥ ५३ ॥ कृतकृत्योद्विजःसोपिवासुदेवपरायणः ॥ शिष्यैःसार्धंजपन्स्तोत्रंतस्मिन्नास्तेतपोवने ॥ ५४ ॥ कीर्तयेद्यइदंस्तोत्रंशृणुयाद्योपिमानवः ॥

वरदे उसके मनोरथोंको पूरा करके अन्तर्हित होगये ॥ ५३ ॥ वह ब्राह्मण भी कृतार्थ हो वासुदेवभगवान्में मन लगाया शिष्योंसहित उसी वनमें बसकर स्तोत्र का जप करने लगा ॥ ५४ ॥ जो मनुष्य इस स्तोत्रका कीर्तन अथवा श्रवण करेंगे, उन्हें अश्वमेध यज्ञके प्रभूत फल का लाभ होगा ॥ ५५ ॥ ब्राह्मणोंको सदा आत्मविद्याका लाभ होता

है, और न पापमें बुद्धि लगती अथच न उसे अमंगलहीके दर्शन होते हैं ॥ ५६ ॥ इस स्तोत्रका संग्रह करनेसे समस्त मनुष्योंको मन बुद्धि और इन्द्रियोंका स्वास्थ्य अधिगत होता है ॥ ५७ ॥ और जो मनुष्य अर्थोंका विचार कर श्रद्धापूर्वक इसका जप करेगा, उसके समस्त पाप दूर हो जाएँगे, अतएव उसको विष्णुधामकी प्राप्ति होगी ॥ ५८ ॥

अश्वमेधस्ययज्ञस्यप्राप्नोतिविपुलंफलम् ॥ ५५ ॥ आत्मविद्याप्रबोधंचलभतेब्राह्मणःसदा ॥ नपापेजायतेबुद्धिर्नैवपश्यत्यमङ्गलम् ॥ ५६ ॥ बुद्धिस्वास्थ्यंमनःस्वास्थ्यंस्वास्थ्यमैंद्रिय-कंतथा॥ नृणांभवतिसर्वेषामस्यस्तोत्रस्यसंग्रहात्॥ ५७॥ विचार्यार्थंजपेद्यस्तु श्रद्धयातत्परोनरः॥ सविधूयेहपापानिलभतेवैष्णवंपदम्॥ ५८॥ लभतेवांछितान्कामान्पुत्रपौत्रान्पशूंस्तथा ॥ दीर्घ-मायुर्बलंवीर्यंलभतेससदापठन् ॥ ५९॥ तिलपात्रसहस्रेणगोसहस्रेणयत्फलम्॥ तत्फलंसमवाप्नो-तियइमांकीर्तयेत्स्तुतिम् ॥ ६०॥ धर्मार्थकाममोक्षाणांयंयंकायतसदा ॥ अचिरात्तमवाप्नोति-

एवं सदैव पाठ करनेवाले मनुष्यको अभिलषित कामनाओं, पुत्र पौत्र और पशुओं, दीर्घ आयु और बलवीर्यकी नित्य प्राप्ति होती है ॥ ५९ ॥ सहस्र तिलपात्र और इतनीही गौदान करनेसे जिस फल की प्राप्ति होती है, इस स्तुति का कीर्तन करनेवाले व्यक्तिको भी उसी फल का लाभ होता है ॥ ६० ॥ धर्म–अर्थ–काम–मोक्ष–इनमेंसे जिस २ की

कामना करेगा, आर्थियोंको इस स्तोत्रके द्वारा तत्काल ही सब कुछ प्राप्त होगा ॥ ६१ ॥ जो मनुष्य इस स्तुति का श्रवण करते हैं उनकी बुद्धि, आचार, विनय, धर्म, ज्ञान, तप और शुभ नीतिमें निरत रहती है ॥ ६२ ॥ जो मनुष्य महापातकों अथवा उपपापों से युक्त हो वह भी यदि इस स्तोत्रका एकही वार पाठ करले तो शीघ्रही उसकी आत्मा शुद्ध हो जाती है ॥ ६३ ॥ बुद्धि, लक्ष्मी, यश, कीर्ति, ज्ञान और धर्मकी बुद्धि दुष्टग्रहोंकी शान्ति और अशुभोंका

स्तोत्रेणानेनमानवः ॥६१॥ आचारेविनयेधर्मेज्ञानेतपसिसन्नये ॥ नृणांभवतिनित्यंधोरिमांसं शृण्वतांस्तुतिम् ॥ ६२ ॥ महापातकयुक्तोवायुक्तोवाह्युपपातकैः ॥ सद्योभवतिशुद्धात्मास्तोत्रस्यपठनात्सकृत् ॥ ६३ ॥ प्रज्ञालक्ष्मीयशःकीर्तिज्ञानधर्मविवर्धनम् ॥ दुष्टग्रहोपशमनंसर्वाशुभविनाशनम् ॥ ६४ ॥ सर्वव्याधिहरंपथ्यंसर्वारिष्टनिषूदनम् ॥ दुर्गतेस्तरणंस्तोत्रपठितव्यं-द्विजातिभिः ॥ ६५ ॥ नक्षत्रग्रहपीडासुराजचौरभयेषुच ॥ अग्निचौरनिपातेषुसद्यःसंकीर्तयेदिदम् ॥ ६६ ॥ सिंहव्याघ्रभयंनास्तिनाभिचारभयंतथा ॥ भूतप्रेतपिशाचेभ्योराक्षसेभ्यस्त-

विनाश होता है ॥ ६४ ॥ द्विजातियोंको इस स्तोत्रका पाठ अवश्य करना चाहिये, क्योंकि—यह सब व्याधियोंका नाश करनेवाला हितकारी, सम्पूर्ण अरिष्टोंका उन्मूलन करनेवाला और दुर्गतिसे उद्धार करनेवाला है ॥ ६५ ॥ नक्षत्र और ग्रह इनकी पीडायें, राजा अथवा चोरोंके भयमें और अग्नि लगने में तत्काल ही इस स्तोत्र का कीर्तन

करना चाहिये ॥ ६६ ॥ इस स्तुतिका पाठ करने से सिंह व्याघ्र अभिचार (टोटका) भूत प्रेत पिशाच और राक्षसों का भय नहीं होता ॥ ६७ ॥ एवं उन मनुष्योंको पूतना जृंभक और अन्य विघ्नों से भी भय नहीं होता जो इस स्तोत्र का कीर्त्तन करते हैं ॥ ६८ ॥ वासुदेव भगवान्‌की पूजा करके जो मनुष्य इस स्तोत्रका कीर्तन करता है उसको पाप इस प्रकार लिप्त नहीं कर सकते जैसे कमलपत्र जलमे लिप्त नहीं होता ॥ ६९ ॥ गंगा आदि पवित्र तीर्थों में स्नान

थैवच ॥ ६७ ॥ पूतनांजृंभकेभ्यश्चविघ्नेभ्यश्चैवसर्वदा ॥ नृणांकचिद्भयंनास्तिस्तवेह्यस्मिन्प्रकीर्तिते ॥ ६८ ॥ वासुदेवस्यपूजांयःकृत्वास्तोत्रमुदीरयेत् ॥ लिप्यतेपातकैर्नासौपद्मपत्रमिवांभसा ॥ ६९ ॥ गंगादिसर्वतीर्थेषुयास्नानैर्लभ्यतेगतिः ॥ ताङ्गतिंसमवाप्नोतिपठन्पुण्यामिमांस्तुतिम् ॥ ७० ॥ एककालंद्विकालंवात्रिकालंवापियःपठेत् ॥ सर्वदासर्वकालेषुसोक्षयंसुखमश्नुते ॥ ७१ ॥ चतुर्णामपिवेदानांत्रिरावृत्याचयत्फलम् ॥ तत्फलंलभतेस्तोत्रमधीयानःसकृन्नरः ॥ ७२ ॥ अक्षय्यंधनमाप्नोतिस्त्रीणांभवतिवल्लभः ॥ ७३ ॥ पूजांविंदतिलोकेस्मि-

करनेसे जिस गतिका लाभ होता है इस पवित्र स्तुतिका पाठ करनेवाले व्यक्तिको भी वही गति मिलती है ॥ ७० ॥ जो व्यक्ति एक दो अथवा तीन समय इसका पाठ करता है उसे सदैव अक्षय सुखकी प्राप्ति होती है ॥ ७१ ॥ चारों वेदोंका तीन २ बार पाठ करनेसे जो फल उपलब्ध होता है, इस स्तोत्रका केवल एकही बार पाठ करनेसे उस फल

की प्राप्ति होजाती है ॥ ७२ ॥ इस स्तोत्रका पाठ करनेवाले व्यक्तिको अक्षय सुखकी प्राप्ति होती और वह स्त्रियोंका प्रिय हो जाता है ॥ ७३ ॥ सदैव हरिस्मरण करनेसे लोकमें उसकी पूजा होती है, वह सदा धनाढ्य रहता है, एवं उसे विपत्तीकी प्राप्ति कभी भी नहीं होती ॥ ७४ ॥ जो मनुष्य नित्य इस स्तोत्रका कीर्तन करता है, उसे इन्द्रियोंके वशीभूत होना नहीं होता ॥ ७५ ॥ जो भक्तजन इस स्तोत्रको श्रवण करते हैं, उनका दरिद्र कारकारणी (अमङ्गलरूप)

च्छ्रद्धयासंस्मरन्हरिम् ॥ सर्वदासंपदायुक्तोविपदंनैवगच्छति ॥७४॥ गोभिर्नह्रियतेस्तोत्रं-नित्यंयःकीर्तयेद्धियत् ॥ ७५ ॥ अलक्ष्मीजालकर्णीचदुःस्वप्नंदुर्विचिंतितम् ॥ सद्योनश्यंति भक्तानामेतंसंशृण्वतांस्तवम् ॥ ७६ ॥ प्रातरुत्थाययोधीते शुचिर्विष्णुपरायणः ॥ अक्षय्यं लभतेसौख्यमिहलोकेपरत्रच ॥ ७७ ॥ देवद्युतिप्रणीतंवैविष्णुदर्शनकारकम् ॥ योगसारमि-दंनामस्तोत्रंपरमपावनम् ॥ ७८ ॥ यःपठेत्सततंभक्त्याविष्णुलोकंसगच्छति ॥ ७९ ॥ इति-

दुःस्वप्न और दुष्टचिन्ताएँ इन सबका शीघ्रही नाश हो जाता है ॥ ७६ ॥ जो मनुष्य शौच धारणपूर्वक विष्णुभक्तिमें निरत जो प्रातःकालही इस स्तोत्रका पाठ करता है उसे इसलोक और परलोकमें अक्षय सुखकी प्राप्ति होती है ॥ ७७ ॥ देवद्युति के निर्माण किएहुए इस स्तोत्रका वेदसार नाम है, और यह परमपवित्र स्तोत्र विष्णुभगवान्‌के दर्शन करानेवाला है ॥ ७८ ॥ जो मनुष्य नित्य भक्तिभावपूर्वक इसका पाठ करता है, वह विष्णुलोक को जाता है ॥ ७९ ॥ इस

प्रकार परमगोपनीय अतएव बड़े २ पापों का विनाश करनेवाले इस स्तोत्रको हमने तुम्हारे प्रति वर्णन किया, इसके पश्चात् पिशाचकी मुक्तिका वर्णन करते हैं ॥ ८० ॥ इति श्रीमाघमाहात्म्य भाषाटीकायां एकोनविंशोऽध्यायः ॥ १९ ॥

लोमशजी बोले—सुनो ! उस वनमें जिस पिशाचकी मुक्ति हुई थी, प्रथम द्राविड़देशमें चित्रनाम एक राजा

तेकथितंस्तोत्रंगुह्यंपापप्रणाशनम् ॥ अतऊर्ध्वंप्रवक्ष्यामिपिशाचस्यविमोचनम् ॥८०॥ इति श्रीपद्मपुराणे उत्तरखंडे माघमाहात्म्येवसिष्ठदिलीपसंवादेयोगसारस्तोत्रकथनंनामएकोनविंशोऽध्यायः ॥ १९ ॥

लोमशउवाच ॥ श्रूयतांयःपिशाचःसमोचितोयेनतद्वने ॥ आसीद्राजाचित्रनामाद्राविडेविषयेपुरा ॥१॥ सोमान्वयेमहावीरःशूरशास्त्रार्थपारगः ॥ गजवाजिरथौघैश्चसंपन्नोविक्रमीसदा ॥ २ ॥ स्वर्णैर्नानाविधैरत्नैःपूर्णकोशोमहाधनः ॥ मध्येनारीसहस्रस्यसदाक्रीडतितत्परः ॥ ३ ॥ स्त्रैणःकामीसदालुब्धश्चंडकोपःसपार्थिवः ॥ नकरोतिवचोधर्म्यंसचिवैः

था ॥ १ ॥ उसका चन्द्रवंशमें जन्म हुआ था, वह महावीर शूर एवं शास्त्रपारगामी था, उसके पास रथ और हाथी घोड़े प्रभूत थे, अथच वह पराक्रमी भी था ॥ २ ॥ सुवर्ण, अनेक प्रकारके रत्न और प्रभूत धनसे उसका कोश (खजाना) पूर्ण रहता था, एवं सहस्रों स्त्रियोंमें वह नित्य क्रीड़ा किया करता था ॥ ३ ॥ वह राजा बड़ा कामी

मा.मा. २०५

अतएव स्त्रियों में आसक्त, अतीव लोभी और अतिशय क्रोधी था, और वह अग्नियोंके कहे हुए धर्मयुक्त वचन भी नहीं मानता था ॥ ४ ॥ वह दुष्ट विष्णुभगवान् की अत्यन्त निन्दा करता, नित्य वैष्णवों से द्वेष करता और यों कहा करता था कि—विष्णु कहाँ हैं और कौन हैं, उन्हें देखा किसने और कौन उनका कीर्तन करता है ॥ ५ ॥ इस प्रकार वह राजा दैव (प्रारब्ध) से मोहित हो विष्णु भगवान् को सहन नहीं करता था, अतएव जो प्राणी नारायण का भजन

समुदीरितम् ॥ ४ ॥ विष्णुंनिंदतिसोत्यर्थंवैष्णवान्द्वेष्टिसर्वदा ॥ कोसौविष्णुःकदृष्टोऽसौक्वास्तेकेनकीर्यते ॥ ५ ॥ इत्थंनसहतेविष्णुंसराजादैवमोहितः ॥ नारायणंभजंतेयेतान्पीडयतिकोपितः ॥ ६ ॥ नब्राह्मणान्नवेदांश्चवैदिकंकर्मनव्रतम् ॥ नदानंमन्यतेदातुंपाखंडस्थितिसंस्थितः ॥ ७ ॥ अनीत्याचंडदंडैश्चप्रजापीडांकरोतिसः ॥ निष्ठुरोनिर्दयःक्रूरःपुण्यकार्यपराङ्मुखः ॥ ८ ॥ च्युताचारोऽच्युतद्वेष्टाच्युताग्निश्चच्युतक्रियः ॥ सोनुशास्तिजनंभूपः

करते उन्हें यह क्रोधकर पीड़ा देता था ॥ ६ ॥ उसने पाखण्डियों की स्थिति का अवलंबन कर लिया था, अतएव वह ब्राह्मण वेद वेदोक्तकर्म व्रत और दान किसीको भी कुछ नहीं मानता था ॥ ७ ॥ उस कठोर के हृदय में दया नहीं थी, एवं वह कुटिल पुण्यके कर्मोंसे विमुख था, अतएव अनीति और उग्रदण्ड देकर नित्य प्रजा को पीडित करता था ॥ ८ ॥ उसके आचरण सभी नष्ट हो गये थे, वह विष्णुभगवान् से द्वेष करता था, उसकी अग्निहोत्रकी अग्नि और

१८

अन्यसत्क्रियाएँ नष्ट होगईं थीं, सुतराम् वह राजा दूसरे यमराज के समान प्रजा का शासन करता था ॥ ९ ॥ इसके अनन्तर बहुत समय व्यतीत हो जानेपर उस राजा की मृत्यु होगई तब भी उसकी और्ध्वदैहिक क्रिया वैदिक विधिके अनुसार नहीं हुई ॥ १० ॥ तब तो यमराज के दूतोंने उसे अतीव पीड़ा दी, जिस मार्ग में लोहे की कीलें लगरही हैं,

कालरूपइवापरः ॥९॥ ततोबहुतिथेकालेसराजापंचतांगतः ॥ वैदिकेनविधानेनलेभेनैवौर्ध्वदैहिकम् ॥ १० ॥ अथकिंकरयूथेनपीड्यमानोभृशंतदा ॥ अयःकीलमयेमार्गेतप्तसिक्ताप्रपूरिते ॥ ११ ॥ चंडार्करश्मिसंतप्तेवृक्षच्छायाविवर्जिते ॥ तप्तांगारप्रकीर्णेचवह्निज्वालासमाकुले ॥ १२ ॥ लोहतुंडैश्चकाकोलैर्हन्यमानःसदारुणैः ॥ वृकैर्दंष्ट्राकरालैश्चश्वभिर्घोरैश्चभक्षितः ॥ १३ ॥ शृण्वन्नाक्रंदितमन्येषांनृणांकिल्बिषकारिणाम् ॥ जगामपार्थिवोलोकमंतकस्यभयावहम् ॥ १४ ॥ शृणु द्विजगतिंतस्यतस्मिँल्लोकेसुदुःसहाम् ॥ निरयान्निरयंयातः

जहाँ तप्त बालू भरपूर है ॥ ११ ॥ जहाँ प्रचंड सूर्य्य की किरणें जल रही हैं और वृक्षोंकी छाया नहीं है और अग्नि ज्वाला से व्याप्त जिस मार्ग में दहकते हुए अङ्गारे बिछ रहे हैं ॥ १२ ॥ लोह निर्मित दारुण आयुधों से पीडित, तीव्र दांतोंवाले वृक और घोर भेड़ियों से भक्षित ॥ १३ ॥ वह जाता और अन्यान्य पापियों के रोदन को सुन रहा था, इसी

विधिसे वह राजा यमराज के भयप्रद लोक में गया ॥ १४ ॥ हे द्विज ! उस यमपुरी में जो उसकी दुर्गति हुई उसको सुनो, उस राजा को क्रमानुसार एक नरक से दूसरे नरक में इस प्रकार सर्वत्र पहुँचाया गया ॥ १५ ॥ सबसे प्रथम वह दारुण और घोर दुःखदायक तामिस्र नरक में भेजा गया, इसके पश्चात् उसे निरन्तर दुःख देनेवाले अन्धतामिस्र में

पर्यायेणसभूपतिः ॥ १५ ॥ आदौप्रयातस्तामिस्रेदारुणेभूरिदुःखदे ॥ पुनश्चैवांधतामिस्रे-यत्रदुःखंनिरंतरम् ॥१६॥ गतोऽनंतरमत्युग्रंमहारौरवरौरवम् ॥ नरकंकालसूत्रंचमहानरक-मेवच ॥ १७ ॥ पश्चान्मग्नःसभूपालोदुस्तरेदुःखमूर्छितः ॥ संजीवनेमहावीचौतापनेसंप्रता-पने ॥ १८ ॥ प्रतापनरकंराजादुःखाग्निप्लुष्टमानसः ॥ संपातंचसकाकोलंकुड्मलंपूतिमृत्ति-कम्॥१९॥ लोहशंकुंमृगीयंत्रंपंथानंशाल्मलिंनदीम् ॥ प्रविष्टोथमहाभीमंदुर्दर्शंदुर्गमंपुनः।२०।

भेजा ॥ १६ ॥ फिर वे बड़े उग्र रौरव महारौरव कालसूत्र और महानरक में वह गया ॥१७॥ तदनन्तर दुस्तर दुःखमें मग्न होने के कारण वह राजा मूर्छित हो गया फिर जब उसे चेत हुआ तब वह तापन और संप्रतापन नरक में गया ॥ १८ ॥ प्रतापनरक में राजा का मन दुःखसे अत्यन्त व्याकुल होगया, संताप, काकोल, कुड्मल, पूतिमृत्तिक इन नरकों में फिर वह भेजा गया ॥ १९ ॥ लोहशंकु, मृगीयन्त्र, शाल्मली मार्ग में जाकर फिर दुर्गम मार्ग में प्रविष्ट

हुआ ॥ २० ॥ असिपत्रवन, लोहतारक, इसी प्रकार क्रमशः इन सब नारकों में वह पापी राजा निवसित हुआ ॥ २१ ॥ विष्णुभगवान् से द्वेष करने के कारण उसे इक्कीस युग पर्यन्त घोर नरकों में दुस्सह यातना भोगनी पड़ी ॥ २२ ॥ यमलोककी यातना भोग चुकने के अनन्तर उस राजा का जब नरक से उद्धार हुआ तब समय पाय वह गिरिराज के

आसपत्रवनंचैवलोहचारकमेवच ॥ एवमेतेषुसर्वेषुपतित्वापापकृन्नृपः ॥ २१ ॥ अविंदन्नरके-घोरेसंतापंयातनामयम् ॥ विष्णुप्रद्वेषघोषेणयुगानामेकविंशतिः ॥ २२ ॥ भुक्त्वाचयातनांयाम्यांनिस्तीर्णनरकोनृपः ॥ समयाद्गिरिराजेतुपिशाचोऽभूत्तदामहान् ॥२३॥ सम्भ्राम्यतिदिशःसर्वावनेतस्मिन्बुभुक्षितः ॥ नपश्यत्यशनंतोयंमेरावपिसदागिरौ ॥ २४ ॥ कदाचित्पर्यटन्सोऽथपिशाचःशोकपीडितः ॥ प्लक्षप्रस्रवणारण्यंप्रविष्टोभाविसत्फलम् ॥२५॥ बिभीतकतरुच्छायांसमाश्रित्यसुदुःखितः ॥ हाहतोस्मीतिचाक्रंदद्घोरमुच्चैःपुनःपुनः ॥ २६ ॥ क्षुत्तृड्भ्यां-

ऊपर बड़ा पिशाच हुआ ॥ २३-२४ ॥ एक समय वह पिशाच शोकसे पीड़ित हो विचरता २ होनहार शुभ फल के कारण प्लक्ष प्रस्रवण वनमें प्रवृष्ट हुआ ॥ २५ ॥ वह दुःखित हो बहेड़े के वृक्षकी छाया में बैठगया, और हाय ! ! ! मैं मरा यों कहकर ऊँचे स्वर से बार २ डकराने लगा ॥ २६ ॥ वह सोचने लगा भूख प्यास से व्याकुल हुए मुझ सब

प्राणियों से द्वेष करनेवाले के इस जन्म का अन्त क्योंकर होगा ॥ २७ ॥ जिसमें दुःखकी तरंगें उठ रही हैं ऐसे पापके समुद्र में मुझ डूबते हुए को इस समय कौन हाथका सहारा देके बचा सकता है ॥ २८ ॥ इति माघमास माहात्म्य भाषाटीकायां विंशोऽध्यायः ॥ २० ॥

मुह्यमानस्यसर्वभूतद्रुहोमम ॥ जन्मनोऽस्यदुरंतस्यकथमंतोभविष्यति ॥ २७ ॥ आदौपाप-समुद्रस्मिन् दुःख कल्लोलमालिनि॥ करावलंबनंकोद्य निमग्नस्यप्रदास्यति ॥२८॥ इति श्रीपद्म-पुराणेउत्तरखंडेमाघमाहात्म्ये वसिष्ठदिलीपसंवादे पिशाचाख्यानं नाम विंशोऽध्यायः ॥२०॥

लोमशउवाच ॥ इत्थंतस्यपिशाचस्यरोदनंदीनचेतसः ॥ देवद्युतिरधीयानःशुश्राव-करुणामयम् ॥ १ ॥ समागम्यततस्तत्रतंपिशाचंचदर्शसः ॥ विकरालमुखंभीमंपिशंगनयनं-कृशम् ॥ २ ॥ उर्ध्वमूर्धजकृष्णांगंयमदूतमिवापरम् ॥ लंबजिह्वं चलंबोष्ठंदीर्घजंघंशिरा-

लोमशजी बोले—दीनचेता पिशाच के इस प्रकार करुणापूर्ण रोदनको पढ़ते २ देवद्युति ने श्रवण किया ॥ १ ॥ तब उसने वहाँ आकर क्या देखा कि, एक पिशाच बैठा है उसका मुख बड़ा भयंकर है और उसके नेत्र भूरे २ तथा देह दुर्बल था ॥ २ ॥ उसका देह श्याम और शिरके बाल ऊपर को थे, उसकी जिह्वा लपलपा रही और वह ओठोंको

चाट रहा था, उसकी जंघाएँ बड़ी और देहनखों से व्याप्त हो रहा था सुतराम् वह दूसरे यमदूत के समान प्रतीत होता था ॥ ३ ॥ उसके चरण बड़े, सूखी नासिका और शरीर पञ्जरमात्र था, उसके नेत्रों में गड्ढे पड़रहे थे, सुतराम् कौतुकसे व्याप्त हो मुनि इससे पूँछने लगे ॥ ४ ॥ हे भीषण आकृतिवाले व्यक्ति ! तू कौन है, और इस प्रकार अतीव रोदन क्यों कररहा है एवं तेरी यह अवस्था ऐसी क्यों होरही है ! बतलाओ कि हम तुम्हारा क्या (उपकार)

कुलम् ॥ ३ ॥ दीर्घांघ्रिंशुष्कतुंडंचगर्तांक्षंशुष्कपंजरम् । अथामुंकौतुकाविष्टःपप्रच्छमुनिपुंगवः ॥ ४ ॥ कोसित्वंभीषणाकारःकुतोरोदिषिदारुणम् ॥ अवस्थेयंकुतोब्रूहिकिंचाहंकरवाणिते ॥५॥ ममाश्रमप्रविष्टाहिदुःखभाजोनजंतवः ॥ मोदंतेकेवलंसर्वेवैष्णवेभवनेयथा ॥६॥ वदत्वंसत्वरंभद्रदुःखस्यैतस्यकारणम् । कालक्षेपंनकुर्वंतिप्राप्तेऽर्थेहिमनीषिणः ॥ ७ ॥ श्रुत्वेतद्वचनंप्रीतःपिशाचस्त्यक्तरोदनः ॥ उवाच दीनयावाचाप्रश्रयावनतस्तदा ॥ ८ ॥ सर्वांग-

करें ॥ ५ ॥ क्योंकि हमारे आश्रम में जीवोंको दुःख नहीं भोगना पड़ता, किन्तु वे विष्णुलोक के समान आनन्द करते हैं ॥ ६ ॥ हे सौम्य ! तुम शीघ्रही अपने इस दुःखके कारण को सुनाओ, कारण कि, बुद्धिमान् लोग अर्थ (प्राप्ति) का समय उपस्थित होने पर कालक्षेप नहीं करते हैं ॥ ७ ॥ ये वाक्य सुन रोदन त्याग पिशाच प्रसन्न होगया, और विनय से मुख नीचाकर दीनवाणीसे कहने लगा ॥ ८ ॥ जैसे ग्रीष्मऋतु में दावानलसे प्रादुर्भूत हुए पहाड़ी सन्तापको

वर्षाकरके मेघहि अपहरण करलेता, इसीप्रकार हमारे समस्त अंगके सन्तापको आपके वचनोंने हर लिया है ॥ ९ ॥ हे द्विजराज ! मेरा कुछ न कुछ पुण्य अवश्य है, इसीकारण आपके दर्शन प्राप्त हुए हैं, कारण कि जिन्होंने पुण्योंका संचय नहीं किया है, महात्माओंके साथ उनका समागम नहीं होता ॥ १० ॥ यों कहकर उसने अपनी पूर्वकथाका वर्णन किया कि, मैं विष्णुभगवान्से द्वेष करनेहीके अपराधसे इस दशाको प्राप्त हुआ हूँ ॥ ११ ॥ प्राणत्याग करनेके

व्यापिसंतापंजहारत्वद्वचोर्मयि ॥ ग्रीष्मेदावानलोद्भूतंवर्षन्मेघइवाचले ॥९॥ यन्मेस्तिसुकृतं किंचित्तेनदृष्टोसिमेद्विज ॥ नह्यसंचितपुण्यानांसद्भिरेकत्रसंगमः ॥१०॥ इत्युक्त्वाकथयामास-पूर्ववृत्तांतमात्मनः ॥ विष्णुद्वेषप्रदोषेणदशामेतामहंगतः ॥ ११ ॥ यन्नामप्राणान्मुक्तोहिस्मृ-त्वाविष्णुपदंव्रजेत् ॥ पापिष्ठोहिहरौतस्मिन्ममद्वेषोऽभवद्द्विज॥१२॥यःपालयतिभूतानिधर्म-यातिजगत्त्रये ॥ योंतरात्माचभूतानांतस्मिन्द्वेषोममाभवत् ॥ १३ ॥ कर्मणाफलदोयोऽत्रसर्व-

समय जिनके नामका स्मरण करनेसे बड़े पापी भी विष्णुपदका लाभ करते हैं, हे द्विजराज ! उन्हीं नारायणसे मेरा द्वेष था ॥ १२ ॥ जो सब प्राणियोंका पालन करता है, जो त्रिलोकीमें धर्म होकर प्राप्त होता है, और जो सब प्राणियोंका अन्तरात्मा है, उसीसे मेरा द्वेष था ॥ १३ ॥ जिसको सब वेदोंमें कर्मोंका फल देनेवाला वर्णन किया गया है, एवं तपश्चर्याओंके द्वारा ब्राह्मणलोग जिसका भजन करते हैं उसीसे मैंने वैर किया ॥ १४ ॥ जिन्होंने समस्त

क्रियाओं और संगविका परित्याग कर दिया है, अतएव जो एकाकी विचरते और वनवासके अनुरागी हैं ऐसे यति-लोग वेदान्तज्ञानसे जिनकी चिन्तना करते हैं, वेही हरि मेरे द्वेषी थे ॥ १५ ॥ ब्रह्माआदि सब देवता और सन-कादिक सब योगी मुक्तिकी कामनासे जिसकी अर्चा करते हैं उसी ईश्वरसे मैंने द्वेष किया ॥ १६ ॥ जो आदि मध्य

वेदेषुगीयते ॥ तपोभिरिज्यतेविप्रैःसमेद्वेषवशंगतः ॥ १४ ॥ त्यक्तक्रियैःप्रियारण्यैर्निःसंगै-
कचरैश्चयः ॥ वेदांतेयतिभिर्ध्येयःसमेद्वेषोहरिर्द्विज ॥ १५ ॥ ब्रह्मादयःसुराःसर्वेयोगिनः
सनकादयः ॥ मुक्त्यर्थमर्चयंतोहसविष्णुर्द्वेषितोमया ॥ १६ ॥ आदौमध्येवसानेयोविश्वधाता
सनातनः ॥ यस्यनैवादिमध्यांतःसमेद्वेषपदंययौ ॥ १७ ॥ यन्मयासुकृतंकर्मकृतंप्राक्तनजन्मनि ॥
विष्णुद्वेषाग्निनादग्धंतत्सर्वंभस्मसाद्भूत् ॥ १८ ॥ कथंचिदस्यपापस्यसीमांपश्यामिचेदहम् ॥
मुक्त्वानारायणंनान्यमर्चयिष्यामिदेवताम् ॥ १९ ॥ विष्णुद्वेषाच्चिरंभुक्तामयानरकयातनाः ॥

और अन्तमें सदासे जगत्का पालन और धारण करनेवाले हैं और जिनका स्वयं आदि मध्य अन्त नहीं है, उन्हीं भगवान्से मैंने द्वेष किया ॥ १७ ॥ पूर्वजन्ममें मैंने जो कुछ पुण्य किया भी था, वह सब विष्णुभगवान्के द्वेषरूप अग्निसे जलकर भस्म होगया ॥ १८ ॥ यदि किसीप्रकार मुझे इस पापकी सीमा दृष्टिगत हो तो मैं नारायणको छोड़

अन्य किसी देवता की पूजा न करूँ ॥१९॥ विष्णुभगवान् से द्वेष करनेके कारण चिरकालपर्यन्त मैंने नरकों की यातना भोगी, अब वहाँ से निकलनेपर मुझे पिशाचयोनि प्राप्त हुई है ॥ २० ॥ अब किन्हीं कर्म मन्त्रों से आपके आश्रम में आ पहुँचा, और यहाँ आपके दर्शनरूप सूर्य्य से मेरे दुःखों का अन्धकार मिटगया ॥ २१ जहाँ मरण, बन्धन, श्री

निरयान्निःसृतःसोहंपैशाचींयोनिमागतः ॥ २० ॥ अधुनाकर्ममंत्रैःकैरथानीतस्त्वदाश्रमम् ॥ यत्रत्वद्दर्शनार्कान्मेनष्टंदुःखमयंतमः ॥ २१ ॥ प्राप्यतेमरणंयत्रबंधनंश्रीःसुखंवधूः ॥ सतत्रलीयतेस्वेनकर्मणागलहस्तिना ॥२२॥ इदानीमुचितंकर्मब्रूहिपैशाच्यनाशनम् । परोपकारकार्येहिनधन्यामंदगामिनः ॥२३॥ देवद्युतिरुवाच ॥ अहोमुष्णातिमायेयंदेवासुरनृणांस्मृतिम् ॥ ययादेवेष्वपिद्वेषोजायतेधर्मनाशनः ॥२४॥ स्रष्टापालयिताहर्ताजगतांयामहेश्वरः ॥

(लक्ष्मी) अथवा सुख और वधूकी प्राप्ति होती है अपने कर्म गले में हाथ डाल वहाँ हो लेजाते हैं ॥ २२ ॥ अब आप पिशाचयोनि से मुक्त करनेवाले उचित कर्मका उपदेश करिये, क्योंकि सज्जन महात्मा लोग परोपकार करनेमें ढील नहीं करते हैं ॥ २३ ॥ देवद्युति बोला—आश्चर्य्य है कि, यह माया देवता दैत्य और मनुष्य सबही की स्मृतिको अपहरण करलेती है, अतएव देवताओं के प्रतिभी धर्मका नाश करनेवाले द्वेषका प्रादुर्भाव होजाता है ॥ २४ ॥ जो

महेश्वर संसार के रचने, पालने और संहार करनेवाले हैं एवं जो सब प्राणियों के आत्मा हैं अन्यथा कौन मूर्ख उनसे किसी प्रकार द्वेष कर सकता है ? ॥ २५ ॥ जिनके अर्पण करनेसे समस्त कर्म सफल हो जाते हैं, उन ईश्वरकी भक्तिसे विमुख होकर किस मनुष्यको दुर्गति की प्राप्ति नहीं होती ? ॥ २६ ॥ श्रुति स्मृति और सदाचार विहित कर्मोंकी चारों

आत्माचसर्वभूतानांतंमूढोद्वेष्टिकःकथम् ॥ २५ ॥ भवंतिसर्वकर्माणिसफलानियदर्पणात् ॥
तद्भक्तिविमुखोमर्त्यःकोनयातीहदुर्गतिम् ॥ २६ ॥ श्रुतिस्मृतिसदाचारविहितंकर्मकेवलम् ॥
सेवितव्यंचतुर्वर्णैर्भजनारायणंसदा ॥ २७ ॥ अन्यथानिरयंयांतिविनाह्यागमसेवनात् ॥
अतोवेदविरुद्धार्थंशास्त्रोक्तंकर्मसंत्यजेत् ॥२८॥ स्वबुद्धिरचितैःशास्त्रैःप्रतार्येहतुबालिशान् ॥
विघ्नंतिश्रेयसोमार्गंलोकनाशायकेवलम् ॥२९॥ निंदंतिदेवतावेदांस्तपोनिंदंतिसद्द्विजान् ॥

वर्णोंको सेवा करनी चाहिये और नारायण भजन करना कर्त्तव्य है ॥ २७ ॥ यदि ऐसा न करें और शास्त्रोक्त कर्मोंका सेवन करें तो नरक में जाना होता है, अतएव शास्त्रोक्त कर्म यदि वेद विरुद्ध हों तो उनका परित्याग कर देना चाहिये ॥ २८ ॥ जो निजरचित शास्त्रों के आधार से मूर्खों को ठगते हैं वे केवल धर्मका नाश करने के लिये धर्मपथमें विघ्न डालते हैं ॥ २९ ॥ निकृष्ट शास्त्रों का सेवन करनेसे वे लोग देवताओं, वेदों, तप और ब्राह्मणों की निन्दा करते

हैं और इसीकारण उन्हें नरकमें जाना होता है ॥ ३० ॥ बड़े आश्चर्यकी बात है कि, सन्मार्गमें निष्ठ हुए, और सदाचारी राजाकी बुद्धि दैववशात् दुष्ट हो कुमार्गका अनुसरण करने लगी ॥ ३१ ॥ दुष्टोंकी संगति भला किसको दुःखदायिनी नहीं होती, श्रुति स्मृति और सदाचारके विधान किये सनातन धर्मका ॥ ३२ ॥ यत्नपूर्वक उन

लेनतेनरकंयांतिह्यसच्छास्त्रनिषेवणात् ॥ ३० ॥ अहोसन्मार्गनिष्ठस्यसच्चरित्रस्यभूपतेः ॥
जाताविधिवशाद्दुष्टाकुमार्गाकुलिनीमतिः ॥ ३१ ॥ असतांसंगतिःकस्यमूलंनविपदांभवेत् ॥
श्रुतिस्मृतिसदाचारविहितंशाश्वतंपरम् ॥३२॥ स्वस्वधर्मंप्रयत्नेनश्रेयोर्थीहसदाचरेत् ॥ स्वबु-
द्धिरचितैःशास्त्रैर्मोहयित्वाजनंजडाः ॥३३॥ हरिशंकरयोपापायत्रभेदंहिकुर्वते ॥ हरेहरौच-
धर्मात्मानभेदहृदयंचरेत् ॥ ३४ ॥ अयमेवयथाराजाद्राविडोनिरयंगतः ॥ द्विषन्नारायणं-
देवंदेवदेवंजगत्प्रभुम् ॥३५॥ तस्माद्द्वेषंहिदेवेषुब्राह्मणेषुविशेषतः ॥ संत्यजेत्पुण्यकामीत्रवे-

व्यक्तियोंको सेवन करना चाहिये, जो सदा कल्याणकी कामना करते हैं ॥ ३३ ॥ मूर्ख और पापी लोग अपने निर्माण किये हुए शास्त्रोंसे मनुष्योंको मोहित कर विष्णु और महादेवमें भेद करने लगते हैं, अतएव धर्माचारीको चाहिये कि, शिव और विष्णुमें भेद न समझे ॥ ३४ ॥ क्योंकि यह द्राविड़देशका राजा देवाधिदेव जगन्नाथ

भगवान्से द्वेष करनेके कारण नरकगामी हुआ था ॥ ३५ ॥ अतएव जो मनुष्य अपने पुण्यकी कामना करता हो उसे चाहिये कि, देवताओं और खासकर ब्राह्मणोंसे द्वेष न करै, एवं वेदबाह्य क्रियाओंको भी छोड़ दे ॥ ३६ ॥ यों कहकर मुनिराज उस पिशाचसे हितकारी वचन कहने लगे कि, हे सौम्य ! तुम माघमासमें प्रयागको जाओ ॥ ३७ ॥ वहां स्नान करनेसे तुम्हारी पिशाचयोनिसे अवश्य मुक्ति हो जायगी, इसमें कुछभी सन्देह नहीं है, क्योंकि सनातनकी

दबाह्यांक्रियांत्यजेत् ॥ ३६ ॥ इत्युक्त्वाकथयामासपिशाचायहितंमुनिः ॥ प्रयागंगच्छभो-
भद्रमाघमासंविचारय ॥ ३७ ॥ यत्रतेनिश्चितामुक्तिःपैशाच्याभ्नसंशयः ॥ तत्राप्लुतादिवं-
यांतिश्रुतिरेषासनातनी ॥ ३७ ॥ विजहातिनरस्तत्रप्राक्तनंकर्मदुष्कृतम् ॥ प्रयागस्नानतो-
नास्तिकाप्यन्यदधिकंपरम् ॥३९॥ प्रायश्चित्तंतपोरूपंदानरूपंक्रियात्मकम् ॥ यागयोगाधिकं
विद्धिप्रयागंपापिनामपि ॥४०॥ स्वर्गापवर्गयोर्द्वारंतत्पृथिव्यामपावृतम् ॥ सितासितोदवेणी-

यह श्रुति है कि, वहां स्नान करनेवाले व्यक्ति स्वर्गगामी होते हैं ॥ ३८ ॥ वहां स्नान करनेसे मनुष्य अपने प्राचीन दुष्कर्मोंका परित्याग करदेते हैं, प्रयाग स्नानकी अपेक्षा अधिकपुण्यदायक अन्य कहीं भी कुछ नहीं है ॥३९॥ तपश्चर्यारूप प्रायश्चित्त दानरूप क्रियया योग और योग इन सबकी अपेक्षा प्रयाग पापियोंको अधिक सिद्धिदेनेवाला है ॥ ४० ॥ यह पृथिवीके ऊपर स्वर्गका खुला हुआ द्वार है, गंगा यमुना और त्रिवेणीको छोड़ भूमिके ऊपर अन्य

कोई स्थान ऐसा पवित्र नहीं है, जो मनुष्य पापकी बेड़ियोंके बन्धनसे अकड़े हुए हैं उनका बन्धन काटनेके लिये यह एक कुल्हाड़ी है ॥ ४१ ॥ कहाँ तो विष्णु सूर्य्यतेज अग्नि और गंगा यमुनाका संगम, और कहाँ मनुष्योंके पापरूप तृणोंकी बेचारी तुच्छ आहुति ॥ ४२ ॥ जिसप्रकार शरद्ऋतुमें घने अन्धकारका नाश हो जाने पर चन्द्रमा सुशोभित होता

यातांहित्वाभुविनापरा ॥ पापनैगडबद्धस्यच्छेदनैककुठारिका ॥ ४१ ॥ कविष्णुःसूर्यतेजो-ऽग्निर्गंगायामुनसंगमः ॥ क्ववराकीनृणांतुच्छापापराशितृणाहुतिः ॥ ४२ ॥ मलीमसघनध्वांसे यथाशरदिचंद्रमाः ॥ भातिपापक्षयादूर्ध्वंनरोवेणीजलाप्लुतः ॥४३॥ सितासितस्यमाहात्म्य महंवक्तुनतेक्षमः ॥ यत्तोयकणसंस्पृष्टोमुक्तःकेरलकोद्विजः ॥ ४४ ॥ इतिवाक्यमृषेः श्रुत्वा-पिशाचस्तुष्टमानसः ॥ मुक्तःदुःखइवप्रीतःपप्रच्छप्रणयान्मुनिम् ॥४५॥ कथंकेरलदेशीयाद्वि-

है, ऐसेही त्रिवेणीके जलमें स्नान करनेके अनन्तर निष्पाप होजानेके कारण मनुष्योंकी भी विशेष शोभा होती है ॥ ४३ ॥ गंगा यमुनाका माहात्म्य वर्णन करनेके लिये मेरी शक्ति अलम् नहीं है, कारण कि उसके जलविन्दु का स्पर्श करनेसे केरलदेशीय ब्राह्मणकी मुक्ति होगई ॥ ४४ ॥ ऋषिके ऐसे वाक्य सुन पिशाचका चित्त सन्तुष्ट होगया, और जैसे इसके सब दुःख दूर होगये हैं ऐसा प्रसन्न हो नम्रता पूर्वक ऋषिसे पूछने लगा ॥ ४५ ॥ हे महामुने !

केरलदेशके ब्राह्मणकी मुक्ति किस प्रकारसे हुई मेरे ऊपर करुणा करके इस वृत्तान्तको वर्णन करिये ॥ ४६ ॥

इति श्रीमाघमासमाहात्म्ये भाषाटीकायां एकविंशतितमोऽध्यायः ॥ २१ ॥

देवद्युति बोला—सुनो पिशाच ! हम पवित्र कथाका वर्णन करते हैं, केरलदेशमें वसु नामवाला एक वेदपार-

जोमुक्तोमहामुने ॥ एतंकथयवृत्तांतंसंस्मृत्यकरुणांमयि ॥ ४६ ॥ इति श्रीपद्मपुराणे उत्तर-खंडे माघमाहात्म्ये वसि० पिशाचाख्यानंनाम एकविंशतितमोऽध्यायः ॥ २१ ॥

देवद्युतिरुवाच ॥ ॥ पिशाचशृणुपुण्यामेकथांकथयतः शुभाम् ॥ केरलेवसुनामात्र-ब्राह्मणोवेदपारगः ॥ १ ॥ दायादैर्हृतवित्तस्तुनिर्धनोबंधुवर्जितः ॥ जन्मभूमिंपरित्यज्यमहा-दुःखेनदुःखितः ॥२॥ देशाद्देशांपरिभ्राम्यकालेनमहतापुनः ॥ प्रविश्यसमहारण्यमोपद्रव्य'धि-प्रपीडितः ॥ ३ ॥ गच्छंस्तीर्थांतरंश्रांतःक्षुत्क्षामोविंध्यपर्वते ॥ दुर्भिक्षेणमृतिंलेभेनदाहंचौर्ध्व-

गामी ब्राह्मण था ॥ १ ॥ जब उसके कुटुम्बियों ने उसके धनका अपहरण करलिया, तब वह निर्धन और निर्जन हो अत्यन्त दुःखसे दुःखित होकर अपनी जन्मभूमिको छोड़ ॥ २ ॥ एक देशसे दूसरे देशमें घूमता फिरता बहुत दिनोंके पश्चात् कुछ व्याधिसे पीड़ित हो गह्वरवनमें चला गया ॥ ३ ॥ अन्त में तीर्थकी यात्रा करता २ क्षुधासे व्याकुल

हो विंध्याचलके ऊपर थककर दुर्भिक्षके कारण मरगया, परन्तु उसका दाह तथा और्ध्वदेहिक संस्कार कुछ न हुआ ॥ ४ ॥ इसी घोर कर्मफलके कारण उसी पर्वतके गहन एवं निर्जन वनमें प्रेत होकर उसने बहुत दिनोंतक निवास किया ॥ ५ ॥ शीत और धूपकी पीडासे वह बड़ा व्यथित रहता था. उसको भोजन और जलकी भी प्राप्ति नहीं होती थी, न उसके पास वस्त्र थे और न जूतेही थे, अतएव वह लंबी २ साँसें लेता और हाय हाय करता

देहिकम् ॥ ४॥ तेनकर्मविपाकेनतत्रैवगिरिगह्वरे ॥ प्रेतभूतश्चिरंकालमुवासनिर्जनेवने ॥ ५॥
शीतातपपरिक्लिष्टोनिराहारोनिरूदकः ॥ दिगंबरोह्यनुपानत्कोगिराहाहेतिनिःश्वसन् ६ ॥
इतस्ततःपरिभ्राम्यवायुभूतःसकेरलः ॥ द्विजोनशरणंलेभेनसुखंकुत्रचित्तदा ॥ ७ ॥ संशो-
चतिस्मदुःखार्तोनैवपश्यतिसद्गतिम् ॥ सर्वदादत्तदानंसभुंक्तेस्वंकर्मणःफलम् ॥ ८ ॥ हवि-
र्जुह्वतिनाग्नौयेगोविन्दंनार्चयन्तिये ॥ भजंतेनात्मविद्यांयेसुतीर्थविमुखाश्चये ॥ ९ ॥ सुवर्णवस्त्र-

फिरता था ॥ ६ ॥ वह केरलदेशीय ब्राह्मण वायुरूपसे इधर उधर घूमता फिरता था परन्तु न तो उसको कोई शरण देनेवालाही मिला और अतएव न उसे कहीं सुखकी ही प्राप्ति हुई ॥ ७ ॥ यद्यपि वह दुःखसे व्याकुल हो नित्यही सोचता था, पर उसे सद्गतिकी प्राप्ति नहीं होती थी, वह कभी भी दान न करनेरूप अपने कर्मफलको भोगता था ॥ ८ ॥ जो व्यक्ति अग्निमें हवन नहीं करते, जो विष्णु भगवानकी पूजा नहीं करते, जो अध्यात्मविद्याका

मजन नहीं करते, जो उत्तमोत्तम तीर्थोंकी यात्रा नहीं करते हैं ॥ ९ ॥ और जो दुःखितोंको सुवर्ण, वस्त्र, ताम्बूल, मणि, अन्न एवं जल नहीं देते उन सबको कृतघ्न समझना चाहिये ॥ १० ॥ जो प्राणी ब्राह्मणोंका द्रव्य, दूसरों का अथवा स्त्रियोंका धन अपहरण करते हैं, जो धूत बल अथवा छलसे दूसरों को ठगते हैं ॥ ११ ॥ जो पाखण्डी, मायावी, अथवा चोर हैं, जो अग्निकी वृत्तिवाले हैं, एवं जो बालक, वृद्ध, रोगी और स्त्रियोंके ऊपर दया नहीं करते,

तांबूलंमणिमन्नंफलंजलम् आर्तेभ्योनप्रयच्छंतिसर्वेतेकृतघ्नकाः ॥१०॥ ब्रह्मस्वंचपरस्वं-चस्त्रीधनानिहरन्तिये ॥ बलेनच्छद्मनावापिधूर्ताश्चपरवंचकाः ॥ ११ ॥ दांभिकाःकुहकाश्चौ-रायेचपावकवृत्तयः ॥ बालवृद्धातुरस्त्रीषुनिर्दयाःसत्यवर्जिताः ॥ १२ ॥ अग्निदागरदायेचये-चान्येकूटसाक्षिणः ॥ अगम्यागामिनःसर्वेयेचान्येग्रामयाजिनः ॥१३॥ पितृमातृस्नुषापत्य-स्वदारत्यागिनश्चये ॥ येकदर्याश्चलुब्धाश्चनास्तिकाधर्मदूषकाः ॥ १४ ॥ त्यजन्तिस्वामिनं

तथा जो असत्यवादी हैं ॥ १२ ॥ जो अग्नि लगानेवाले विष देनेवाले अथवा झूठी गवाही देनेवाले हैं जो अगम्या स्त्रियोंसे गमन करते हैं. जो ग्रामका यजन करनेवाले हैं ॥ १३ ॥ जो पिता, माता, पुत्रवधू, सन्तान एवं अपनी पत्नीका परित्याग करते हैं, जो कदर्य (निन्दित धनके स्वामी) लोभी, नास्तिक (वेद और ईश्वरको न माननेवाले) और धर्मके निन्दक हैं ॥ १४ ॥ तथा जो संग्राममें स्वामीको त्याग देते हैं और शरणागतका त्याग करते हैं और

गौवोंका वध करते हैं तथा रत्नोंको दूषित करनेवाले हैं ॥ १५ ॥ जो पापी दूसरोंको अपवाद लगानेवाले, देवताओं और गुरुकी निन्दा करनेवाले हैं, एवं जो सब बड़े २ क्षेत्रोंमें प्रतिग्रह (दान) लेते हैं ॥ १६ ॥ जो परद्रोह करने में निरत हैं, जो प्राणियों की हिंसा करते हैं, और जो निकृष्ट दान लेते हैं; ये सब लोग ॥ १७ ॥ प्रेत राक्षस,

शुद्धेत्यजंतिशरणागतम् ॥ गर्भभूमेश्चहंतारोयेचान्येरत्नदूषकाः ॥ १५ ॥ परापवादिनःपापा-देवतागुरुनिंदकाः ॥ महाक्षेत्रेषुसर्वेषुप्रतिग्रहरताश्चये ॥ १६ ॥ परद्रोहरतायेचतथाचप्राणि-हिंसकाः ॥ कुप्रतिग्राहिणःसर्वेतेभवंतिपुनःपुनः ॥ १७ ॥ प्रेतराक्षसपैशाचतिर्यग्वृक्षकुयो-निषु ॥ नतेषांसुखलेशोस्तिइहलोकेपरत्रच ॥ १८ ॥ तस्मात्त्यक्त्वानिषिद्धार्थंविहितंकर्मचा-चरेत् ॥ यज्ञंदानंतपस्तीर्थंमंत्रंदेवंगुरुंभजेत् ॥ १९ ॥ विपाककर्मणांदृष्ट्वायोनिकोटिषुदुस्तरम् ॥ चतुर्भिरपिवर्णैश्चसेव्याधर्मोनिरन्तरम् ॥ २० ॥ इतिप्रेतगतिंदृष्ट्वापापभीजोऽस्थितांहिसः ॥

पिशाच, कीट पतंगादिक, वृक्ष एवं अन्य नीच योनियोंमें बारंबार जन्म लेते हैं, और इनको इसलोक और परलोक-में कहीं सुखका लेशमात्रभी प्राप्त नहीं होता ॥ १८ ॥ इस कारण निषिद्धकर्मोंका परित्याग करके विहितकर्मों का आचरण करना कर्त्तव्य है, और यज्ञ, दान, तप, तीर्थ, मन्त्र देवता तथा गुरुका भजन करै ॥ १९ ॥ कर्मों का

फल करोडों योनियोंमें भी भोग लेना बड़ा कठिन है, ऐसा समझकर ब्राह्मण क्षत्रिय वैश्य और शूद्र चारों वर्णों को निरन्तर धर्मकी सेवा करना कर्त्तव्य है ॥ २० ॥ पापरूप बोजमें उत्पन्न हुई उस प्रेतकी ऐसी बातें देख और उसको धर्मका उपदेश करके वह ब्राह्मण फिर उससे कहने लगा ॥ २१ ॥ इसप्रकार वह केरल देशका प्रेत पर्वतके ऊपर निवास करते २ जब कुछ समय व्यतीत करचुका, तब उसे मार्गमें कोई पथिक दीखा ॥ २२ ॥

कृत्वाधर्मोपदेशंचपुनस्तस्मैद्विजोऽब्रवीत् ॥२१॥ इत्थंसकेरलःप्रेतोवर्त्तमानोगिरौतदा ॥ अतिवाह्यचिरंकालमपश्यत्पथिकंपथि ॥ २२ ॥ वहंतंढौकंडौचद्रोणीजलप्लुतौतथा ॥ गायंतंप्रमुखादेवंपुण्यश्लोकंजनार्दनम् ॥२३॥ तंदृष्ट्वासहसाप्रेतोमार्गरोधंचकारसः । दर्शयामासचात्मानंमाभैषीरित्युवाचसः ॥ २४ ॥ पानीयंपातुमिच्छामित्वत्तःकार्पटिकोत्तम ॥ नपास्यसिजलंचेन्मांप्राणायास्यंतिमेदृढम् ॥२५॥ इतिप्रेतवचःश्रुत्वापांथःप्रत्याहकौतुकात् कस्त्वंदुः-

त्रिवेणीजीके जलकी दो कंडियें लिये, पवित्र चरित्र श्रीविष्णुभगवान्का गुण गान करता जा रहा था ॥ २३ ॥ उसे देख तत्काल ही प्रेतने उसके मार्गको रोका और अपने शरीरको दिखाके कहा कि, तुम डरना मत ॥ २४ ॥ हे कामार्थी ! मैं तुम्हारे पाससे जलपान करना चाहता हूँ, और यदि आप मुझे जल न पिलावेंगे तो हमारे प्राण अवश्य चले जायेंगे ॥ २५ ॥ प्रेतके ऐसे वचन सुन कौतुकपूर्वक पथिकने कहा, दुःखसे पीड़ित, दुर्बल, मलीन और

दिगंबर (नंगा) तू कौन है ॥ २६ ॥ तेरे शरीरमें केवल प्राणही शेष रहगये हैं, सुतराम् तू मरनेकी इच्छा करता है, तेरा रूप बड़ा विकृत है अतएव तुम्हारा अवलोकन करनेसे भयकी वृद्धि होती है, तेरा आकार नवीन धूएँके समान श्याम है, तू स्वयं चंचल और तेरे नेत्र चंचल हैं ॥ २७ ॥ तेरे चरण भूमिके ऊपर नहीं ठहरते, तेरे उदर और भुजाओंमें माँसका अभाव है. उस पथिकके ऐसे वाक्य सुन प्रेत कहने लगा ॥ २८ ॥ सुनो धर्मात्मा ! जिस-

स्वाभिभूतस्तुकृशोम्लानोदिगंबरः ॥२६॥ जीवशेषोमुमूर्षुश्चविकृतोभयवर्धनः ॥ नवधूमया-
कारश्चंचलश्चललोचनः ॥ २७ ॥ पद्भ्यामस्पृष्टभूमिस्त्वंनिर्मांसोदरबाहुकः ॥ इतितद्वचनंश्रु-
त्वाप्रेतोवाक्यमथाब्रवीत् ॥ २८ ॥ शृणुधर्मिष्ठतेवच्मिनाहमीदृशोभवम् ॥ ब्राह्मणोदत्तदा-
नोहंलोभीचर्मलिनक्रियः ॥२६॥ परान्नंचसदाभुक्तमेकाकीमिष्टभोजनः ॥ मयादत्तानभिक्षा-
पिहंतकारोनपुष्कलः ॥३०॥ नकृतोवैश्वदेवस्तुप्राक्षिप्तोनबहिर्बलिः ॥ भूतानांतुतृषार्तानांन-

प्रकार मैं ऐसा होगया सो तुम्हारे प्रति वर्णन करता हूं, मैं ब्राह्मण था हूँ, पर मैंने कभी दान नहीं दिया, मेरी क्रिया सब मलीन हैं, एवं मैं अतीव लोभी था ॥ २६ ॥ मैंने सदैव दूसरोंहीके अन्नका उपभोग किया, सदा मिष्ट पदार्थ अकेलेही भोजन करें, मैंने भिक्षा अथवा हन्तकार भी कभी नहीं दीया ॥ ३० ॥ न तो कभी बलिवैश्वदेवही क्रिया, अथवा अन्य किसी भाँतिकी बलि भी नहीं निकाली, एवं प्यासे प्राणियोंको पानी पिलाकर उनकी प्यास

भी मैंने कभी नहीं बुझाई ॥ ३१ ॥ भूमिके ऊपर विचरनेके समय मैंने कभी पितृतर्पण भी नहीं किया, न श्राद्ध किया और न देवताओंकी पूजा करी ॥ ३२ ॥ वर्षा और धूपसे रक्षा करनेके लिये छतरी तथा जूते किसीको न दिये, जलपात्र, ताम्बूल और औषधिभी मैंने किसीको नहीं दी ॥ ३३ ॥ मैंने किसीको अपने घर नहीं ठहराया, किसीका

हतापयसाचतृट् ॥३१॥ कदाचित्पितरोनैवतर्पिताअटतामहीम् ॥ नचश्राद्धंकृतंकापिपूजितानैवदेवताः ॥ ३२ ॥ वर्षातपपरित्राणंनदत्तंपादरक्षणम् ॥ जलपात्रंनदत्तंचतांबूलंनौषधंमया ॥ ३३ ॥ नगृहेवसतिर्दत्तानातिथ्यंकस्यचित्कृतम् ॥ अंधवृद्धाधनानाथदीनांःपानान्नतोषिताः ॥३४॥ गवांग्रासोनदत्तोवैनरोगीपरिमोचितः ॥ नदत्तानहुताविप्रपवित्राश्चतिलामया ॥३५॥ पृथिव्यांतिलदातारोनभवंतितुमद्विधाः ॥ व्यतीपातेनदत्तंहिकिंचित्स्वर्णंमहाफलम् ॥३६॥ संक्रांताबुपरागेचनदत्तंसूर्यचंद्रयोः ॥ पर्वाण्यन्यानिसर्वाणिजग्मुःशून्यानि-

अतिथि सत्कार भी नहीं किया, एवं अंधे वृद्ध निर्धन और दीन दुखियोंको भोजन और जलसे कभी तृप्त नहीं किया ॥ ३४ ॥ गोग्रास नहीं दिया, और न किसी रोगीको भी मैंने मुक्ति किया अथच हे विप्र ! पवित्र तिलोंका न तो मैंने कभी दान किया, और न कभी उनका हवन किया ॥ ३५ ॥ जो मनुष्य भूमिके ऊपर तिल दान करते

हैं, वे मेरे समान दुःखित नहीं होते, प्रभूत फल देनेवाला सुवर्ण भी मैंने व्यतीपातमें दान करके कभी नहीं दिया ॥ ३६ ॥ संक्रान्ति एवं सूर्य्य चन्द्रमाके ग्रहणमें भी मैंने कभी दान नहीं किया, और हे द्विज ! अन्यान्य पर्व दिन भी बिना दान कियेही शून्य व्यतीत हो गये ॥ ३७ ॥ कार्तिकमासकी मुख्य-मुख्य तिथियें भी वन्ध्या (शून्यही) निकल गईं एवं अष्टका तिथियों और मघाओंमें भी मैंने पितरोंको कुछ नहीं दिया ॥ ३८ ॥ मन्वादि

मेद्विज ॥ ३७ ॥ तिथयःकार्तिकेमुख्याजातावन्ध्याः सदामम ॥ पितृभ्योनैवदत्तंवाअष्टकासु-मघासुच ॥ ३८ ॥ द्विजानांनकृताप्रीतिर्मन्वादिषुयुगादिषु ॥ नदत्तस्तिलतैलेनप्रदीपः कार्तिकेमया ॥ ३६ ॥ नस्नातोमाघमासेहंरूपसौभाग्यकामदे ॥ द्विजायवेदविदुषेगौतम्यां सिंहगेगुरौ ४०॥ मयासंकल्पितंद्रव्यंनदत्तंपूर्वंजन्मनि ॥ अग्निंप्रज्वाल्यकाष्ठौघैः स्नातानां पौषमाघयोः ॥ ४१ ॥ शीतार्तानांचविप्राणांनकृतःजाड्यनिग्रहः ॥ माधवादिषुमासेषुनदत्तं-

और युगादि तिथियोंमें भी ब्राह्मणोंको तृप्त नहीं किया, एवं कार्तिक मासमें मैंने तिलके तेलका दीपक भी नहीं दिया ॥ ३६ ॥ रूप सौभाग्य और कामनाओं के देनेवाले माघमासमें मैंने कभी स्नान नहीं किया, सिंहके बृह-स्पतिमें गौतमी नदीके तीर वेदज्ञ ब्राह्मणको ॥ ४० ॥ पहिले जन्ममें संकल्पकरके कुछ भी द्रव्य नहीं दिया, पौष अथवा माघमें स्नान करके जो शीतसे व्याकुल हो रहे हैं, अग्नि प्रज्वलित करके ॥ ४१ ॥ मैंने उनके शीतका

निवारण नहीं किया वैशाख आदि महीनोंमें शीतजल भी नहीं दिया ॥ ४२ ॥ मैंने पीपल अथवा वर्गदके वृक्षोंको न तो बोया, और न उन्हें सींचके बढ़ाया, अथच तीन रात्रि पर्यन्त उपवास धारण करके भगवान्‌को भी सन्तुष्ट नहीं किया ॥ ४३ ॥ कृच्छ्र, अतिकृच्छ्र, पराक, चान्द्रायण, तप्तकृच्छ्र या सान्तपन ॥ ४४ ॥ इत्यादि इन्द्रादि

शीतलंजलम् ॥ ४२॥ मयानारोपितोऽश्वत्थो न्यग्रोधोनैववर्धितः ॥ नोपोष्यात्रत्रिरात्राणि-तोषितोमधुसूदनः ॥ ४३ ॥ कृच्छ्रातिकृच्छ्रपाराकंतथाचांद्रायणंद्विज ॥ अथान्यत्तप्तकृच्छ्रं-चतथासांतपनानिच ॥ ४४ ॥ व्रतान्येतानिपुण्यानिजुष्टानींद्रादिभिः सुरैः ॥ चरित्वानमया-तानिदेहः संशोषितः पुरा ॥ ४५ ॥ इत्यपूर्वभवोवंध्योममजातोद्विजोत्तम ॥ पश्यद्विजमहा-क्रूरामद्भुतामत्रजन्मनि ॥ ४६ ॥ गतिंदूरप्रबाधांतुममपूर्वस्यकर्मणः ॥ सतिमांसानिमार्गे-पुष्टकव्याघ्रहतानिवै ॥ ४७ ॥ फलान्यन्यानिशैलेऽस्मिन्नश्यंनैस्त्यक्तानिसर्वतः ॥ पुण्यानिच-

देवताओंसे सेवित पवित्र व्रतोंका आचरण करके मैंने अपने देहको नहीं सुखाया ॥ ४५ ॥ इस विधिसे मेरा पहिला जन्म वृथाही गया, और हे द्विजराज ! अब इस जन्मकी मेरी अद्भुत और महाक्रूर गतिको भी तुम देखतेही हो ॥ ४६ ॥ पूर्वजन्मके कर्मानुसार मेरा ज्ञान नष्ट हो गया, मार्गों में व्याघ्र और भेड़ियोंके वध किये मांस पड़े

हैं ॥ ४७ ॥ श्येन पक्षियोंने इस पर्वतके ऊपर चारों ओर अन्य फलोंका परित्याग कर दिया है, पवित्र सुगन्धित और रसीले फल ॥ ४८ ॥ कोमल मधुर और अतएव भक्षण करनेके योग्य भांति २ के मूल एवं प्रभूत मधु हैं ॥ ४९ ॥ अथच सोतों और झरनोंके सुन्दर जल सर्वत्र विद्यमान हैं, यद्यपि इस पर्वतके ऊपर उक्त सबही

सुगंधीनिफलानिरसवंतिच ॥ ४८ ॥ मुलानितुसुभक्ष्याणिमृदूनिमधुराणिच ॥ नानाविधा-नितिष्ठंतमधूनिसुबहून्यपि ॥ ४९ ॥ स्रोतसांनिर्झराणांचसंतिवारीणिसर्वशः ॥ सुलभेषुप-दार्थेषुसर्वेष्वेतेषुपर्वते ॥ ५० ॥ नेत्तोह्मशनंकापिदैवेनापिहतंसदा ॥ वाताहारेणजीवामिय-थाजीवंतिपन्नगाः ॥५१॥ पुनर्जीवामिभोविप्रदेवयोनिप्रभावतः ॥ बलेनप्रज्ञयानित्यंमंत्रपौरुष-विक्रमैः ॥ ५२ ॥ सहायैश्चैवमित्रैश्चनालभ्यंलभतेनरः ॥ लाभेलाभेसुखेदुःखेविवाहेमृत्युजी-वने ॥ ५३ ॥ भोगेरोगेवियोगेचदैवमेवहिकारणम् ॥ कुरूपाः कुकुलामूर्खाः कुत्सिताश्चारु-

पदार्थ सुलभ हैं ॥ ५० ॥ चूँकि मैं मन्दभागी हूँ अतएव इन सबमें मेरे भक्षण करने का भागही नहीं है, सुतराम् मैं सर्पोंकी भांति पवन भक्षण करके जीवित रहता हूँ ॥ ५१ ॥ और हे विप्र ! फिर देवयोनिके प्रभावसे भी जीवित हूँ, बल, बुद्धि, मन्त्र, पौरुष और पराक्रम ॥ ५२ ॥ मित्रों एवं अन्यान्य सहायोंसेभी मनुष्यको अलभ्य वस्तु नहीं

मिल सकती, हानि लाभ सुख दुःख विवाह, जीवन और मरण ॥ ५३ ॥ भोग रोग वियोग इन सबके लिये प्रारब्धही एक कारण है, कुरूप, नीच कुलमें प्रादुर्भूत हुए, मूर्ख, कुटिल अतएव अन्य श्रेष्ठ व्यक्तियोंकी निन्दा करनेवाले ॥ ५४ ॥ एवं शूरता और पराक्रम रहित भी व्यक्ति भाग्यवशात् राज्यका उपभोग करते हैं, काने, लूले लँगड़े, जिनका स्वरूप अमंगलकारी है, जो नीति नहीं जानते जिनमें बहुतसे दुर्गुण हैं ॥ ५५ ॥ अथच जो

निंदकाः ॥ ५५ ॥ शौर्यविक्रमहीनाश्चदैवाद्राज्यानिभुंजते ॥ काणाःखंजाअभव्याश्चनी-तिहीनाश्चदुर्गुणाः ॥ ५५ ॥ नपुंसकाश्चदृश्यंतेदैवाद्राज्येप्रतिष्ठिताः ॥ यर्दत्ताश्चतिलागावो-हिरण्यंवसनानिच ॥५६॥ गौरीकन्याचयैर्दत्तायैर्दत्ताचवसुंधरा ॥ शय्यासनानितांबूलंमंदि-राणिधनानिच ॥ ५७ ॥ भक्ष्यभोज्यानिदत्तानिचंदनान्यगरूणिच ॥ अटव्यापर्वताग्रेचग्रा-मेवानगरेपिवा ॥ ५८ ॥ पुरः पुरश्चतिष्ठंतितेषांभोगाः प्रयत्नतः ॥ संत्यत्रपर्वतेऽन्येपिराज-

नपुंसक हैं, भाग्यवशात् वे भी राज्यके ऊपर अधिष्ठित हुए दीखते हैं, जिन्होंने तिल, गौ, सुवर्ण और वस्त्रोंका दान किया है ॥ ५६ ॥ जिन्होंने गौरी (आठ वर्षकी) कन्याका विवाह किया, जिन्होंने भूमि शय्या आसन ताम्बूल मन्दिर धन ॥ ५७ ॥ भक्ष्य (फांकनेके पदार्थ) भोज्य (भोजन करनेके पदार्थ,) चन्दन अगर इन वस्तुओंका जिन्होंने दान किया है, वे चाहे बनमें रहें या पर्वतके शिखरपर किंवा ग्राममें रहें अथवा नगर में ॥ ५८ ॥ परन्तु

भोग उसके अगाड़ी २ ही उपस्थित रहते हैं, इस पर्वतके ऊपर प्रभूत बलशाली अन्य राक्षस भी हैं ॥ ५९ ॥ राक्षस पिशाच और दारुण पिशाचिनी ये सब जन अपने कर्मानुसार कहीं किसी न किसी प्रकार ॥ ६० ॥ वनमें विचरते २ अन्नपान पाते हैं, यह बात सुनकर तुम्हें उनसे भय न होना चाहिये ॥ ६१ ॥ क्योंकि आप गोविन्द भगवान्के

साबलवत्तराः ॥५९॥ राक्षसाश्चपिशाचाश्चपिशाच्यश्चातिदारुणाः ॥ कदाचिच्चकथंचिच्चका-
पियत्रस्वकर्मणा ॥ ६० ॥ लभंतेचान्नपानानिपर्यटंतोवनेवने ॥ इति श्रुत्वात्रतेभ्यश्चप्राभयं-
भवतांभवेत् ॥६१॥ शुचिंगोविन्दभक्तं त्वांनतेद्रष्टुमपिक्षमाः ॥ विष्णुभक्तितनुत्राणंनारायण-
परायणम् ॥ ६२ ॥ नस्पृशंतिनपश्यंतिराक्षसाः प्रेतपूतनाः ॥ भूतवेतालगंधर्वाःशाकिन्य-
श्चार्यकाग्रहाः ॥ ६३ ॥ रेवत्योवृद्धरेवत्योमुखमंड्यस्तथाग्रहाः ॥ यक्षाबालग्रहाःक्रूरादुष्टावृ-
द्धाग्रहाश्चये ॥ ६४ ॥ तथामातृग्रहाभीमाग्रहाश्चान्येविनायकाः ॥ कृत्याः सर्पाश्चकूष्मांडाये-

भक्त और पवित्र हैं और वे लोग तो आप को देखतक नहीं सकते, कारण कि, श्रीविष्णुभगवान् की भक्ति जिनके शरीरकी रक्षा करती है और जो नारायणमें अपना मन लगाते हैं ॥ ६२ ॥ राक्षस और प्रेत आदि न तो उनका स्पर्श कर सकते और न उनको देखही सकते हैं, भूत बैताल गन्धर्व शाकिनी ग्रह ॥ ६३ ॥ रेवती वृद्धरेवती

मुखमंडी ग्रह यक्ष बालग्रह क्रूर दुष्ट और वृद्धग्रह ॥ ६४ ॥ तथा मातृग्रह भीमग्रह और विनायकग्रह, कृत्य सर्प कूष्माण्ड एवं अन्य दुष्ट जन्तु ॥ ६५ ॥ ये सब हे विप्र ! ग्रहनादी वैष्णवको अवलोकन नहीं कर सकते, शुद्धाचारी और धर्मिष्ठ सब प्राणी रक्षा करते हैं और उसे पीडा कोई नहीं देता ॥ ६६ ॥ जिसकी जिह्वापर गोविन्द का नाम और

चान्येदुष्टजंतवः ॥ ६५ ॥ नपश्यंतिवरंविप्रवैष्णवंग्रहनादिनम् ॥ शुचिंरक्षंतिभूतानिधर्मिष्ठं-पीडयंतिन ॥६६॥ रक्षंतिचशुचिंनित्यंग्रहनक्षत्रदेवता ॥ गोविन्दनामजिह्वाग्रेहृदिवेदस्तुसं-स्थितः ॥६७॥ शुचिश्चदानशीलश्चत्वंसर्वत्राकुतोभयः ॥ एवंब्राह्मणतिष्ठामिभुंजानःकर्मणः फलम् ॥ ६८ ॥ नशोचामीतिमत्वाहंविमृश्यचपुनः पुनः ॥ नदुनोमितथाविप्रावज बालिनी-तटे ॥ ६९ ॥ सारसोदीरितंवाक्यंश्रुतंपर्यटतामया ॥ ७० ॥ इति श्रीपद्मपुराणे उत्तरखंडे माघमाहात्म्ये वसिष्ठदिलीपसंवादे पिशाचमोक्षोनाम द्वाविंशोऽध्यायः ॥ २२ ॥

हृदयमें जिसके वेदकी स्थिति है वैसे पवित्र सदाचारीकी ग्रह नक्षत्र और देवता सभी रक्षा करते हैं ॥ ६७ ॥ हे ब्राह्मण ! आप तो पवित्र और दानी हैं, अतएव आपको भय कहीं भी नहीं है, इसप्रकार मैं अपने कर्मों के फलका उपभोग करता हूँ ॥ ६८ ॥ विचार करके मैं बार २ सोच भी नहीं करता और न दुःखितही होता हूँ, अथच

जंबालिनीके तटपर विचरता रहता हूँ ॥ ३६ ॥ यहाँ विचरते २ सारसों के वाक्य मेरे श्रवण गोचर होते हैं ॥ ७० ॥
इति श्रीमाघमाहात्म्ये भाषाटीकायां द्वाविंशोऽध्यायः ॥ २२ ॥

ब्राह्मण बोला—तुमने सारसों के कैसे वाक्य सुने उन्हें मैं सुनना चाहता हूँ, सुतराम् हे प्रेत, मुझे शीघ्र

॥ ब्राह्मणउवाच ॥ सारसोदीरितंवाक्यंकीदृशंहिश्रुतंत्वया ॥ तदहंश्रोतुमिच्छामिब्रूहि त्वंप्रेतसत्वरम् ॥ १ ॥ प्रेतउवाच ॥ ब्रवीमिसत्वरंवाक्यंशृणुकार्पटिकोत्तम ॥ गुहिकानाम कक्षेस्मिन्नदीगिरिसमुद्भवा ॥ २ ॥ सदाजलाशयोत्तालामत्तदंतिकुलाकुला ॥ महाककुभशो भाढ्यास्निग्धजंबूमनोहरा ॥ ३ ॥ तस्यास्तीरमहंप्राप्तोगाहमानोवनंघनम् ॥ मयितिष्ठतितत्रै वफलभोजनकाम्यया ॥ ४ ॥ वनांतरात्समुड्डीयसारसोलक्ष्मणायुतः ॥ आगत्यपुलिनंनद्याः सेवितंबहुपक्षिभिः ॥५॥ पीत्वातत्रैवपानीयंरमित्वाभार्ययासह ॥ सुप्तःपक्षपुटेवामेप्रणेश्यच

सुनाओ ॥ १ ॥ प्रेत बोला—हे कामार्थी सुनो ! मैं सारसोंके वाक्य कहता हूँ, इसी कक्षमें से गुहिका नामकी एक पहाड़ी नदी निकलती है ॥ २ ॥ उसके जलाशय बड़े २ गंभीर हैं मस्त हाथी वहाँ विचरते रहते हैं, वहाँ सुन्दर २ गुहा हैं, तथा कोमल और मनोहर जामुनें लगी हुईं हैं ॥ ३ ॥ निदान घने वनको खूँदता २ मैं उस नदीके तट-पर पहुँचा, मैं वहाँ बैठाही था कि इतनेही में फलोंके भक्षण करनेकी कामनासे ॥ ४ ॥ अनेक पक्षियों से सेवित उस

नदीके तटपर एक हंसका जोड़ा उड़कर आया ॥ ५ ॥ पानी पी भार्याके साथ रमणकर अपने शिर और मुखको ये पंखमें रखकर वह हंस वहाँ ही सो गया ॥ ६ ॥ इतने ही में–लाल २ नेत्रोंवाला जिसका मुख भी लाल है जिसके नख बड़े दृढ़ हैं, हाथमें दण्डा लिये ॥ ७ ॥ जिसके शरीर पर बड़े २ बाल थे, और लंबी पूँछ थी, ऐसा बड़ा चंचल

शिरोमुखम् ॥ ६ ॥ एतस्मिन्नंतरेदुष्टःपादपादवतीर्यच ॥ रक्ताननस्सुरक्ताक्षोदंडीदृढनखावलिः ॥ ७ ॥ लोमशोदीर्घलांगूलश्चलचेष्टोहिवानरः ॥ यत्रासौसारसःसुप्तस्तत्रवेगेनचागतः ॥८॥ समागत्यचजग्राहसारसंचरणोदृढम् ॥ कराभ्यांक्रूरयाबुद्ध्यापश्यतांबहुपक्षिणाम् ॥९॥ उड्डीयोड्डीयतेसर्वेंगताश्चान्यत्रखेचराः ॥ सारसीभीतभीताचविरावान्कुर्वतीस्थिता ॥१०॥सारसोभग्ननिद्रस्तुत्रासाच्चलितलोचनः ॥ अवलोकितवान्शीघ्रंतदोत्ताम्यशिरोधराम् ॥ ११ ॥

एक वानर वृक्षसे उतरकर जहाँ यह सारस सो रहा था, झट तेजीसे वहाँ आया ॥ ८ ॥ यद्यपि बहुतसे पक्षी देख रहे थे तथापि उसने आयकर दोनों हाथोंसे सारसके पैरको कसके पकड़ लिया ॥ ९ ॥ तब अन्यान्य पक्षी तो उड़ २ कर चले गये, किन्तु सारसी भयभीत हो रोती चिल्लाती वहाँही बैठी रही ॥ १० ॥ जब सारसकी निद्रा भंग हुई तब डरके मारे उसके नेत्र चलायमान होगये और उसने झटपट शिर निकालकर देखा ॥ ११ ॥ जब उस पक्षीने देखा

कि, यह दारुण और दुष्ट वानर मारने के लिये उद्यत हो रहा है, तब वह मधुरभाषोसे उसकेप्रति कहने लगा ॥ १२ ॥ हे वानर ! तुम बिना अपराध किये मुझे क्यों सताते हो, और लोकमें राजाभोग भी अपराधियों को ही दण्ड देते हैं ॥ १३ ॥ सज्जन महात्माजन—जो कि हम किसीकी हिंसा नहीं करते, अतएव जो साधु (सीधे) और अन्य कुटिल

विलोक्यवानरंदुष्टंहंतुकामंसुदारुणम् ॥ तदासंभाषयामासगिरामधुरयाखगः ॥१२॥ अप-राधंविनामांत्वंकिंशाखामृगबाधसे ॥ सापराधाजनालोकेबध्यंतेभूमिपैरपि ॥१३॥ नपीड-यितुमर्हंतिताहृशाउत्तमाजनाः ॥ अस्मानहिंसकान्साधून्परवृत्तिपराङ्मुखान्॥ १४ ॥ जल-शेवालभक्षांश्चखेचरान्वनवासिनः ॥ स्वदाररतिशिलांश्चपरदाराभिवर्जितान् ॥ १५ ॥ नपी-डयितुमर्हंतित्वद्विधावानरोत्तम ॥ परापवादपैशून्यान्द्विजान्परमसेवकान् ॥१६॥ शाखामृ-

जीवोंकी वृत्तिसे रहित हैं ॥ १४ ॥ जलकी सिवार भक्षण करते वनमें रहते और आकाश में रहते हैं, हम पर स्त्रीगामी नहीं किन्तु अपनी स्त्री से ही अनुराग करते हैं, ऐसे हमको पीड़ा देना आपको उचित नहीं ॥ १५ ॥ हे वानरोत्तम ! जो कभी दूसरोंको अपवाद नहीं लगाते, और जो पक्षी परमसेवक हैं ऐसे हमको आप जैसे महात्मा पीड़ा देते अच्छे नहीं लगते ॥ १६ ॥ हे शाखामृग ! मैं सर्वथा निरपराध हूँ, अतएव तू मुझे छोड़ दे, मैं तुम्हारे

जन्मको जानता हूँ पर तुम हमारे जन्मको नहीं जानते ॥ १७ ॥ सारसके ये वाक्य सुन चपल वानर उसे छोड़कर बहुत दूर जा बैठा ॥ १८ ॥ (और बोला) बता ! तू मेरे पहिले जन्मको किसप्रकार जानता है ? क्योंकि कहां तो तू ज्ञानहीन पक्षी और कहाँ मैं वनमें विचरनेवाला वानर ॥ १९ । सारस बोला—मैं तुम्हारे जन्मको जानता हूँ,

गविमुंचाशुसर्वथामामनागसम् ॥ जानामितवजन्माहंनत्वंवेत्सितुमामकम् ॥१७॥ इत्याकर्ण्यवचस्तस्यमुमोचसारसंतदा ॥ चपलोवानरःशीघ्रंमहादूरेव्यवस्थितः ॥ १८ ॥ ब्रूहिरेत्वंकथंवेत्सिममजन्मपुरातनम् ॥ त्वंपक्षीज्ञानहीनश्चतिर्यक्क्वाहंवनेचरः ॥१९॥. सारसउवाच ॥ जानेहंतावकंजन्मजातिस्मरस्मितस्फुटम् ॥ त्वंविन्ध्याधिपोराजाप्राग्भवेपर्वतेश्वरः ॥ २०॥ अहंपूज्यतमोविप्रस्तववंशेपुरोहितः ॥ तेनप्रत्यभिजानामित्वांसम्यग्वानरोत्तम ॥२१॥ इमांपालयताभूमिंप्रजाःसर्वाःप्रपीडिताः ॥ त्वयाविवेकहीनेनभृशंसंचयताधनम् ॥२२॥ प्रजापी

कारण कि मुझे जातिका स्मरण है, पहिले जन्ममें तुम विन्ध्याचलके पर्वतेश्वर राजा थे ॥ २० ॥ और मैं तुम्हारे वंशका अत्यन्त पूजनीय ब्राह्मण पुरोहित था, इसी हेतु हे वानरोत्तम ! मैं तुम्हें भली भाँति जानता हूँ ॥ २१ ॥ तुम अज्ञानीने इस भूमिका पालन करते समय प्रभूत धन संचय करनेकी कामनासे समस्त प्रजाको कष्ट दिया था ॥ २२ ॥

हे वानर ! प्रजाकी पीड़ारूप सन्तापकी अग्निकी ज्वालाओं से प्रथम तुम्हारा देह दग्ध हुआ, और फिर तुम कुम्भीपाकमें गिराये गये ॥ २३ ॥ वारंवार भस्म होने और जन्म लेनेसे नारकीय शरीरसे तुम्हारे तीस वर्ष व्यतीत होगये ॥ २४ ॥ जिस समय तुम्हें कुम्भीपाकमें तीव्र यातनाएँ भोगनी पड़ती थीं उस समय तुम वारंवार दारुण

डनतापोत्थवह्निज्वालाभिर्वानर ॥ प्राक्त्वंदग्धःपुनःक्षितःकुम्भीपाकेऽतिदारुणे ॥ २३ ॥ पुनःपुनश्चदग्धेनजातेनचपुनःपुनः ॥ नारकेणशरीरेणसमास्त्रिंशद्गतंत्वया ॥ २४ ॥ कुर्वतादारुणान्शब्दान्रुदताचपुनःपुनः ॥ कुम्भीपाकानलेतीव्राह्यनुभूताश्चयातनाः ॥ २५ ॥ निस्तीर्णनरकोभूयःपापशेषेणसांप्रतम् ॥ प्राप्तोसिवानरंजन्मयेनमांहन्तुमिच्छसि ॥२६॥ विप्रस्योपवनात्पूर्वंपक्वंरंभाफलानिवै ॥ अननुज्ञाप्यभुक्तानित्वयापहृत्यपौरुषात् ॥२७॥ विपाकःकर्मणस्तस्यफलंतेपश्यदारुणः ॥ वानरस्त्वंवनेवासोह्यधुनातेनवर्तसे ॥२८॥ अशुभस्यशुभ-

शब्द करके रोदन करते थे ॥ २५ ॥ जब तुम्हारे पाप नष्ट होगये और नरकसे उद्धार हुआ तो अब तुम्हें वानर योनिमें जन्म मिला है, सो यहाँ तुम मुझे मारनेको उद्यत हो रहे हो ॥ २६ ॥ पहिले तुमने ब्राह्मणके उपवन के पके २ केलेके फल उसकी बिना आज्ञा लिये भक्षण कर लिये और रक्षकों को भगा दिया ॥ २७ ॥ देखो उसी पापके फल से संप्रति तुम्हें वानरकी योनि और बनका निवास मिला है ॥ २८ ॥ प्राणी पूर्वजन्ममें शुभ अशुभ जो कुछ

कर्म कर्ता है उसका भोग मनुष्योंको अवश्य प्राप्त होता है, और देवता लोगभी उसका उल्लंघन नहीं कर सकते ॥२९॥ इसप्रकार मैं तुम्हारे जन्मको हेतुसहित ठीक २ जानता हूँ, यद्यपि मुझे सारसका देह मिला है तथापि मुझे ज्ञान है अतएव मैं मोहित नहीं हूँ ॥ ३० ॥ हे विप्र ! इस कथाको सुन वह वानर सारससे कहने लगा कि—अवश्य तुम

स्यापिपुराविहितिकर्मणः ॥ भोगःक्रीडतिभूतेषुनोल्लंघ्यस्त्रिदशैरपि ॥ २९ ॥ इत्थंत्वज्जन्मजानामियथावत्तुसहेतुकम् ॥ प्राप्तःसारसदेहोपिज्ञानेनापरिमोहितः ॥३०॥ इतिश्रुत्वाकथांविप्रवानरोप्याहसारसम् ॥ सम्यग्वेत्सिभवान्नूनंकथंत्वंपक्षितांगतः ॥३१॥ इति श्रीपद्मपुराणे उत्तरखण्डे माघमाहात्म्ये वसिष्ठदिलीपसंवादे वानरजन्मकथनं नाम त्रयोविंशोऽध्यायः॥२३॥

॥ सारसउवाच ॥ कथयिष्यामितत्कर्मयेनाहंपक्षितांगतः ॥ दुःखयोनिंगतोयेनतत्सर्वंश्रोतुमर्हसि ॥ धान्यंखारिशतंसाग्रमुत्सृष्टंहित्वयापुरा ॥ बहुभ्योब्राह्मणेभ्यश्चनर्मदायांरवि

सब कुछ जानते हो, पर यह तो बताओ तुम पक्षी कैसे होगये ॥ ३१ ॥ इति श्रीमाघमाहात्म्ये भाषाटीकायां त्रयोविंशोऽध्यायः ॥ २३ ॥

सारस बोला—जिससे मैं पक्षी हुआ उस सब कर्मका मैं वर्णन करता हूँ, मुझे जिससे दुःख योनिकी प्राप्ति

हुई वह सब सुनो ॥१॥ पहिले तुमने सूर्यग्रहणके समय सौ खारी धान्य नर्मदाके तटपर दान करके ब्राह्मणोंको दिये थे ॥ २ ॥ मैंने पुरोहितीके मद और लोभसे ब्राह्मणोंको ठगकर किंचिन्मात्र तो उन्हें देदिया, शेष सब मैंने स्व ले लिया ॥३॥ ब्राह्मणोंके साधारण द्रव्य लेनेसे उत्पन्न हुए पाप के कारण जिसमें रक्तकी कीच भर रही थी, ऐसे कालसूत्र नरक में मुझे गिराया गया ॥ ४ ॥ उसमें कीचड़ बिलबिला रहे दुर्गन्धि और राद पूर्ण हो रही थी, वहां मुझे नीचेको

ग्रहे ॥२॥ पौरोहित्यमदाल्लोभाद्वंचयित्वाद्विजांस्तथा ॥ किंचिद्दत्त्वातुतेभ्यश्चगृहीतमखिलं-मया ॥३॥ विप्रसाधारणद्रव्यग्रहणोत्पन्नपातकात् ॥ पतितःकालसूत्रेऽहंनरकेरक्तकर्दमे॥४॥ चलत्क्रिमिसुसंपूर्णेदुर्गंधेपूयफेनिले॥ अनाभेस्तत्रमग्नोस्मिलिहन्पूयमधोमुखः ॥५॥ तथोपरि-महागृध्रैर्भक्ष्यमाणस्तुवायसैः ॥ क्रिमिभिस्तुद्यमानस्तुममदेहोनिरंतरम् ॥ ६ ॥ तस्मिन्शो-णितपंकेहंनिरुच्छ्वासोभवंतदा ॥ मुहूर्तोपिमहाकल्पशतंजातोममात्रवै ॥७॥ यातनाश्चानु-

मुख कर के नाभिपर्यन्त डुबाकर डाल दिया, और मैं वहाँ राद चाटता रहता था ॥ ५ ॥ तथा उसके ऊपर वड़े २ गृद्ध (गिद्ध) और काक मुझे नोच २ खाते थे, एवं नित्य ही कीड़े मेरे शरीर को व्यथा देते रहते थे ॥ ६ ॥ रुधिर की उस पंक में मेरा श्वास भी अवरुद्ध हो गया, अतएव एक मुहूर्त भी कल्पके समान व्यतीत होने लगा ॥ ७ ॥ हे वानरराज ! मुझे तीस सहस्र वर्ष पर्यन्त नरक यातना भोगनी पड़ी, मैं उनके दुःखका वर्णन करके पार नहीं

पासकता ॥ ८ ॥ प्रारब्धवशात् जब मेरा नरकरूप समुद्रसे उद्धार हुआ तब दैवयोगसे मुझे पक्षीकी योनि प्राप्त हुई ॥ ९ ॥ पहिले मैंने अपनी बहिनके घरसे कांसीका पात्र चुराकर पाँसा खेलनेवाले व्यसनीको दिया था, इसी हेतु मुझे सारस बनना पड़ा ॥ १० ॥ और यह मेरी सहधर्मिणी ब्राह्मणी स्त्री जो सारसी हुई है इसका यह कारण

भूताश्चसमास्त्रिरयुतंमया ॥ वक्तुंचतन्नशक्नोमिदुःखंवानरनायक ॥८॥ दैवात्कथमपिप्राप्तउत्तरोनरकांबुधेः ॥ मयाद्यदैवयोगेनशकुनित्वमुपस्थितम् ॥ ९ ॥ अपहृत्यपुराकांस्यभाजनंभगिनीगृहात् ॥ आक्षिकायमयादत्तंतेनमेसारसीगतिः ॥ १० ॥ इयंचब्राह्मणीपूर्वंकांस्यचोरीसुदारुणा ॥ तेनेयंसारसीजाताममभार्यासधर्मिणी ॥ ११ ॥ इत्थंवानरतेसर्वंकथितंकर्मणःफलम् ॥ वृत्तांचवर्तमानंचभविष्यंशृणुसांप्रतम् ॥ १२ ॥ अहंहंसोभविष्यामित्वंचहंसोभविष्यसि ॥ हंसीयमपिमद्भार्यासारसीचभविष्यसि ॥ १३ ॥ देशेचकामरूपेवैस्थास्यामोवैयथासुखम् ॥

है कि—इसनेभी कांसी चुराया था ॥ ११ ॥ हे वानर ! इसप्रकार हमने तुम्हारेप्रति वर्त्तमान और भूत वृत्तान्त वर्णन किया, अब भविष्य कथाको सुनो ॥ १२ ॥ हम और तुम दोनों हंस होंगे, और हमारी पत्नी यह सारसी हंसनी होगी ॥ १३ ॥ हम तीनों कामरूप देशमें सुखपूर्वक निवास करेंगे, इसके अनन्तर कल्पकी योगिनीको प्राप्त

होंगे ॥ १४ ॥ फिर हमें उस मनुष्य योनिकी प्राप्ति होगी जिसमें कल्याण और उसके विपरीत दोनों प्रकारके कर्मों का साधन किया जा सकता है ॥ १५ ॥ महादेवजी इसप्रकार केवल हमहीको नहीं वरु सब जीवोंको अपनी मायासे मोहित कर सुख दुःखोंका उपभोग कराते हैं ॥ १६ ॥ इसप्रकार विविध निर्मित यह मार्ग संसारमें प्रवृत्त है, इसमें धर्म

योगिनींभाविकल्याणींयास्यामस्तदनंतरम् ॥१४॥ ततश्चमानुषंजन्मप्राप्स्यामोदुर्लभंपुनः ॥
श्रेयस्तद्विपरीतंचप्राणिभिर्यत्रसाध्यते ॥ १५ ॥ एवंसर्वान्शिवोजंतून्मोहयित्वास्वमायया ॥
सुखैर्भुनक्तिदुःखैश्चनास्मानेवतुकेवलम् ॥ १६ ॥ अयंलोकेप्रवृत्तश्चमार्गोविविधनिर्मितः ॥
धर्माधर्ममयोऽत्यर्थंसुखदुखःफलात्मकः ॥ १७ ॥ सेवितःप्राणिभिःसर्वैःसर्वदावापुनःपुनः ॥
देवासुरनरव्याघ्रक्रिमिकीटजलेचरैः ॥ १८ ॥ नातिक्रांतोहिकेनापिपंथाऽयंदुःखकंटकः ॥
विरक्तान्योगिनोध्यायंविनावेदांतपारगान् ॥१९॥ अणोर्वापिगुरोर्वापिपुण्यापुण्यस्यकर्मणः ॥

अधर्म दोनों हैं अतएव सुख दुःख दोनोंहीकी प्राप्ति होती है ॥ १७ ॥ क्या देवता, क्या दैत्य, क्या मनुष्य और क्या व्याघ्र, एवं कीड़े मकोड़े और जलचर ये सबही प्राणी नित्य और वारंवार इसका सेवन करते हैं ॥ १८ ॥ जिसमें दुःखके काँटे बिछे हैं ऐसे इस मार्गका उलंघन विरक्त योगी और वेदान्तियोंको छोड़ अन्य किसीने नहीं किया ॥१९॥

चाहे पुण्य या पाप छोटेसे छोटा हो अथवा बड़ेसे बड़ा हो महादेवजी देशकाल पहिचानके उसका फल अवश्य देते हैं ॥ २० ॥ विविधज्ञानके ज्ञाता महाबुद्धिमान् लोग महेश्वरी माया इसप्रकार जानकर न तो सोच करते न सन्ताप भोगते और न दुःखही उठाते हैं ॥ २१ ॥ हे शखामृग ! उपायों अथवा बुद्धिके द्वारा देवता तक भी पूर्व कर्मों के

ददातीहफलंज्ञात्वादेशंकालंमहेश्वरः॥२०॥ इत्थंविविधविधानज्ञामायांज्ञात्वेश्वरस्यच॥नशोचंतिनतप्यंतिनव्यथंतिमहाधियः ॥२१॥ नान्यथाशक्यतेकर्तुंविपाकःपूर्वकर्मणाम् ॥ उपायैःप्रज्ञयावापिशाखामृगसुरैरपि ॥२२॥ पुरात्वंभूपतिर्जातःपश्चाज्जातोसिनारकी ॥अधुनावानरोभूयोजन्मप्राप्यसितादृशम् ॥ २३ ॥ इतिमत्वाविशोकस्त्वंशाखामृगयथासुखम् ॥ प्रतीक्षांकुरुकालस्यरममाणोऽत्रकानने ॥ २४ ॥ अहमप्येवमीशानमायाबद्धोवनेवने ॥ क्षपयिष्यामिवैजन्मधैर्यमास्थायसारसम् ॥२५॥ वानरउवाच ॥ मयात्वंपूजितःपूर्वंनौमित्वामधुनाप्य-

फलको अन्यथा करनेकी शक्ति नहीं रखते ॥ २२ ॥ पहिले तुम राजा थे, फिर नारकी हुए, अब वानर हो और आगेको हंसका जन्म मिलेगा ॥ २३ ॥ सुतराम् हे शाखामृग ! मनमें यह बात समझकर समयकी प्रतीक्षा करते हुए तुम सुखपूर्वक इस वनमें विचरते रहो ॥ २४ ॥ और मैं भी महादेवकी मायाके वशीभूत हो धैर्य्य धारणपूर्वक वनोंमें

विचरकर सारसके जन्मको बिताऊँगा ॥ २५ ॥ वानर बोला—मैंने प्रथम तुम्हारी पूजा की, और अब भी मैं तुम्हारी स्तुति करता हूँ मैं समझ गया कि—तुम्हें जातिका स्मरण है, अतएव मेरे पूर्वजन्मकी सब कथा जानते हो ॥ २६ ॥ हे सारस ! तुम अपनी सारसी सहित बैठे रहो, तुम्हारा कल्याण हो, तुम्हारे वाक्य सुनकर मेरा अज्ञान नष्ट हो गया, अब मैं सदा विचरता रहूँगा ॥ २७ ॥ प्रेत बोला—हे द्विज ! पक्षी और वानरके इस विचित्र अतएव रमणीक

हम् ॥ जातिस्मरोऽसिजानामिसर्वंमत्पूर्वदैहिकम् ॥ २६ ॥ तिष्ठसारससारस्याशिवमस्तुसदा-तव ॥ त्वद्वाक्याद्गतमोहोऽहंविचरिष्यामिसर्वदा ॥२७॥ प्रेतउवाच ॥ इमंरम्यंविचित्रंचपाव-नंपरमंद्विज ॥ पक्षिवानरसंवादंश्रुतंयावन्नदीतटे ॥ २८ ॥ तावन्ममापिबोधोभूत्तेनशोकः-क्षयंगतः ॥ इदानींजाह्नवीतोयमाहात्म्यंपरमाद्भुतम् ॥ २९ ॥ दृष्ट्वात्रब्राह्मणश्रेष्ठत्वांयाचेजा-ह्नवीजलम् ॥ प्रेतत्वात्तर्तुकामोहंतीव्रादैन्यात्प्रपीडितः ॥ ३० ॥ अस्मिन्नेवाचलेदृष्टंमयाश्चर्यंच

अतिशय पवित्र संवादको मैंने नदी के तटपर सुना ॥ २८ ॥ सो मुझे भी ज्ञानका लाभ हो गया अतएव मेरा भी शोक नष्ट होगया, संप्रति गंगाजलके परम अद्भुत जलके माहात्म्यको ॥ २९ ॥ देखकर, हे द्विजराज तुमसे मैं गंगाजल माँगता हूँ. तीव्र दुःख सता रहा है अतएव प्रेत योनिसे तरनेकी मेरी कामना है ॥ ३० ॥ हे द्विज ! इसी पर्वतके ऊपर मैंने गंगाजल के परम आश्चर्यका अवलोकन किया, इसी हेतु मैं उसे पान करना चाहता हूँ ॥ ३१ ॥

पारियात्रमें उत्पन्न हुआ कोई ब्राह्मण, ग्रामीणोंका यजन कराता था, उसने यजन करनेके अयोग्य किसी व्यक्तिको विन्ध्याचलके ऊपर यज्ञ करादिया था, अतएव वह ब्रह्मराक्षस हुआ ॥ ३२ ॥ हमारी संगतिके अनुरोधसे वह आठ वर्षपर्यन्त स्थित रहा, और हे द्विजराज! उसके पुत्रने उसकी अस्थियोंका संचय किया ॥ ३३ ॥ और उन्हें लेजाकर

वैद्विज ॥ गंगातोयस्यतावद्विपातुमिच्छामितज्जलम् ॥ ३१ ॥ पारियात्रोद्भवःकोऽपिब्राह्मणो-ग्रामयाजकः ॥ अयाज्ययाजनाद्विंध्येसंभूतोब्रह्मराक्षसः ॥ ३२ ॥ अस्मत्संगानुरोधेनस्थितो-सौहायनाष्टकम् ॥ तस्यास्थीनिसुपुत्रेणसंचितानिद्विजोत्तम ॥ ३३ ॥ निधान्यानीयगंगा थांतीर्थेकनखलेऽमले ॥ तत्क्षणादेवमुक्तोऽसौराक्षसत्वात्सुदारुणात् ॥ ३४ ॥ इतिगंगाजल-स्नानमहिमामहदद्भुतम् ॥ साक्षाद्दृष्टोमयातेनगांगेयंप्रार्थितंजलम् ॥ ३५ ॥ पुरस्ताद्यत्कृत-स्तीर्थेमयाभूरिपरिग्रहः ॥ नकृतस्तुप्रतीकारस्तस्यजाप्यादिलक्षणः ॥ ३६ ॥ तेनमेप्रेतरूपस्य-

उसने निर्मल कनखल तीर्थमें गंगाजलमें मिला दीं, उसी क्षण वह दारुण राक्षसयोनिसे मुक्त होगया ॥ ३४ ॥ गंगा-जलमें स्नान करनेकी परमअद्भुत इस महिमाको मैंने साक्षात् अवलोकन किया अतएव मैंने गंगाजल तुमसे माँगा है ॥ ३५ ॥ मैंने प्रथम तीर्थोंके ऊपर जो बड़े २ दान लिये, और जप आदि करके उनका प्रतीकारकु छ किया

नहीं ॥ ३६ ॥ अतएव मुझे प्रेत योनि प्राप्त हुई और भोजन एवं जलतक की प्राप्ति दुर्लभ है, इस विन्ध्याचल के ऊपर सहस्रों वर्ष व्यतीत हो गये ॥ ३७ ॥ भारी लज्जा परित्याग पूर्वक मैंने यह सब वृत्तान्त आपके प्रति वर्णन किया, सुतराम् हे धर्मात्मा ! अब शीघ्र ही गंगा जल देकर ॥ ३८ ॥ मेरे कंठगत प्राणों को तृप्त करो, प्राणियों को

दुर्लभोदकभोजनम् ॥ सहस्रं यत्रवर्षाणामतीतंविंध्यपर्वते ॥ ३७ ॥ इतितेकथितंसर्वंहित्वालज्जांगरीयसीम् ॥ इदानींधार्मिकश्रेष्ठजलदानेनसत्वरम् ॥३८॥ संतर्पयममप्राणान्कण्ठमात्रावलंबितान् ॥ दुर्लभंप्रेतभावेपिजीवितंप्राणिनामिह ॥ ३९ ॥ शरीरंरक्षणीयंहिसर्वथासर्वदानरैः ॥ नहीच्छंतिपरित्यक्तुमपिकुष्ठादिरोगिणः ॥४०॥ इतितद्वचनंश्रुत्वाविस्मयंपरमंगतः ॥ पथिकश्चिंतयामासकृपांप्रेतेसमुद्वहन् ॥४१॥ पापपुण्यफलंलोकेप्रत्यक्षंदृश्यतेखलु ॥ देवदानवमानुष्यंतिर्यक्त्वंक्रिमिकीटकम् ॥४२॥ नानायोनिषुजन्मानिनानाव्याधिप्रपीडनम् ॥ मर-

प्रेत योनियों में जीवित रहना बड़ा दुर्लभ है ॥ ३९ ॥ मनुष्य शरीर को तो सदा ही सर्वथा रक्षा किया करते हैं, जो कुष्ठ आदि रोगों से पीड़ित हैं वे भी शरीर छोड़ना नहीं चाहते ॥ ४० ॥ प्रेत के ऐसे बचन सुन उस पथिकको अत्यन्त विस्मय हुआ, और वह उसके ऊपर कृपा करके चिन्ता करने लगा ॥ ४१ ॥ लोकमें पाप पुण्य का फल

प्रत्यक्ष ही देखा जाता है देवता, राक्षस, मनुष्य, तिर्यक्‌योनि, कीड़े मकोड़े ॥ ४२ ॥ इत्यादि अनेक योनिमें जन्म अनेक व्याधियों से पीडित होना, बालक अथवा वृद्धों का मरण, अन्ध अथवा कुबड़ा होना ॥ ४३ ॥ ऐश्वर्य्य अथवा दरिद्रता, पांडित्य अथवा मूर्खता, अन्यथा ये सब रचनाएँ कैसे हो सकती हैं ॥ ४४ ॥ उन प्राणियों को धन्य है जो कर्मभूमिमें न्याय मार्ग का अनुसरण कर धन संचय (उपार्जन) करके सत्पात्रों के निमित्त दान

एंबालवृद्धानामंधत्वंकुब्जतातथा ॥४३॥ ऐश्वर्यंचदरिद्रत्वंपांडित्यंमूर्खतातथा ॥ एताश्चरच-
नालोकेभवंतिकथमन्यथा ॥ ४४ ॥ तेधन्याःकर्मभूमौयेन्यायमार्गार्जितंधनम् ॥ सत्पात्रेभ्यः
प्रयच्छंतिकुर्वंतिचात्मनोहितम् ॥ ४५ ॥ भूमिरत्नहिरण्यानिगावोधान्यंगृहंगजाः ॥ रथाश्व-
वसनग्रामाःसिद्धमन्नंफलंजलम् ॥ ४६ ॥ कन्यादिव्यौषधमंत्राश्छत्रोपानद्वरासनम् ॥ शय्या-
तांबूलमाल्यानितालवृंतंवराशनम् ॥ ४७ ॥ सर्वमेतत्प्रदातव्यंलोकत्रयजिगीषुभिः ॥ दत्तं-

करते और अपना हित करते हैं ॥ ४५ ॥ भूमि, रत्न, सुवर्ण गौ, धान्य, गृह (घर), हाथी, रथ, घोड़े, वस्त्र, ग्राम, सिद्धान्न फल और जल ॥ ४६ ॥ कन्या, दिव्य औषधि, मन्त्र छत्र, उपानह, (जूते) श्रेष्ठ आसन, पलंग, तांबूल, माला, तालवृन्त (ताड़के पंखे), श्रेष्ठ भोजन ॥ ४७ ॥ ये सब वस्तुएँ उनको दान करनी चाहिये जो त्रिलोकीका विजय करना चाहते हों तो दान की हुई ही वस्तु स्वर्ग में प्राप्त होती है और दान की हुई ही भोगने को मिलती

है ॥ ४८ ॥ छत्र, चामर श्रेष्ठ घोड़े, श्रेष्ठ हाथी, अन्य यान (सवारियें) महल, उत्तम सेजें, गाय, भैंसे एवं उत्तमोत्तम स्त्रियें ॥ ४९ ॥ अन्न, आभूषण, मोती, पुत्र, दासियें, बड़ाकुल, आयु, आरोग्य, ऐश्वर्य्य, कलाओं तथा अन्य विद्याओं में निपुणता ॥ ५० ॥ ये सब दान करनेही के फल से भूमि के ऊपर मनुष्यों को प्राप्त होते हैं, अतएव

हिप्राप्यतेस्वर्गेदत्तमेवहिभुज्यते ॥ ४८ ॥ छत्रचामरयानानिवराश्वत्ररवारणाः ॥ हर्म्याणिवरशय्याश्चगोमहिष्यो वरस्त्रियः ॥ ४९ ॥ अन्नभूषणमुक्ताश्चपुत्रादास्योमहाकुलम् ॥ आयुरारोग्यमैश्वर्यंकलाविद्यासुकौशलम् ॥ ५० ॥ दानस्यैवफलंसर्वंप्राप्यतेभुविमानवैः ॥ तस्माद्देयंप्रयत्नेननादत्तमुपतिष्ठति ॥ ५१ ॥ सकार्पाटिकधार्मिष्ठइमांगाथामगायत ॥ इतिश्रुत्वापुनःप्रेतःप्रोवाचह्यार्तमानसः ॥५२॥ मन्येधर्मज्ञकल्पोसिपाथत्वंनात्रसंशयः ॥ देहिमेजीवनंवारिचातकायघनोयथा ॥ ५३ ॥ एतस्मिन्प्राणदानेहिमाविलंबंकुरुयाबहु ॥ ततःप्रत्याहपांथस्तु-

यत्न पूर्वक दान करना कर्त्तव्य है कारण कि बिना दिये कुछ भी प्राप्त नहीं होता ॥ ५१ ॥ उस धर्मात्मा कामार्थी ने यह कथा गाई, और इसको सुनकर वह प्रेत मनमें दुःखित हो फिर बोला ॥ ५२ ॥ हे पथिक ! मैं समझता हूं तुम धर्मज्ञों के सदृश ही हो इसमें कुछ संदेह नहीं है, जैसे मेघ पपीहे को प्राणदान करता है इसी प्रकार आप भी

मुझे गंगाजल देकर जीवनदान दीजिये ॥ ५३ ॥ प्राणदान करनेमें अब आप वृथा विलंब न करें, तब वह पथिक न्यायपूर्ण वाक्य बोला ॥ ५४ ॥ सुनो प्रेत ! भृगुक्षेत्र में मेरे माता-पिता स्थित हैं, उन्हीं के तईं मैं यह तीर्थराज का जल लाया हूँ ॥ ५५ ॥ सो उस गंगा यमुना के जल को मार्ग में तुमने माँगा, मैं नहीं जानता इस धर्मके

वचनंन्यायगर्भितम् ॥ ५४ ॥ भृगुक्षेत्रेशृणुप्रेतपितरौममतिष्ठतः ॥ तदर्थंतीर्थराजस्यमयावा-
रिसमाहृतम् ॥५५॥ तत्सितासितपानीयंमध्येचप्रार्थितंत्वया ॥ नजानेधर्मसंदेहःकिमत्रमयि-
युज्यते ॥ ५६ ॥ बलाबलंविचारार्थंकरिष्येप्रबलंविधिम् ॥ वेदेभ्योधर्मशास्त्रेभ्योनाहंमानेन-
केवलम् ॥५७॥ हयमेधादियज्ञेभ्यःसर्वेभ्योप्यधिकंमतम् ॥ ऋषिभिर्देवताभिश्च प्राणिनांप्राण-
रक्षणम् ॥ ५८ ॥ इतिदत्त्वावरंवारिकृत्वाप्रेतस्यरक्षणम् ॥ पित्रर्थंपुनरादायजलंनेष्यामिपाव
नम् ॥ ५९ ॥ एषमेप्रबलोभातिशुद्धधर्मप्रदोविधिः ॥ परोपकरणादन्यत्सर्वमल्पस्मृतं

सन्देह में मेरे लिये क्या होगा ? ॥ ५६ ॥ मैं बलाबलका विचार कर प्रबल विधि का आचरण करूँगा, केवल वेदों और धर्मशास्त्रों ही के मान से नहीं, किन्तु ॥ ५७ ॥ ऋषियों और सब देवताओं ने प्राणियों की प्राण रक्षा को अश्वमेध आदि यज्ञों की अपेक्षा भी अधिक माना है ॥ ५८ ॥ यों कह, उसे श्रेष्ठ जल दे और प्रेतकी प्राण रक्षा कर फिर कहने लगा कि—माता-पिता के तईं और पवित्र जल ले आऊँगा ॥ ५९ ॥ शुद्ध धर्म प्रदान करनेवाली येही

विधि मुझे प्रबल प्रतीत होती है, क्योंकि बुद्धिमानों ने परोपकारकी अपेक्षा अन्य सबही को अल्प माना है ॥ ६० ॥ परोपकार करने वाले प्राणियों ने तो अपने प्राण तक दूसरों के निमित्त दे डाले हैं, और जब केवल जल ही देनेसे परोपकार होता है तो भला मुझे क्या न मिल गया ॥ ६१ ॥ दधीचि ऋषि का गान किया सब धर्मों का स्वरूप और

बुधैः ॥ ६० ॥ परोपकारिभिर्दत्ताअपिप्राणान्नृभिर्मुदा ॥ अद्भिःपरोपकारःस्यात्किंनलब्धंमया पुनः ॥ ६१ ॥ दधीचिनापुरागीतः श्लोकोयंश्रूयतेभुवि ॥ सर्वधर्ममयःसारःसर्वधर्मज्ञसंमतः ॥ ६२ ॥ परोपकारः कर्तव्यः प्राणैरपिधनैरपि ॥ परोपकारजंपुण्यंतुल्यंक्रतुशतैरपि ॥ ६३ ॥ इत्युक्त्वाप्रददौतोयंगंगायामुनसंभवम् ॥ प्रेतायप्राणरक्षार्थंसधर्मिष्ठोवरोद्विजः ॥ ६४ ॥ प्रेतःपीतोजलंपीत्वाह्यभिषिच्यशिरस्तथा ॥ प्रजहौप्रेतदेहंतंदिव्यदेहोभवत्क्षणात् ॥ ६५ ॥ तदाश्चर्यंमहद्दृष्ट्वानिजगादसकेरलः ॥ अहोविमुक्तःप्रेतत्वाद्वेणीपानीयबिं-

संपूर्ण धर्मज्ञों का मान्य यह श्लोक भूमि के ऊपर श्रवण गोचर होता है ॥ ६२ ॥ केवल धन ही क्या वरु प्राणों तक से भी परोपकार करना कर्तव्य है, कारण कि परोपकार जनित पुण्य सैकड़ों यज्ञों के तुल्य होता है ॥ ६३ ॥ यों कह कर उस धर्मिष्ठ श्रेष्ठ ब्राह्मण ने प्रेतको प्राण रक्षा के लिये गंगा यमुना का जल उसे दे दिया ॥ ६४ ॥ जब प्रेत ने उस जल को पीकर सिरपर अभिषेक किया, तब उसका प्रेतदेह छूट गया और तत्काल उसका

आ.मा.

२४८

शरीर दिव्य हो गया ॥ ६४ ॥ यह प्रभूत आश्चर्य देख वह केवल बोला—प्रसन्नता की बात है कि, त्रिवेणी के जल के विन्दुमात्र से अन्तयोनि जाती रही ॥ ६६ ॥ मैं समझता हूँ गंगाजल के गुणों का वर्णन ब्रह्माजी भी नहीं कर सकते, क्योंकि यदि यह बात न होती तो महादेवजी अपने शिरपर गंगाजी को क्यों धारण करते ? ॥ ६७ ॥ जिसकी

दुभिः ॥ ६६ ॥ ब्रह्मापिनैवशक्नोतिमन्येवक्तुमपांगुणम् ॥ गङ्गायास्तन्महादेवोधत्तेकेकथमन्यथा ॥६७॥ अचिंत्य भक्तिगंगाम्भस्तिलमात्रंतुयः पिबेत् ॥ देवोभवेत्ससिद्धोवागर्भंकोपिनसंविशेत् ॥ ६८ ॥ नगंगासदृशीसिद्धिर्नगंगासदृशीमतिः ॥ नगंगासदृशोमुक्तिर्गंगासर्वाधिकायतः ॥ ६९ ॥ तस्मात्सर्वप्रयत्नेनमहाभक्त्याचधार्मिक ॥ करस्थंतस्यकैवल्यंयोगंगांसेवतेसदा ॥७०॥ आयुष्मान्भवपांथत्वंमाधर्मविरतोभव ॥ अहंहितारितः साधोगंगांबुकण-

भक्तिका चिन्तवन ही नहीं किया जा सकता ऐसे गंगाजलको तिलमात्र भी जो पान करता है वह देवता अथवा सिद्ध होगा तो उसका निवास गर्भ में नहीं होगा ॥ ६८ ॥ गंगाजी के समान न तो कोई सिद्धि है, न मति है और न गंगाके समान मुक्ति ही है, क्योंकि गंगाजी सबही से अधिक हैं ॥ ६९ ॥ अतएव जो व्यक्ति यत्न पूर्वक गंगाजी की सेवा भक्ति पूर्वक करता है, मोक्ष सदा उसके हाथ में रहता है ॥ ७० ॥ हे पथिक ! तुम्हारी आयुकी वृद्धि हो, और

भा.टी.

अ.२८

२४८

मा.मा. २४६

धर्म से तुम्हारा वैराग्य न हो, क्योंकि गंगाजल की कणिका देके तुमने मेरा उद्धार किया ॥ ७१ ॥ यों कह कर और आशीर्वादों से उस पथिक का अभिनन्दन करके केरलदेशीय वह पिशाच स्वर्ग को चला गया ॥ ७२ ॥ वह पान्थ उस प्रेत को मुक्त कर जल लेके फिर उसी मार्ग से चला ॥ ७३ ॥ प्रयागराज के माहात्म्यको इस प्रकार सुन

दानतः ॥ ७१ ॥ इत्युक्त्वाप्रस्थितोनाकंपिशाचस्तुसकेरलः ॥ आशीर्भिरभिनंद्याथपांथंवं-
धुवरंनरम् ॥ ७२ ॥ प्रेतंविमोच्यपांथोपिपुनरादायतज्जलम् ॥ गतस्तेनैवमार्गेणतदातीर्थोद-
कंवहन् ॥७३॥ इत्थंप्रयागमाहात्म्यंश्रुत्वानत्वाचतंमुनिम् ॥ प्रयागंसइसामाघेपिशाचःसत्वरं-
गतः ॥ ७४ ॥ स्नात्वासितासितेसोपिमाघमासेद्विजोत्तम ॥ पिशाचःक्षीणपापस्तुपैशाचींवि-
जहौतनुम् ॥ ७५ ॥ दिव्यदेहस्ततोभूत्वाद्राविडोभूपतिस्तदा ॥ स्तुवन्नारायणंदेवंभक्त्या-
दोषविवर्जितः ॥ ७६ ॥ गंधर्वैःस्तूयमानस्तुनाकनारीसुपूजितः ॥ उत्तमेनविमानेनपुरंदर

मुनिको प्रणाम करके वह पिशाच शीघ्रही माघमास में प्रयागको चलागया ॥ ७४ ॥ हे द्विजराज ! माघमास में गङ्गायमुना के जल में स्नान करनेसे पापक्षीण हो जाने के कारण इस पिशाच ने भी पिशाच के शरीर को त्याग किया ॥ ७५ ॥ इसका देह दिव्य हो गया, तब यह द्रविडदेशाधिपति निर्दोष हो भक्तिभाव पूर्वक नारायण की स्तुति करने लगा ॥ ७६ ॥ तब गन्धर्वगण इसकी स्तुति करने लगे, स्वर्गीय स्त्रियें पूजा करने लगीं, निदान उत्तम विमान

भा.टी. अ. २४ २४६

में बैठकर यह इन्द्रलोकको चलागया ॥ ७७ ॥ हे विप्र ! कौतुकसहित यह प्राचीन वृत्तान्त हमने तुम्हारे प्रति वर्णन किया, हे द्विजराज ! यह इतिहास शीघ्रही पापोंका नाश करनेवाला है ॥ ७८ ॥ हे विप्र ! जो इसको सुनते हैं उनकी दुर्गति का नाश होकर ज्ञान और मोक्षकी प्राप्ति होती है ॥ ७९ ॥ इति श्रीमाघमास माहात्म्यं भाषाटीकायां चतुर्विंशोऽध्यायः ॥ २४ ॥

पुरं ययौ ॥ ७७ ॥ इतितेकथितंविप्रपूर्ववृत्तंसकौतुकम् ॥ इतिहासंद्विजश्रेष्ठसद्यःपातकनाशनम् ॥ ७८ ॥ ज्ञानदंमोक्षदंविप्रश्रुतंदुर्गतिनाशनम् ॥ ७९ ॥ इति श्रीपद्मपुराणे उत्तरखंडे माघमाहात्म्ये चतुर्विंशोऽध्यायः ॥ २४ ॥

लोमशउवाच ॥ इतितेकथितंसर्वंपुरावृत्तंसकौतुकम् ॥ इतिहासंद्विजश्रेष्ठश्रुतं दुर्गतिनाशनम् ॥ १ ॥ अधुनातुमयासार्धमिमाःकन्याःसुतश्चते ॥ त्वंचायातुप्रयागंवैसर्वेसद्गतिमीप्सवः ॥ २ ॥ माघस्नानंप्रकुर्मोऽत्रदेवानामपिदुर्लभम् ॥ तत्रमोक्ष्यंतिपैशाच्यंसद्यःपापसमु-

लोमशजी बोले—हे विप्र, कौतुकपूर्वक हमने यह वृत्तान्त तुम्हें सुनाया, हे द्विजवर ! इस इतिहासके सुननेसे दुर्गतिका नाश होता है ॥ १ ॥ अब हमारे साथ ये कन्याएँ, तुम्हारे पुत्र और तुम सब सद्गति की इच्छा करके प्रयागको चलो ॥ २ ॥ वहाँ देवदुर्लभ माघस्नान करेंगे, और पापजनित पिशाचयोनि वहाँ शीघ्रही छूट

जायगी ॥ ३ ॥ इसप्रकार लोमशजीके मुखकमल से निकली हुई मधुर और आनन्द देनेवाली कथाको पान (सुन) कर नरकरूप सागरसे उत्तीर्ण हो सब बड़े प्रसन्न हुए ॥ ४ ॥ और हर्षित हो उनके साथ आकाशमार्गसे चलदिये, हे दिलीप ! अब गंगायमुनाके तीर्थको सुनो ॥ ५ ॥ दुःसह कामनाकी प्राप्तिके लिये मनमें प्रसन्न हुए वे शीघ्रही

द्भवम् ॥ ३ ॥ एवंलोमशवक्त्राब्जकथामधुरसंमुदा ॥ पीत्वाप्रमुदिताः सर्वेनिस्तीर्णानरकार्णवात् ॥४॥ प्रस्थितास्तेनसार्धंतेसत्वरंव्योम्निहर्षिताः ॥ दिलीपशृणुतत्सर्वंतत्तीर्थंतुसितासितम् ॥५॥ सत्वरंव्योममार्गेणकाममासाद्यदुःसहा ॥ समागम्यतदातत्रसंहृष्टहृदयाश्चते ॥६॥ अथोचेलोमशस्तत्रसदयंगगनांगणे ॥ पश्यंतुश्रद्धयासर्वेतीर्थराजमिमंभुवि ॥७॥ विनाज्ञानंप्रयागेस्मिन्मुच्यतेसर्वजंतवः ॥ इष्ट्वात्रैवमहायज्ञंस्रष्टुकामः प्रजापतिः ॥८॥ अवापसृष्टिसामर्थ्यंततःसृष्टिंचकारसः ॥ अत्रनारायणःसस्त्रीपतीकामः सितासिते ॥ ९ ॥ अत्र सत-

आकाशमार्गद्वारा वहां पहुँचे ॥ ६ ॥ तब लोमशजी आकाश ही में दयापूर्वक कहने लगे, तुम सबलोग भूमिके ऊपर भक्तिपूर्वक तीर्थराज प्रयागके दर्शन करो ॥ ७ ॥ इस प्रयागतीर्थमें ज्ञानरहित भी जब प्राणी मुक्त हो जाते हैं, सृष्टि रचनेकी कामनासे प्रजापति ब्रह्माजीने इसी क्षेत्रमें यज्ञका आचरण कर ॥ ८ ॥ रचना करनेकी शक्तिका लाभ

किया और सृष्टिको रचा, और पत्नीकी कामनासे नारायणने भी यहाँ ही गंगायमुनामें स्नान कीया था ॥ ९ ॥ अतएव अमृतमन्थनके समय उन्हें लक्ष्मी पत्नी प्राप्त हुई, और यहाँ छः मास निवास तथा त्रिवेणीके जलमें स्नान करके ॥ १० ॥ त्रिशूलधारी महादेवजीने तीन बाणोंसे त्रिपुरासुरको मारा था, और ये जो अग्निकुण्ड निरन्तर प्रदीप्त रहते हैं ॥ ११ ॥ यह अग्नि तृप्तिको प्राप्त हुई है, यहाँ तैंतीस देवताओंने अत्यन्त प्रसन्न हो आनन्द किया

लब्धवान्लक्ष्मींभार्याममृतमंथने ॥ उषित्वाचात्रषण्मासंस्नात्वात्रैण्यांयथेच्छया ॥ १० ॥
त्रिपुरंघातयामासत्रिबाणेनत्रिशूलभृत् ॥ इमानित्रीणिकुंडानिदीप्तान्यजस्रवह्निभिः ॥ ११ ॥
एषतृप्तिंगतोवह्निर्यः केनापिनपुष्यति ॥ अत्रदेवास्त्रयस्त्रिंशत्तृप्तामुमुदिरेभृशम् ॥ १२ ॥ आ-
विर्भूतोमहेशोत्रनीलकंठः कपालभृत् ॥ अनिशंससुरैःसेव्यआयातोंजलयेबटुः ॥ १३ ॥
मृकंडसूनाकल्पेप्रविश्यन्मुखेस्थितम् ॥ लोकेज्वालाकुलेसोयंयोगरूपीजनार्दनः ॥१४॥ सेयं-

था ॥ १२ ॥ कपालधारी नीलकंठ महादेवजी यहां ही प्रादुर्भूत हुए, नित्य देवता उनकी सेवा करते हैं, और अंजलीके लिये बटु आते हैं ॥ १३ ॥ प्रलयके समय जब लोक ज्वालाओंसे व्याकुल हुआ तब मृकंडके पुत्र मार्कण्डेयजी इन्हींके मुखमें प्रविष्ट हुए थे, वे येही योगरूपी जनार्दन भगवान् हैं ॥ १४ ॥ श्रीमहादेवजीकी येही वे भागीरथी गंगाजी सब दुःखोंको हरनेवाली, भोग और मोक्षको देनेवाली हैं, एवं सिद्धिके निमित्त सिद्धगण इनकी

सेवा करते हैं ॥ १५ ॥ जो स्वर्गके मार्गमें सर्वोत्तम ऐश्वर्यको नित्य देनेवाली है, एवं जो स्वर्गप्राप्तिका कारणस्वरूप है, वह यही भागीरथी नदी है ॥ १६ ॥ जिसके जलमें स्नानमात्र करनेसे पापोंका नाश होकर सब प्राणियों को मोक्षकी प्राप्ति होती है, वोही यह स्वयं यमुनानदी है ॥ १७ ॥ हे मुने ! इन दोनों नदियोंका संगम परमसुखदायक

भागीरथीशंभोःसर्वदुःखापहारिणी ॥ सिद्ध्यर्थंसेव्यतेसिद्धैर्भुक्तिमुक्तिफलप्रदा ॥ १५ ॥ अनिशंभूतिदायाचस्वर्गमार्गेह्यनुत्तमा ॥ स्वर्गहेतुश्चयादेवीसेयंभागीरथीनदी ॥१६॥ यदंभः स्नानमात्रेणार्कतनसलोकताम् ॥ लभंतेप्राणिनः सर्वेनद्यीसायमुनास्वयम् ॥१७॥ अनयोः पुण्यनद्योश्चसंगमःसुखदोमुने ॥ अत्रस्नातानपश्यंतेनरकेज्ञानभाविताः ॥ १८ ॥ विनाज्ञानं प्रयागेस्मिन्मुच्यंतेसर्वजंतवः ॥ अन्यच्चश्रूयतांविप्रइतिहासंपुरातनम् ॥ १९ ॥ शृण्वतांसर्वपापघ्नंसर्वरोगविनाशनम् ॥ ऋचीकेनपुराशप्तोगंधर्वोवायसोऽभवत् ॥२०॥ शापंमुमोचसोत्रैव

है, इसमें जो स्नान करलेते हैं वे ज्ञानी होजाते हैं । अतएव उन्हें नरकमें पक्षी होना नहीं होता ॥ १८ ॥ प्रयाग में विनाही ज्ञानके सब प्राणियोंका मोक्ष होजाता है, हे विप्र ! अब अन्य प्राचीन इतिहासको सुनिये ॥ १९ ॥ जो मनुष्य उसको सुनते हैं उनके रोग और पाप सब नष्ट हो जाते हैं, प्रथम ऋचीकने एक गन्धर्वको शाप दे दिया तब

वह काक हो गया था ॥ २० ॥ उसने भी यहाँ हो गंगा यमुनाके जलमें स्नान किया तब उसकी शाप से मुक्ति हुई, उर्वशी अप्सराको इन्द्रने शाप दे दिया था तब वह स्वर्गसे निपतित होगई थी ॥ २१ ॥ उसने स्वर्गकी कामनासे गंगा यमुनाके संगम में स्नान किया तब उसे फिर शीघ्र ही स्वर्गकी प्राप्ति हो गई और नहुषात्मज ययातिको भी यहाँ स्नान करनसे मंगलकारी पुत्रकी प्राप्ति हुई थो ॥ २२ ॥ धनकी कामना करके प्राचीनकालमें इन्द्रने भी

स्नातःसद्यःसितासिते ॥ वासवस्यतुशापेनस्वर्गाद्भ्रष्टाप्सरोर्वशी ॥२१॥ स्वर्गकामाचसास-स्नौलेभेस्वर्गंततोचिरात् । पुत्रंचशंकरंलेभेययातिर्नाहुषोमुने ॥ २२ ॥ पुत्रकामःप्रयागेहि-स्नात्वापुण्येसितासिते ॥ धनकामःपुराशक्रःसुस्नातोऽत्रद्विजोत्तम ॥२३॥ धनदस्यनिधीन्-सर्वान्जहारसचमायया ॥ कश्यपोत्रतपस्तेपेशिवाराधनतत्परः ॥ २४ ॥ अस्मिंस्तीर्थेभरद्वा-जोयोगसिद्धिमवाप्तवान् ॥ अस्मिंस्तीर्थेपुराविप्रयोगेशाः शांतमानसाः ॥ २५ ॥ योगस्यफ-

हे द्विजराज ! यहाँ स्नान किया था ॥ २३ ॥ तब उसने माया करके कुबेरकी सब निधियोंका अपहरण किया, महादेवजीकी आराधनामें तत्पर रहकर कश्यपजीने भी यहीं ही तपका आचरण किया था ॥ २४ ॥ इसी तीर्थमें भरद्वाजजीको भी योगसिद्धिका लाभ हुआ था, और हे विप्र ! पूर्वसमयमें जिनके मन शान्त हो गये हैं जो योगीश्वर हैं ऐसे ॥ २५ ॥ सनक सनन्दन सनातन सनत्कुमारको भी योगके फलकी प्राप्ति हुई थी, माघमासमें जो व्यक्ति

गङ्गा यमुना के संगम में स्नान करते हैं ॥ २६ ॥ उनको तारारूप समझना चाहिये और उन्होंने सब जगत् को व्याप्त कर रक्खा है, कामार्थियों को मनोरथ सिद्धि, मोक्षाभिलाषियों को मोक्ष ॥ २७ ॥ और साधकों को सिद्धि, हे द्विजराज! प्रयागमें प्राप्त होती है, इस समय मुक्तिकी कामना से ये कन्यायें और तुम्हारा पुत्र ॥ २८ ॥ एवं तुम हमारे कहने से

लभूमिंतुलेभिरेसनकादयः ॥ अस्मिन्माघेतुयेस्नातागंगायामुनसंगमे ॥२६॥ तारारूपाश्चते सर्वेतैर्व्याप्तंसकलंजगत् ॥ विंदंतिकामिनःकामान्मुक्तिंयांतिमुमुक्षवः ॥२७ विंदंतिसाधकाःसिद्धिंप्रयागेहिद्विजोत्तम ॥ सांप्रतंमुक्तिकामास्तुकन्ताश्चापिसुतश्चते ॥ २८ ॥ मद्वाक्याद्यमज्जंतुसर्वे त्वचसितासिते ॥ प्राक्कालीनाघविध्वंसिवेणीजलबलेनतु ॥ २९ ॥ लभंतामखिलांलक्ष्मींप्राप्तशापमहाफलाम् ॥ एवमार्षवचःसत्यमतींद्रियमलंघनम् ॥ ३० ॥ श्रुत्वाचोत्कंठचित्तास्तेसर्वस्नानायचोद्यताः ॥ प्रयागंप्राप्यदुष्प्राप्यंपैशाच्यंविजहुः क्षणात् ॥ ३१ ॥ वि-

यहाँ गंगायमुना में स्नान करो, औरपहिले पापों का नाश करनेवाले त्रिवेणी के जलके प्रभाव से ॥ २९ ॥ इस शापके फलरूप विपुल लक्ष्मी का इन्हें लाभ होगा, जो इन्द्रियों से परे और उलंघन करने के अयोग्य है ऐसा यह महर्षि का वचन सत्य है ॥ ३० ॥ यह वचन सुनतेही वे सब मन में उत्कंठित हो स्नान करने के तईं उद्यत हुये, और दुर्लभ

प्रयाग की प्राप्ति से क्षणभर में उनकी पिशाचता छूट गई ॥ ३१ ॥ शापके दुःखसे मुक्त हो उन्होंने अपने २ शरीरको धारण कर लिया, वेदनिधि अपने पुत्र और उन कन्याओंका दिव्यरूप देख ॥ ३२ ॥ अन्तःकरण में प्रसन्न हो प्रीति-पूर्वक लोमशजी को सन्तुष्ट करने लगा कि, आपही की कृपासे पापके महासागर से उद्धार हुआ है ॥ ३३ ॥ हे महर्षि-

मुक्ताःशापदुःखेनतनुंस्वांस्वांचलेभिरे ॥ दृष्ट्वावेदनिधिःपुत्रंताःकन्यादिव्यरूपिणीः ॥३२॥
तुष्टावलोमशंभीत्याप्रसन्नेनांतरात्मना ॥ त्वदनुग्रहमात्रेणोत्तीर्णःपापमहार्णवः ॥३३॥ इदानीं
मुचितंब्रूहिबालानामृषिसत्तम ॥ लोमशउवाच ॥ कुमारोधीतवेदोऽयंसमाप्तनियमोऽधुना ॥३४॥
आसांतुसानुरागाणांगृह्णातुकरपंकजम् ॥ ततोलोमशवाक्येनस्वपितुर्वचनात्तदा ॥३५॥ विवा-
हविधिनाचासुब्रह्मचारीसधार्मिकः ॥ शुभद्रव्यैश्चमंत्रैश्चऋषिभिःकृतमंगलः ॥ ३६ ॥ पश्चाना-

सत्तम ! अब इन बालकों को जो कर्तव्य हो सो बताइये, लोमशजी बोले—इस कुमारने वेदोंको पढ़लिया एवं अन्य सब नियमों को पूर्णकर अब यह युवा हो गया है ॥ ३४ ॥ अतएव अनुराग करनेवाली इन कन्याओं के करकमलको यह ग्रहण करे, तब लोमशजी के कहने से अपने पिताकी आज्ञानुसार ॥ ३५ ॥ उस धर्मात्मा ब्रह्मचारीने विवाह की विधिके अनुसार, महर्षियोंके द्वारा शुभद्रव्यों से मंगलाचार करने के अनन्तर ॥ ३६ ॥ धर्मपूर्वक उन पाँचों कन्याओं

का पाणिग्रहण किया, मनोरथ पूर्ण हो जानेके अनन्तर वे सब कन्या भी आनन्द मनाने लगीं ॥ ३७ ॥ और वह कुमार भी अत्यन्त सन्तुष्ट हुआ, फिर लोमश ऋषिने उनको आज्ञा दी तब उन्होंने महर्षिको प्रणाम किया ॥ ३८ ॥ निदान वे देवताओंके द्वारा सेवित सुमेरुपर्वत पर अपने आश्रमको चले गये, फिर वेदनिधि भी अपने पुत्र और पाँचों

मपिकन्यानांपाणिंजग्राहधर्मतः ॥ आनंदिन्यस्तदासर्वाःकन्याःपूर्णमनोरथाः ॥३७॥ बभूवुःसुकुमारश्चसंतुष्टश्चबभूवह ॥ दत्त्वानुज्ञांमुनिःसोथलोमशस्तैर्नमस्कृतः ॥३८॥ जगामस्वाश्रमंमेरुंपर्वतंसुरसेवितम् ॥ ततोवेद निधीराजन्स्नुषाः पंचसुतंतथा ॥३९॥ पुरस्कृत्यमुदायुक्तोधनदस्यपुरंययौ ॥ ४० ॥ इतिनृपवरमाघेस्नानसंजातपुण्यान्मुनिवरवचसाद्रप्राक्तीर्थराजप्रयागे ॥ सकलकलुषमुक्ताःपंचगंधर्वकन्याश्चलमभिगतलाभात्प्राप्यतर्षंचजग्मुः ॥४१॥ परमिममितिहासंपावनं तीर्थभूतंवृजिनविलयहेतुर्यःशृणोतीहनित्यम् ॥ सभवतिखलुपूर्णः ॥

पुत्रवधुओंको ॥ ३९ ॥ अगाड़ीकर आनन्दपूर्वक कुबेर लोकको चले गये ॥ ४० ॥ हे राजेश्वर ! माघमासमें प्रयागमें ऋषिके कथनानुसार स्नान करनेके पुण्यसे पाँचों कन्याओंके सब पाप जाते रहे, और वे मनोरथ सिद्धिको पाय अपने स्थानको चली गईं ॥ ४१ ॥ तीर्थ महिमाका यह इतिहास अत्यन्त पवित्र और पापोंका नाश करनेवाला है,

जो मनुष्य इसे नित्य सुनते हैं उनकी सब कामनाएँ पूर्ण हो जाती हैं और वे दुर्लभ धर्मयुक्त हो स्वर्गको जाते हैं ॥ ४२ ॥ इस इतिहासको सुन गुरुनेश्वर गौ वस्त्र और सुवर्णसे पाठककी पूजा करना कर्त्तव्य है, क्योंकि वह ब्रह्मतुल्य माना गया है ॥ ४३ ॥ पढ़नेवालेकी पूजा करनेसे साक्षात् विष्णु भगवान् ही की पूजा होती है, सुतराम्

सर्वकामैरभीष्टैर्व्रजतिचसुरलोकेदुर्लभोधर्मयुक्तः ॥ ४२ ॥ इतिहासमिमंश्रुत्वापूजनीयस्तु पाठकः ॥ गोभिर्हिरण्यवस्त्रैश्चब्रह्मतुल्योयतोहिसः ॥४३॥ वाचकेपूजितेयस्माद्विष्णुर्भवतिपूजितः ॥ तस्मात्प्रपूजयेन्नित्यंयदीच्छेत्सफलंभवम् ॥४४॥ इति श्रीपद्म उत्त० माघमाहात्म्ये वसि० गंध० क० परिणयोनामपंचविंशोऽध्यायः ॥ २५ ॥

यदि अपने जन्मको सफल करना चाहे तो कथा बाँचनेवाले को पूजा अवश्य करे ॥ ४४ ॥ इति श्रीपद्मपुराणान्तर्गत माघमासमाहात्म्ये भाषाटीकायां पंचविंशोऽध्यायः ॥ २५ ॥

॥ माघमासमाहात्म्यम् समाप्तम् ॥

मुद्र.—बाबू गणेश प्रसाद गुप्त, स्वतन्त्र भारत प्रेस, हड़हा सराय, बनारस सिटी।

हमारे यहाँ की प्रकाशित पुस्तकें—

पुस्तक	मूल्य
श्रीमद्भागवत भाषा टीका १२ स्कन्ध	२२)
श्रीमद्भागवत भाषाटीका दशम स्कन्ध	१०)
सुखसागर मध्यम	१२)
बाल्मीकीय रामायण भाषा	१०)
रामायण सटीक	१०)
निर्णय सिन्धु मूल	८)
मानसागरी भाषा टीका	८)
सत्यनारायणव्रतकथा सप्ताध्यायी भा.टी.	१)
हनुमान ज्यौतिष	॥)
रामायण भाषा टीका गुटका	६)
कर्मविपाक भाषा टीका	२)
पुरुषोत्तममास माहात्म्य भाषा टीका	३)
वृहद् स्तोत्र रत्नाकर	४)
रामलीला दर्पण नाटक	३)
सुखसागर गुटका	६)
रामायण मध्यम मूल	६)
राधेश्याम रामायण	६)
माधव निदान भाषा टीका	४)
ज्योतिषार भाषा टीका	३)
ताजिक निलकण्ठी भाषा टीका	४)
अमरकोष गुटका सम्पूर्ण	१॥)
उपनयन पद्धति भाषा टीका	।॥)
एकादशी माहात्म्य भाषा टीका	३)
कार्तिक माहात्म्य भाषा टीका	२॥)
गरुड़ पुराण भाषा टीका	३)
गया मास माहात्म्य भाषा टीका	१॥)
वैशाख माहात्म्य भाषा टीका	३)
दुर्गापाठ प्रयोग विधि सहित नया भाषा टीका ग्लेज	३)
वासिष्ठी हवन पद्धति भाषा टीका	१)

मिलने का पता—**बाबू ठाकुर प्रसाद गुप्त बुकसेलर,**

घर—राजादरवाजा, दुकान—कचौड़ीगली, बनारस सिटी ।